हिन्दी अनुसन्धान · वैज्ञानिक पद्धतियां

हिन्दी अनुसन्धान : वैज्ञानिक पद्धतियाँ

(कानपुर विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डॉ० कलाश नाथ मिश्र
एम० ए०, पी एच० डी०, साहित्याचाय
हिंदी विभाग
पी० पी० एन० कालेज, कानपुर

सरस्वती प्रकाशन

लेखक डॉ० कैलाशनाथ मिश्र

संस्करण प्रथम 1990

मूल्य एक सौ दस रुपये मात्र

प्रकाशक सुधीर तिवारी
सरस्वती प्रकाशन
128/106 G, किदवई नगर कानपुर–11

मुद्रक रूपा प्रेस जूही, वाराहदेवी–कानपुर

HINDI ANUSANDHAN VAIGYANIK PADDHATIYAN

By Dr KAILASH NATH MISHRA Price Rs 110 00

जिनके अशेष स्नेह-सवलित आशीर्वाद से
उन पूज्य पिता स्वर्गीय प० रामनारायण मिश्र
पितृव्य प० रामभरोसे मिश्र
एव पूजनीया माँ स्वर्गीया चन्द्रावती मिश्रा
को
सविनय, सादर, सश्रद्ध

कैलाशनाथ मिश्र

सन्दर्भेतर

हिन्दी अनुसंधान आज जिस स्थिति मे विद्यमान है, उसे अराजकता की संज्ञा ही दी जा सकती है। वस्तुतः अपने वर्षों की वय में अनुसंधान में जो प्रौढ़ता आनी चाहिए उसकी अपेक्षा विशृंखलता, पिष्ट पेषण एवं गतानुगतिकता को ही प्रश्रय प्राप्त हो रहा है एक ओर पुरानी पीढ़ी अनुसंधान से हटकर स्वतंत्र समीक्षा की ओर उन्मुख हो गई है तो दूसरी ओर नई पीढ़ी मात्र उपाधि के लिए अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रसर है जिसके परिणामस्वरूप अनुसंधान ग्रंथ केवल विश्वविद्यालयों के ग्रन्थागार की शोभा बन कर रह गये हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में इस अराजकता का एक मात्र कारण समीक्षा एवं अनुसंधान में टकराहट है। समीक्षा का मानदण्ड जहाँ नित्य बदलता रहता है। वहीं अनुसंधान अपनी यथा स्थिति में विद्यमान है। नव्यतर साहित्यिक प्रवृत्तियों को पुरातन परिप्रेक्ष्य में आकलित करना अनुसंधान के क्षेत्र में न्याय संगत नहीं हो सकता।

वस्तुतः अनुसंधान चाहे साहित्यिक हो या समाज वैज्ञानिक या प्राकृतिक, उसमे वैज्ञानिक दृष्टि का सन्निवेशन अपरिहार्य है और वैज्ञानिकता उसे ही कहा जा सकता है जिसमें नूतनता आनुषंगिकता एवं क्रमबद्धता बनी रहे। विज्ञान न मात्र आविष्कार है न प्राचीन संदर्भों की पहचान। विज्ञान का आशय है प्रकृति, पन्थ एवं परिवेश को मानव का मानव मात्र के लिए अनुकूलन। मानव की अनुसंधान यात्रा इसी अनुकूलन की भावना है। अतः वैज्ञानिक अनुसंधान को भी पारिवेशिक रूप पर ही प्रस्तुत करना चाहिए। वैज्ञानिकता की इस सामान्य परिभाषा की हिन्दी अनुसंधायक पूर्णतया उपेक्षा कर रहे हैं और यही कारण है कि साहित्यानुसंधान समीक्षा की तुलना में भावक से दूर होता जा रहा है और विद्वानों को अनुसंधायक बनने की अपेक्षा समीक्षक बनना अधिक प्रिय है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में यह प्रयास किया गया है कि अनुसंधान को समीक्षा से उत्कृष्ट स्थान मिले क्योंकि अनुसंधायक में चिन्तन एवं जिज्ञासा दोनों वृत्तियाँ समाहित रहती है। इस दृष्टि से वैज्ञानिक संदर्भों को ही आधार बनाया जा रहा है। इस रूप में हमारे सामने पहला प्रश्न है अनुसंधान के स्वरूप का।

अनुसंधान मानवीय चिन्तन से सम्पृक्त ऐसी ज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विनियमन एवं पर्यवेक्षण सहवर्ती रूप में विकसित होते हैं। मानवीय संस्कृति के आदिम वन्य स्वरूप से लेकर अद्यावधि उपलब्ध आणविक उद्विकास का स्रोत अनुसंधान है। वस्तुतः इस अखिल सृष्टि में मानव सर्वाधिक विलक्षण एवं

विचक्षण जीव के रूप म प्रकट हुआ क्योंकि उसे प्रभा एव प्रतिभा की ऐसी सम्प्रेरक शक्तियाँ प्राप्त हुईं जिसस मानव की अनुसधानयिक परिदृष्टि का विस्तार हुआ नैसर्गिक नैकट्य, सतत साहचय एव जिज्ञासु मनोवत्ति के कारण गोपित रहस्यो के बोध की उत्कृष्ट लालसा का सफलीभूत स्वरूप ही अनुसधान के रूप म सामने आया, जिसके माध्यम से मानव को सचेष्ट सशक्त प्राणी के रूप म गौरवान्वित होने का अवसर मिला। सष्टि के उदभव एव विकास की दृष्टि स अनुसधान की इसी अहम भमिका के कारण उस विशिष्ट ज्ञान क्षेत्र के रूप म प्रतिष्ठा मिली।

वस्तुत जिज्ञासा मनुष्य की मूल प्रवत्ति है। अनुसधान इसी जिज्ञासा प्रवत्ति का परियोजित परिष्कृत तथा प्राविधिक रूप है। अत मानव के उदभव काल स अनुसधान काय का शुभारम्भ हो गया था। सभ्यता के प्रारम्भिक चरण म अनुसधान की प्रक्रिया और प्रविधि स्थूल, अपरिष्कृत तथा अप्रामाणिक थी। जस जस ज्ञान का विकास हुआ अनुसधान की पद्धति अधिक विस्तत सूक्ष्म और सुव्यवस्थित होती गयी। बीसवी शताब्दी म कल्पनातीत वज्ञानिक प्रगति ने अनुसधान का एक शास्त्र या विज्ञान का स्वरूप प्रदान कर दिया। अब इसकी अनिवायता महत्ता और उपयोगिता का ज्ञान की समस्त शाखाओं न निर्विवाद रूप स स्वीकार कर लिया है। अध्ययन अध्यापन या स्वतन्त्र ज्ञानाजन के क्षेत्र म इसकी अपरिहायता दीघ काल पूण ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

हिन्दी म साहित्य सजन की परम्परा बहुत पुरानी है लकिन साहित्य के अनुसधान पर अनुशीलन का इतिहास अत्यन्त परिसीमित ही है। यदि अनौपचारिक समीक्षा और इतिहास ग्रथो को अनुसधान की परिधि के अन्तगत न सम्मिलित करें तो हिन्दी का साहित्यिक अनुसधान काय केवल अद्ध शताब्दी तक हो जाता है क्योंकि हिन्दी का प्रथम औपचारिक शोध प्रबन्ध लन्दन विद्यालय की 'डाक्टर आफ डिविनिटी' उपाधि हेतु सन १९१८ ई० म थियोलाजी आफ तुलसीदास शीषक विषय पर डा० जे० एन० कारपण्टर द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जिसे देश एव काल क्रम के व्यवधान के कारण भारतीय हिन्दी अनुसधान के क्षेत्र म महत्त्व ही नहीं मिला, लेकिन विस्मयकारी तथ्य यह है कि इस अल्प अवधि म लगभग पाँच हजार शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हो चुके हैं। यह संख्या समस्त भारतीय भाषाओं न शोध प्रबन्धो की सम्मिलित सख्या स बहुत अधिक है। भारत म डा० पीताम्बर दत्त बड्थ्वाल न सन १९२४ ई० म काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स प्रथम शोध प्रबन्ध 'दि निगुण स्कूल आफ हिन्दी पायट्री' डी० लिट उपाधि हेतु प्रस्तुत किया था यहा स हिन्दी साहित्यानुसधान का विधिवत सूत्रपात हुआ।

हिन्दी का विशाल अनुसधान काय मात्रा की दृष्टि स आश्चयजनक है महत्ता की दृष्टि म प्रशसनीय है। हिन्दी के सहस्रो शोध प्रबन्धो म अनेक शोध

उपलब्धियों से लाभान्वित होना चाहिए क्योंकि मानव शास्त्रों और साहित्य का विषय वस्तु किसी सीमा तक समान होती है, केवल अभिव्यक्ति का अन्तर होता है। साहित्य का मनोविज्ञान, समाजशास्त्र इतिहास दर्शनशास्त्र भूगोल आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। इसी कारण हिन्दी अनुसन्धान में दार्शनिक मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्रीय अनुशीलनों की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई है। अनेक शोध प्रबन्ध इन दृष्टियों से प्रस्तुत किये गये हैं, लेकिन इनमें सम्बन्धित शास्त्रों की पद्धतियों का अनुसरण नहीं हुआ है। वस्तुत यदि हिन्दी में साहित्यिक अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धति का विकास करना है तो समाज विज्ञानों की परिष्कृत और परिपुष्ट पद्धतियों को साहित्य की प्रकृति के अनुरूप स्वीकार करने का विवेक युक्त तथा संतुलित प्रयत्न होना चाहिए।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में वैज्ञानिक पद्धति शास्त्र की सैद्धान्तिकी एवं प्रायोगिकी दोनों को विमर्श्य माना गया है। इस क्रम में अनुसन्धित्सु को अन्य प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों की अनुसन्धान पद्धतियों के अवलोकन का अवसर भी मिला है जिसका यहाँ पर उपवृहण एवं विस्तार मात्र हुआ है किन्तु शोध सर्वेक्षण के अन्तर्गत प्रबन्धों को चयित करते समय उन्हीं प्रबन्धों को केन्द्र में रखा गया है जो सिद्धान्तों एवं मान्यताओं की दृष्टि से मौलिक एवं मननीय हैं। इसी प्रकार निरपाधिक एवं विदेशी विश्वविद्यालयों में सम्पन्न शोध कार्य का प्रस्तुत प्रबन्ध में सापेक्षिक न होते हुए भी सर्वेक्षण सम्पन्न हुआ है किन्तु इसका आलोडन विलोडन सर्वथा नवीन सन्दर्भों एवं नव्य परिवेश में ही हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभाजित है। इसका प्रथम अध्याय अनुसन्धान शब्द का व्युत्पत्ति उसके स्वरूप विश्लेषण एवं अनुसन्धान की वैज्ञानिकता से सम्बद्ध है। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत अनुसन्धान का अर्थ और उसकी परिभाषा देने के उपरान्त उसके लक्ष्य क्षेत्र एवं प्रकृति का विवेचन हुआ है। इसमें अनुसन्धान की साहित्यिक परिभाषा की अपेक्षा उसके व्यापक स्वरूप का निर्धारण हुआ है।

प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में साहित्यानुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धतियों का निर्माण हुआ है। इसी क्रम में इतिहास दर्शन भौतिक विज्ञान समाज विज्ञान, मनोविज्ञान एवं मार्क्सवादी अनुसन्धान पद्धतियों के निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए उनके वर्गीकरण का प्रयत्न हुआ है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पद्धतियों के साम्य एवं वैषम्य का निरूपण तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया गया है। पद्धतियों के निर्माण हेतु इस अध्याय के अन्तर्गत उपयुक्त विज्ञानों की मौलिक पद्धतियों का समीक्षित करते हुए हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में उनकी उपादेयता का निर्धारण भी हुआ है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत साहित्य एवं विज्ञान के प्रयोजनों का विश्लेषण

हुआ है। इसम साहित्यिक प्रयोज्यो से सन्दर्भित भारतीय एव पाश्चात्य विचारणाओ का विश्लेषण हुआ है। इसके अतिरिक्त अनुस धान पद्धतियो की वैज्ञानिकता तथा उसकी साहित्यिक प्रयोग धर्मिता भी इसी अध्याय म विवेचित हुई है।

चतुथ अध्याय हि दी के उदभव काल से लेकर आद्यावधि सम्पन्न शोधो के सर्वेक्षण से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त विदेशी विश्वविद्यालयो के शोध काय का का परिचय देते हुए भारतीय विश्वविद्यालयो मे सम्पन्न शोध प्रबन्धो का उद्भव उन्मेष एव उत्कष दिखाकर उनका सर्वेक्षण किया गया है।

पञ्चम अध्याय म दाशनिक अनुसन्धान पद्धतियो के आधार पर प्रणीत दाशनिक शोध प्रबन्धों का वर्गीकरण एव विवेचन किया गया है। इस अध्याय म दाशनिक शोध प्रब धो की रचना प्रक्रिया उनकी उपादेयता एव व्याप्त विसगतियो की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास भी किया है।

षष्ठ अध्याय मे साहित्यानुसन्धान की सर्वाधिक व्यापक ऐतिहासिक अनुस धान पद्धति के आधार पर शोध ग्र था की समीक्षा की गई है। इस प्रक्रिया म हिन्दी की एतिहासिक पद्धति के आधार पर प्रस्तुत प्रब ध ही अनुशीलित हुए है। इसी के अन्तर्गत इस पद्धति के उदभव विकास एव स्वरूप को भी विवेच्य बनाया गया है।

सप्तम अध्याय के अन्तगत साहित्यानुस धान के क्षेत्र म वस्तुनिष्ठता के अध्ययन की समावनाओ को सकेतित किया गया है तथा विभिन्न वज्ञानिक पद्धतिया के आधार पर शोध प्रबन्धा को समीक्ष्यमाण बनाया गया है। इसम मनोवैज्ञानिक समाजवज्ञानिक एव मार्क्सवादी पद्धतिया के आधार पर प्रस्तुत शोध प्रबन्धा का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त भौतिक विज्ञानो की पद्धतिया से प्रभावित शोध प्रबन्धा का विश्लेषण भी हुआ है।

अष्टम अध्याय शोध निष्कर्षो स समन्वित है। इसम वज्ञानिक पद्धति शास्त्र के आधार पर हिन्दी साहित्यानुस धान की पद्धतियो की उपलब्धियो का आकलन हुआ है।

प्रस्तुत प्रब ध डॉ० उमेश च द्र मिश्र अध्यक्ष, हिन्दी विभाग पी० पी० एन० कालेज, कानपुर के निर्देशन में प्रस्तुत हुआ। प्रबन्ध लेखन के क्रम म उन्होने अपने *सत्परामर्शो एव स्नेहिल सहयोग द्वारा मेरी अनुसन्धित्सा को गतिशील बनाये रखा।* उनके सहजोपलब्ध सहयोग के प्रति मेरा रोम रोम श्रद्धावनत है।

प्रबन्ध के प्रणयन से प्रकाशन तक मेरे अन य सहयोगी डा० लक्ष्मीकान्त पाण्डेय का पदे पदे सहयोग मिला है और ग्रन्थ की प्रस्तुत परिणमिति उनके ही प्रेरक प्रयास का प्रतिफल है। इनके इस निष्ठा प्रामाण्य के बावजूद कृतज्ञता ज्ञापन मात्र औपचारिकता और आत्मीयता व सनातन सस्कार की अवमानना होगी।

इसके अतिरिक्त अपने विभागीय सहयोगियों डॉ० मधुरेखा विद्यार्थी एवं डा० प्रमिला अवस्थी के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी शुभ कामनाएँ सदैव मेरे साथ रही हैं।

पुस्तक के प्रकाशन में 'सरस्वती प्रकाशन' के संचालक सुधीर तिवारी ने जो तत्परता दिखलायी है, उसके लिए वे साधुवादाह हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के सुविज्ञ समर्पण क्रम में इस बात की अपेक्षा अवश्य है कि उनकी सम्मतियाँ संदर्भ संस्कार हेतु अवश्य मिलें। यदि साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में इस प्रबंध के माध्यम से कुछ प्रेरणाएँ मिल सकेंगी और अनुसंधान की वैज्ञानिकता के प्रमाणन के अन्य प्रयास हो सकेंगे तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा। प्रेस की असावधानी के कारण कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं जिन्हें शुद्ध करके पुस्तक के अंत में परिशिष्ट में दे दिया गया है।

कैलाश नाथ मिश्र

निवेदन

विज्ञ पाठकों के सम्मुख इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करते हुए हम अत्यन्त हर्षित हैं। पुस्तक प्रकाशन की विविध कठिनाइयों के बीच अपेक्षित समय पर पुस्तक ला पाना ही हम अपनी पुरुषार्थ सिद्धि मानते हैं यद्यपि समय सीमा ने कुछ मुद्रण त्रुटियों को अनदेखा कर जाने की विवशता हमारे सम्मुख रख दी है। एतदर्थ हम विद्वज्जनों के सम्मुख क्षमा प्रार्थी हैं।

प्रकाशक

सुधीर तिवारी

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

अनुसन्धान : परिभाषा एवं स्वरूप

मानव की नैसर्गिक प्रवृत्तियों मे जिज्ञासा का अप्रतिम स्थान है। यह मूल प्रवृत्ति ही सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान तथा सभ्यता संस्कृति की उत्प्रेरक शक्ति है। यह सृष्टि के आदिकाल से अखण्ड रूप म सक्रिय है। इस जिज्ञासा प्रवृत्ति के कारण ही मनुष्य विविध क्षेत्रो में अनेक प्रकार के अनुसन्धान करने में समर्थ हुआ। अनुसंधान का उद्भव मानव जन्म के साथ ही हो गया था, लेकिन इसकी प्रक्रिया को व्यवस्थित स्वरूप आधुनिक युग क बुद्धिवादियो ने प्रदान किया। दूसरे शब्दो में आधुनिक विज्ञान ने अनुसन्धान को शास्त्रीय आधार और तकपूर्ण स्वरूप से सम्पुष्ट एव समलकृत किया। अत अनुसधान स्वय में एक स्वतन्त्र शास्त्र या विज्ञान का रूप धारण कर चुका है। पाश्चात्य देशो में अनुसन्धान शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका है तथा सकडो ग्रथों की रचना हो चुकी है। भारतीय भाषाओ और हिन्दी में अभी यह शशवावस्था मे है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि हिन्दी की अनुसन्धान पद्धति का स्वरूप निर्धारण पाश्चात्य तत्वो और प्रवत्तियो के द्वारा हो रहा है। इसलिए इसकी अनुसंधान पद्धतियों का विवेचन विश्लेषण पाश्चात्य अनुसन्धान शास्त्र क सन्दभ म करना समीचीन होगा।

किसी आधुनिक शास्त्र या विज्ञान मे प्रयुक्त सकल्पनाओ या अवधारणाओं (कान्सेप्टस) का विशेष महत्व होता है। अनुसंधान शास्त्र म अनुसन्धान शब्द एक जटिल सकल्पना या विवादास्पद पारिभाषिक शब्द है। अत हिन्दी अनुसन्धान पद्धतियों की समीक्षा करन के पूव इस सकल्पना के अर्थ को स्पष्ट तथा परिसीमित कर लेना अनुसन्धानकर्ता का प्राथमिक दायित्व है।

अनुसन्धान का अर्थ

अनुसन्धान बहुप्रचलित एवं बहु प्रयुक्त शब्द है। विभिन्न सदर्भो में इसका भाव-बोध रूपान्तरित होता रहता है। बौद्धिक क्रिया कलापो मे भी इसके सम्बोध में भिन्नता परिलक्षित होती है। अत इसके शाब्दिक और व्यवहारार्थो का स्पष्टीकरण नितान्त अपरिहार्य है। प्रारम्भ में अनुसन्धान के संस्कृत व्याकरण के अनुसार व्युत्पत्तिमूलक अथ का स्पष्टीकरण उचित प्रतीत होता है, तत्पश्चात ज्ञान विज्ञानो क सदभ में इस सकल्पना की व्याख्या सभव हो सकती है।

अनुसन्धान और उसके समवर्ती शब्द—अनुसन्धान क लिए हिन्दी में अनेक

तद्भव तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है यथा गवेषण पृच्छा गम्न निरीक्षण या परीक्षण जाँच उद्देश्य योजना क्रमबद्ध करना तत्पर होना उपयुक्त संयोग अन्वेषण चेष्टा शोध निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति तथा खोज इत्यादि हैं। ये सभी शब्द अनुसन्धान के पर्याय कहे जा सकते हैं। इनमें अधिकांश शब्दों का उद्भव संस्कृत की धातुओं से हुआ है—गवेषणा में गो शब्द से (गवेष्) इष (इच्छायाम) धातु का प्रयोग हुआ है। पृच्छा शब्द पृच्छ (जिज्ञासायाम) धातु से टाप प्रत्यय के योग से निर्मित हुआ है। अन्वेषण में अनु उपसर्ग से इष् (इच्छायाम) धातु का प्रयोग हुआ है। निरीक्षण तथा परीक्षण शब्द क्रमशः निर् तथा परि उपसर्ग से ईक्ष (आलोकने) धातु से बने हैं। शोध शब्द में शुद्ध (शोधने) धातु का प्रयोग है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी शब्द अनुसन्धान के पर्याय हैं लेकिन इनमें अनुसन्धान ही हिन्दी साहित्य का उपयुक्त तथा बहुप्रचलित शब्द है। हम अनुसन्धान की उपयुक्तता तथा अन्य शब्दों की अक्षमता पर अगले पृष्ठों में विचार करेंगे।

अनुसन्धान का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ—अनुसन्धान शब्द मूलतः संस्कृत का शब्द है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार अनुसन्धान में अनु उपसर्ग का प्रयोग है। अनु का अर्थ पीछे बाद में पश्चात् फलस्वरूप या क्रमानुसार होता है। सन्धान एक पृथक् संस्कृत शब्द है जिसका प्रयोग हिन्दी में भी बहुतायत से होता है। हिन्दी में सन्धान का अर्थ एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचने के लिये होता है लेकिन संस्कृत में सन्धान एक शब्द नहीं है इसमें सम् उपसर्ग जुड़ा हुआ है। इस सम् उपसर्ग का अर्थ सम्यक् पूर्ण बहुत तथा बिल्कुल होता है। इसके अतिरिक्त (डधाञ्) धा (धारण पोषणयो) धातु है। इस धातु का प्रयोग धारण (और पोषण) करने के अर्थ में होता है। धा धातु से ल्युट प्रत्यय होता है तथा इस ल्युट प्रत्यय के ल्' और ट्' आद्यन्त अक्षरों का लोप हो जाता है शेष यु' के स्थान पर 'अन' हो जाता है।[1] सम् उपसर्ग की म् को धा धातु का योग होने से उसी वर्ग (तवर्ग) का पंचम अक्षर न हो जाता है। धा + अन में दीर्घ सन्धि होकर धान शब्द निष्पन्न होता है[2] और इस प्रकार निम्नलिखित भिन्न रूपों में बदलकर अनुसन्धान शब्द की निष्पत्ति होती है यथा—

अनु–सम–धा–ल्युट	(भाव) (अनु पूर्वक सम् उपसर्ग)
अनु–सम–धा–यु	(ल और ट् की इत्संज्ञा तथा लोप)
अनु–सम्–धा–अन	(यु के लिए अन)
अनु–सन–धा–अन	(सम् की म् को न्)
अनु–सन–धान	(धा अन में दीर्घ सन्धि होकर धान बना)

अत अनु (क्रमानुसार) सम (सम्यक रूप से) धान (धारण करना या विचार करना)।

इस प्रकार अनुसन्धान का व्युत्पत्ति मूलक अथ हुआ किसी विषय पर क्रम स तथा सम्यक रूप से विचार करना। यहाँ अनु (क्रमानुसार) और सम (सम्यक रूप स) दोनो उपसग विशेष दृष्टव्य है, क्योंकि ये चिन्तन की वज्ञानिक पद्धति की ओर सकत करत हैं। विज्ञान किसी भी विषय के क्रमबद्ध ज्ञान को कहते हैं, जिसके अन्तगत तथ्य और सिद्धा त दोना सम्मिलित हैं।

हिन्दी का अनुस धान अग्रेजी के 'रिसच' का हि दी रूपान्तर है। अग्रेजी का रिसच' शब्द भी दो शब्दा के योग मे बना है। इसमे रि' (Re) उपसग (Prefix) है जिसका अथ दुबारा और वापस होता है तथा सच (search) मूल श न है जो फ्रेन्च भाषा के शब्द चच (cerche) तथा चर्चे (cherche) स प्रादु भूत है इस फ्रेन्च भाषा के श द चर्चे (cherche) का अर्थ खोजना (to seek) तथा व्यवस्थित करना (systematic) होता है। अग्रेजी भाषा मे इसी चर्चे (cherche) को सच (surch) तथा सर्चे (search) ग्रहण किया गया है इसका अर्थ भी अ वेषण, गवेषण, शोध करना, अनुसन्धान जिज्ञासा, विचारण इत्यादि होता है। अत रिसच का अथ भी अनुस धान, शोध, किसी विषय का वज्ञानिक (क्रम बद्ध) अध्ययन होता है।

'आक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी' में रिसच के निम्नलिखित अर्थ मिलते हैं।[8] सूक्ष्म अथवा सावधानी पूण किसी विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के विषय में खोज काय, विवेकपूण चि तन के द्वारा किसी तथ्य की खोज की ओर उन्मुख होना अथवा किसा विषय का अध्ययन, किसी निर्धारित विषय की समीक्षात्मक या वैज्ञानिक परिपृच्छा तथा किसी विषय का अनुसरण करना।

कोश म रिसच शब्द क जो अथ मिलत हैं उन पर विचार करन से यह स्पष्ट होता है कि यह शब्द वज्ञानिक या आलोचनात्मक अध्ययनो के लिए प्रयुक्त होता है। इसी आशय को प्रथम अथ मे ही स्पष्ट किया गया है। इसमें कहा गया है कि रिसच सूक्ष्म अथवा सावधानी पूण किसा विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के विषय में खोज कार्य है। इस प्रकार स अनुसन्धान या रिसच में सूक्ष्मता, सावधानी, नवीनता, वज्ञानिकता या क्रमबद्धता का भाव निहित है।

हि दी का अनुसन्धान भी अग्रेजी के रिसच शब्द के समान ही समरूप अर्थ का व्यजक है। चूकि हिन्दी म अनुसन्धान काय पाश्चात्य सकल्पना, प्रविधि और प्रक्रिया का स्वीकार करता है अत रिसर्च क यथा तथ्य हिन्दी रूपान्तर क रूप में अनुसन्धान शब्द को स्वीकार करना अधिक समीचीन होगा।

अनुसन्धान के पर्याय क रूप म मुख्य रूप स शोध, गवेषण तथा अन्वेषण

तदभव तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है यथा गवेषण पृच्छा गहन निरीक्षण या परीक्षण जाँच उद्देश्य योजना क्रमबद्ध करना तत्पर होना उपयुक्त संयोग अन्वेषण चेष्टा शोध निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति तथा खोज इत्यादि हैं। ये सभी शब्द अनुसन्धान के पर्याय कहे जा सकते हैं। इनमें अधिकांश शब्दों का उद्भव संस्कृत की धातुओं से हुआ है—गवेषणा में गो शब्द से (गवेष्) इष (इच्छायाम) धातु का प्रयोग हुआ है। पृच्छा शब्द पृच्छ (जिज्ञासायाम) धातु से टाप प्रत्यय के योग से निर्मित हुआ है। अन्वेषण में अनु उपसर्ग से इष् (इच्छायाम) धातु का प्रयोग हुआ है। निरीक्षण तथा परीक्षण शब्द क्रमश निर् तथा परि उपसर्गों से ईक्ष (आलोकने) धातु से बने हैं। शोध शब्द में शुद्ध (शोधने) धातु का प्रयोग है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी शब्द अनुसन्धान के पर्याय हैं लेकिन इनमें अनुसन्धान ही हिन्दी साहित्य का उपयुक्त तथा बहुप्रचलित शब्द है। हम अनुसन्धान की उपयुक्तता तथा अन्य शब्दों की अक्षमता पर अगले पृष्ठों में विचार करेंगे।

अनुसन्धान का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ—अनुसन्धान शब्द मूलत संस्कृत का शब्द है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार अनुसन्धान में अनु उपसर्ग का प्रयोग है। अनु का अर्थ पीछे बाद में पश्चात् फलस्वरूप या क्रमानुसार होता है। सन्धान एक पृथक संस्कृत शब्द है जिसका प्रयोग हिन्दी में भी बहुतायत से होता है। हिन्दी में सन्धान का अर्थ एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचने के लिये होता है लेकिन संस्कृत में सन्धान एक शब्द नहीं है इसमें सम उपसर्ग जुड़ा हुआ है। इस सम उपसर्ग का अर्थ सम्यक पूर्ण बहुत तथा बिल्कुल होता है। इसके अतिरिक्त (डुधाञ्) धा (धारण पोषणयो) धातु है। इस धातु का प्रयोग धारण (और पोषण) करने के अर्थ में होता है। धा धातु से ल्युट प्रत्यय होता है तथा इस ल्युट प्रत्यय के 'ल् और ट' आद्यन्त अक्षरों का लोप हो जाता है शेष यु के स्थान पर अन' हो जाता है।[1] सम उपसर्ग की म का धा धातु का योग होने से उसी वर्ग (तवर्ग) का पंचम अक्षर न हो जाता है। धा + अन में दीर्घ सन्धि होकर धान शब्द निष्पन्न होता है[2] और इस प्रकार निम्नलिखित भिन्न रूपों में बदलकर अनुसन्धान शब्द की निष्पत्ति होती है यथा—

अनु–सम–धा–ल्युट	(भावे) (अनु पूर्वक सम् उपसर्ग)
अनु–सम–धा–यु	(ल और ट की इत्संज्ञा तथा लोप)
अनु–सम–धा–अन	(यु के लिए अन)
अनु–सन–धा–अन	(सम् की म को न्)
अनु–सन्–धान	(धा अन में दीर्घ सन्धि होकर धान बना)

अत अनु (क्रमानुसार) सम (सम्यक रूप से) धा (धारण करना या विचार करना)।

इस प्रकार अनुसन्धान का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ हुआ किसी विषय पर क्रम से तथा सम्यक रूप से विचार करना। यहाँ अनु (क्रमानुसार) और सम् (सम्यक रूप से) दोनों उपसर्ग विशेष द्रष्टव्य हैं, क्योंकि ये चिन्तन की वैज्ञानिक पद्धति की ओर संकेत करते हैं। विज्ञान किसी भी विषय के क्रमबद्ध ज्ञान को कहते हैं जिसके अन्तर्गत तथ्य और सिद्धान्त दोनों सम्मिलित हैं।

हिन्दी का अनुसन्धान अंग्रेजी के 'रिसर्च' का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रेजी का 'रिसर्च' शब्द भी दो शब्दों के योग से बना है। इसमें 'रि' (Re) उपसर्ग (Prefix) है जिसका अर्थ दुबारा और वापस होता है तथा सर्च (search) मूल शब्द है जो फ्रेन्च भाषा के शब्द कर्च (cerche) तथा चर्च (cherche) से प्रादुर्भूत है, इस फ्रेंच भाषा के शब्द चर्च (cherche) का अर्थ खोजना (to seek) तथा व्यवस्थित करना (systematic) होना है। अंग्रेजी भाषा में इसी चर्च (cherche) को सर्च (surch) तथा सर्च (search) ग्रहण किया गया है इसका अर्थ भी अन्वेषण, गवेषण, शोध करना, अनुसन्धान, जिज्ञासा, विचारण इत्यादि होता है। अत 'रिसर्च' का अर्थ भी अनुसन्धान, शोध, किसी विषय का वैज्ञानिक (क्रमबद्ध) अध्ययन होता है।

'आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी' में रिसर्च के निम्नलिखित अर्थ मिलते हैं।[3] सूक्ष्म अथवा सावधानी पूर्ण किसी विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के विषय में खोज कार्य, विवेकपूर्ण चिन्तन के द्वारा किसी तथ्य की खोज की ओर उन्मुख होना अथवा किसी विषय का अध्ययन, किसी निर्धारित विषय की समीक्षात्मक या वैज्ञानिक परिपृच्छा तथा किसी विषय का अनुसरण करना।

कोश में रिसर्च शब्द के जो अर्थ मिलते हैं उन पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि यह शब्द वैज्ञानिक या आलोचनात्मक अध्ययनों के लिए प्रयुक्त होता है। इसी आशय को प्रथम अर्थ में ही स्पष्ट किया गया है। इसमें कहा गया है कि 'रिसर्च सूक्ष्म अथवा सावधानी पूर्ण किसी विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के विषय में खोज कार्य है।' इस प्रकार से अनुसन्धान या रिसर्च में सूक्ष्मता, सावधानी, नवीनता, वैज्ञानिकता या क्रमबद्धता का भाव निहित है।

हिन्दी का अनुसन्धान भी अंग्रेजी के रिसर्च शब्द के समान ही समरूप अर्थ का व्यंजक है। चूंकि हिन्दी में अनुसन्धान कार्य पाश्चात्य संकल्पना, प्रविधि और प्रक्रिया को स्वीकार करता है अत रिसर्च के यथा तथ्य हिन्दी रूपान्तर के रूप में अनुसन्धान शब्द को स्वीकार करना अधिक समीचीन होगा।

अनुसन्धान के पर्याय के रूप में मुख्य रूप से शोध, गवेषण तथा अन्वेषण

शब्द ही मिलते हैं, लेकिन ये शब्द सम्यक रूप से पाश्चात्य शब्द 'रिसर्च' के सम कक्ष नहीं प्रतीत होते हैं। वस अनुसन्धान के लिए शोध शब्द का प्रचलन बहुतायत से होता है। अधिकांश कोशों में शोध का अर्थ परिमार्जन संशोधन परिष्कार दोष निवारण या सम्मार्जन आदि मिलता है। शब्द कल्पद्रुम में इसी शोध शब्द को शोधन माना गया है[4] और शुध (शोधने) धातु से यह शब्द बना है। इस कोश में इसका अर्थ केवल सम्मार्जन ही मिलता है। वाचस्पत्यम में भी शुध धातु से शोधन शब्द बना है जिसको हम शोध के रूप में स्वीकार करते हैं। इसमें शोध (शोधन) का अर्थ दोष निवारण शोध तथा शुद्धिकारक मिलते हैं। वामन शिव राम आप्टे ने शुध् धातु से घञ प्रत्यय करके शोध तथा शुध+णिच+ल्युट से शोधन शब्द बनाया है[5] जिसका अर्थ संशोधन परिष्कार परिमार्जन आदि दिये हैं।

उपर्युक्त शब्दपरक विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि शोध शब्द का प्रयोग अनुसन्धान के संदर्भ में उपयुक्त नहीं है यह आंशिक रूप से ही सत्य हो सकता है क्योंकि विश्वविद्यालयीय अनुसन्धान कार्य में संशोधन परिमार्जन परिष्कार तथा छिद्रान्वेषण आदि ही मुख्य नहीं होते हैं। इनमें केवल दोषों का निदर्शन होता है लेकिन यह अनुसन्धान कार्य का प्रधान अंश नहीं हो सकता है। अतः शोध शब्द में केवल सीमित अर्थ ही प्राप्त होता है, जबकि अनुसन्धान सशक्त तथा व्यापक शब्द है।

अन्वेषण—अनुसन्धान के पर्याय के रूप में कतिपय सुधी समीक्षक अन्वेषण शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ अनु+इषु+ल्युट—अन है, अनु उपसर्ग इषु (इच्छायाम्) धातु ल्युट् प्रत्यय तथा ल्युट् के लिए अन होकर अन्वेषण शब्द बना है। इस प्रकार स्वेच्छा से किसी वस्तु या विषय को व्यवस्थित करना अन्वेषण कहलाता है। वामन शिवराम आप्टे ने अन्वेषण का अर्थ खोजना, ढूंढना तथा देखभाल करना दिया है।[6] किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि अनुसन्धान के क्षेत्र में खोज या देखभाल ही पर्याप्त नहीं है और न ही स्वेच्छा से अनुसन्धान को व्यवस्थित किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि अनुसन्धान शब्द में जो भाव गाम्भीर्य निहित है वह अन्वेषण में नहीं है। अतः अन्वेषण शब्द को अनुसन्धान का समकक्षीय कहना उचित नहीं प्रतीत होता है।

गवेषण—अनुसन्धान की समकक्षता में एक अति प्रचलित शब्द गवेषण भी है। 'शब्द कल्पद्रुम'[7] तथा वाचस्पत्यम्[8] आदि शब्द कोशों के अनुसार गवेषण शब्द गवेष् धातु से ल्युट प्रत्यय के योग से बना है। वामन शिवराम आप्टे ने अपने कोश में गवेष् का अर्थ ढूंढना खोजना उत्कट इच्छा करना प्रयत्न करना पूछताछ करना तथा प्रबल उद्योग करना इत्यादि दिया है।[9] किन्तु अनुसन्धान केवल उत्कट

इच्छा मात्र म ही पूरा नही होता है । इतना अवश्य है कि प्रबल उदयोग या पूछ ताछ मे अनुसधान के क्षेत्र में कुछ सहायता अवश्य मिलती है । अत गवेषण शब्द अनुसन्धान की अपेक्षा सकुचित अर्थ प्रदान करता है इसस जो व्यापकता अनुसन्धान म परिलक्षित होती है, वह गवेषण म नही उपलब्ध होता है । इसलिए गवेषण शब्द भी अनुसधान की समकक्षता म उपयुक्त प्रतीत नही होता है ।

अनुसन्धान की परिभाषाएँ

अनुसन्धान या रिसर्च मूलत विज्ञान की सकल्पना है भारतीय ज्ञान और साहित्य मे इसका आधुनिक प्रयोग पाश्चात्य साहित्य और चिन्तन से ग्रहण किया गया है । पाश्चात्य विज्ञान और मानविकी साहित्य मे अनुसधान क सद्धान्तिक पक्ष पर प्रचुर साहित्य प्रकाशित हुआ है जिसम इसके विभिन्न पक्षो पर पर्याप्त प्रकाश पडता है । पाश्चात्य विद्वानो ने अनुसधान की जो परिभाषाए दी हैं उनम स कुछ उपयुक्त परिभाषाओं का यहाँ विश्लेषण किया गया है—

(क) पाश्चात्यमत

ग्रिफिथ थोम्पसन पग—अनुसन्धान एक प्रकार की जाँच पडताल है । यह विषय के सम्बन्ध म पता लगाता है और परिणामो को लिपिबद्ध करता है । यह गम्भीर तथा अध्यवसायपूर्ण और सोद्देश्य परिपृच्छा है तथ्यो का पता लगाना है उपकल्पना का सूत्रीकरण करना है वतमान सद्धान्तिकी का प्रमाणित करना और एक प्रतिष्ठित दृष्टिकोण पर नया प्रकाश डालना है, एतिहासिक अन्तर्दृष्टि को प्राप्त करना है महत्वपूर्ण तथ्यो की प्रतिस्थापना है, भौतिक प्रघटनाओ का सम्बोध प्राप्त करना है अथवा उपसहार की परिपुष्टि के लिए दूसरे (व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत) के तथ्यो की उपलब्धियो को व्यवस्थित और समन्वित करके व्याख्या करना है ।

अनुसधान के क्षेत्र में थोम्पसन पग की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट है । इसमें उन्होने अनुसधान के मूल तत्वो का प्रतिपादन किया है यथा—

1 अनुसधान एक तथ्यान्वेषण है जो किसी विषय के सम्बन्ध म ठीक ठीक पता लगाकर उन तथ्यो को प्रस्तुत करता है ।

2 पग ने अनुसन्धान में गम्भीर परिश्रम और श्रम को विशेष महत्व प्रदान किया है ।

3 पग ने अनुसन्धान के तीन लक्ष्य बताये है—

(क) उपकल्पना का निर्माण ।

(ख) किसी प्रचलित मत की सम्पुष्टि करना ।

(ग) किसी प्रचलित सैद्धान्तिकी की औचित्यानौचित्य का निर्धारण करना ।

4 उन्होंने (घटनाओं के द्वारा) नियमों का ज्ञान प्राप्त करने की ओर संकेत किया है।

5 एक ने अपने एक विशिष्ट तथ्य के द्वारा यह भी स्पष्ट किया है कि अनुसन्धान में प्राप्त निष्कर्षों की परिपुष्टि के लिए दूसरे के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की भी व्यवस्थित ढंग से व्याख्या की जा सकती है।

इनसाइक्लोपीडिया आफ सोसल साइंस—'अनुसन्धान वस्तुओं का संयोजन तथ्यों के सामान्यीकरण के लिए संकल्पनाओं अथवा प्रतीकों का विस्तार करना है ज्ञान का संशोधन या सत्यापन करना है, चाहे वह ज्ञान सिद्धान्तिकी की रचना में सहायता करता हो अथवा कला के व्यवहार में।

1 इस परिभाषा में अनुसन्धान को संयोजन माना गया है। संयोजन का मुख्य सम्बन्ध व्यवस्था से होता है।

2 पारिभाषिक प्रविधियों या शब्दों तथा प्रतीकों के अर्थों को स्पष्ट करना अनुसन्धान का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य होता है। अनुसन्धान केवल नये तथ्यों की उपलब्धि ही नहीं है बल्कि इसमें पूर्ववर्ती ज्ञान का परिष्कृत किया जाता है तथा उसकी त्रुटियों एवं भ्रान्तियों का निरसन होता है।

जेम्स हार्वे राबिसन—'अनुसन्धान और कुछ नहीं है केवल यह एक अध्यवसायपूर्ण खोज है जिसमें आदिम युगीन मनुष्यों के आखेट के समान आनन्द की प्राप्ति होती है।[10]

इस परिभाषा में अनुसन्धान की तुलना आदिम युगीन शिकार से की गई है। उस समय आखेट में मनुष्य को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता था फिर भी उसमें यह निश्चित नहीं होता था कि इस परिश्रम का कोई सुखद परिणाम भी हो सकता है लेकिन यह कार्य आनन्ददायक होता था। अनुसन्धान में अनुसंधित्सु की भी यही स्थिति रहती है, वह किसी विषय पर महीनों और वर्षों कार्य करने के उपरान्त भी आवश्यक नहीं है कि किसी महत्वपूर्ण तथ्य की खोज कर ही ले। अर्थात इसमें ऊहापोह एवं सनसनी खेज स्थिति बनी रहती है लेकिन यह अध्यवसायपूर्ण प्रक्रिया आखेट के समान ही आनन्ददायक अवश्य होती है।

तात्पर्य यह है कि अनुसन्धान में फल की आशा किये बिना अर्थात् अनासक्त या निरपेक्ष होकर परिश्रम करने पर विशेष बल दिया गया है। जेम्स हार्वे राबिन्सन की यह उक्ति अनुसन्धान की परिभाषा की कोटि में तो नहीं आती है, लेकिन उन्होंने आखेट के रूपक में अनुसन्धान की प्रकृति और प्रक्रिया दोनों को नितान्त सजीव रूप में प्रस्तुत करके स्तुत्य कार्य किया है।

टीरस हिलवे—अनुसन्धान एक उपकरण है, जिसका मानव जाति ने कई

शताब्दियों तक बहुत सम्मति से (अध्यवसाय करके) पूर्ण परिष्कार किया। वर्तमान समय में यह हमारे ज्ञान की प्रगति का अत्यधिक विश्वसनीय साधन प्रतीत होता है अन्य विधियों की तरह इसका भी उद्देश्य उन तथ्यों एवं विचारों की खोजना है जो पहले से मनुष्य को ज्ञात नहीं थे।'[11]

हिलवे की परिभाषा में मुख्य रूप से तीन विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—

1 आपके अनुसार अनुसन्धान एक साधन है साध्य नहीं है।

2 यह सामान्य साधन नहीं है अपितु यह एक परिष्कृत एवं विश्वसनीय साधन है। मनुष्य के ज्ञान का विकास भी इसी साधन के द्वारा होता है।

3 हिलवे के अनुसार अनुसन्धान का लक्ष्य है कि सतत अध्यवसाय के द्वारा उन तथ्यों को प्राप्त करना जिनसे हम पूर्ण रूपेण परिचित नहीं थे। इस प्रकार इसमे मनुष्य के ज्ञान का विकास किया जाता है।

श्रीमती पी० वी० यंग—'सामाजिक अनुसन्धान की परिभाषा हम नये तथ्यों की खोज पुराने तथ्यों के सत्यापन, उनकी क्रमबद्धताओं तथा अन्तःसम्बन्धों, कार्यकारण व्याख्याओं तथा उन्हें नियन्त्रित करने वाले स्वाभाविक नियमों की विधिवत खोज के रूप में कर सकते हैं।'[12]

भौतिक विज्ञानों की अपेक्षा सामाजिक अनुसन्धान साहित्यिक अनुसन्धान से अधिक निकट है। इसी के आधार पर श्रीमती यंग की परिभाषा यहाँ ग्राह्य है। उपर्युक्त परिभाषा में निम्नांकित तथ्यों को निरूपित किया गया है—

1 नये तथ्यों की खोज करना।

2 पुराने तथ्यों को परिष्कृत करना।

3 उन तथ्यों को क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित करके उनके पारस्परिक सम्बन्धों को बनाए रखना।

4 सामान्य नियमों के नियामक विशिष्ट नियमों की प्रकृति (स्वभाव) का पता लगाना।

एच० पी० फेयर चाइल्ड द्वारा सम्पादित डिक्शनरी आफ सोसियोलाजी—किसी सामाजिक अवस्थिति में किसी समस्या के समाधान के उद्देश्य से या नई घटना की खोज के लिए या विभिन्न घटनाओं के बीच नये सम्बन्धों के उद्घाटन के लिए निश्चित् क्रिया विधि का उपयोग सामाजिक अनुसन्धान कहलाता है। ये क्रिया विधियाँ स्वीकृत वैज्ञानिक मानदण्डों के अनुरूप होनी चाहिए।[13] इस परिभाषा में अनुसन्धान की तीन विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं—

1 अनुसन्धान में किसी समस्या का समाधान खोजा जा सकता है या किसी प्राक्कल्पना या पूर्व निर्धारित धारणा की परीक्षा की जा सकती है, अथवा किसी नई घटना की खोज भी की जा सकती है या पहले से

परस्पर कार्य कारण का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है या सम्बन्ध को खोजा जा सकता है।

2 उपर्युक्त लक्ष्यों में से एक या एक से अधिक की पूर्ति के लिये ऐसी निश्चित क्रिया विधि का अनुसरण करना चाहिये जो स्वीकृत मानदण्डों के अनुरूप हो।

3 इस परिभाषा में निश्चित क्रिया विधि या वैज्ञानिक पद्धति को ही अनुसन्धान माना गया है। दूसरे नये तथ्यों की खोज को ही अनुसन्धान नहीं माना गया है जैसी कि सामान्य प्रचलित धारणा है।

(ख) भारतीय मत

डा गुलाबराय–अनुसन्धान एक व्यापक शब्द है। अनुसन्धान वैज्ञानिक विषयों का भी होता है और साहित्यिक विषयों का भी किन्तु दोनों की पद्धति और उसके स्वरूप में विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर यदि है तो विषय की आवश्यकताओं और प्रयोग पद्धतियों का। दोनों में ही सूक्ष्म और सोद्देश्य निरीक्षण के साथ परीक्षण और प्रयोग के पश्चात गम्भीर विवेचन रहता है जिसमें विपक्षीय घटनाओं, उदाहरणों और विचार बिन्दुओं का उतना ही स्वागतपूर्ण विवेचन होता है जितना कि सपक्षीय घटनाओं उदाहरणों तथा विचार बिन्दुओं का।[14]

1 'साहित्यिक अनुसन्धान में नवार्जित ज्ञान को पूर्वार्जित ज्ञान के आलोक में व्याख्या करके सगति बढाई जाती है।[15]

गुलाबराय की परिभाषा में वैज्ञानिक विषयों का भी अनुसन्धान बताया गया है जबकि *साहित्यिक और वैज्ञानिक विषय अलग अलग नहीं होते हैं।* प्रत्येक विषय वैज्ञानिक होता है। अनुसन्धान वैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों विषयों का होता है लेकिन साहित्यिक अनुसन्धान में भी वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग होता है। वस्तुत अनुसन्धान की पद्धति वैज्ञानिक ही होती है।

2 प्रस्तुत परिभाषा में पहले निरीक्षण (Observation) शब्द का प्रयोग किया गया है और बाद में परीक्षण (Experiment) का। जबकि वैज्ञानिक पद्धति में पहले परीक्षण होता है और उसके बाद उस परीक्षण से प्राप्त तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण होता है। निरीक्षणोपरान्त उन तथ्यों का वर्गीकरण किया जाता है और वर्गीकरण के पश्चात् ही उनका निष्कर्ष निकाला जाता है। अत यह परिभाषा अनुपयुक्त तो नहीं लेकिन औचित्य की सीमा से रहित है क्योंकि इसमें विशुद्ध वैज्ञानिक पद्धति का सम्यक् निर्वाह नहीं होता है।

3 अनुसन्धान के अन्तर्गत सपक्षीय घटनाओं की तरह ही विपक्षीय घटनाओं का भी मूल्यांकन किया जाता है।

4 डॉ० गुलाबराय की द्वितीय परिभाषा में भी आंशिक सत्यता या पूर्णतः

आभास नहीं मिलता है क्योंकि इसमें कहा गया है कि अनुसन्धान में नवार्जित ज्ञान को पूर्वार्जित ज्ञान से जोड़ा जाता है। यह बात अंशतः सत्य मानी जा सकती है, क्योंकि यत्र-तत्र यदा कदा ही ऐसी स्थिति आती है। वैज्ञानिक पद्धति के लिए तो यह तथ्य निर्मूल प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ विज्ञान में प्लेटिनम या रेडियम के अनुसंधान से पूर्व इस धातु विशेष का कोई नाम भी नहीं जानता था। अनुसन्धित्सु ने नवार्जित ज्ञान के द्वारा ही इस धातु को इस नाम से अलंकृत किया। यहाँ पूर्वार्जित ज्ञान से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्री परशुराम चतुर्वेदी– अनुसन्धान की प्रक्रिया के अन्तर्गत केवल किसी वस्तु विषयक तात्विक चिन्तन या गवेषणा का ही समावेश नहीं रहता है उसके सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण को भी उचित स्थान मिला करता है। इसमे उसके प्रत्येक अंश का एक दूसरे के साथ कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने तथा उनके संश्लेषण द्वारा किसी महत्वपूर्ण निश्चय तक पहुँचने की भी प्रधानता रहती है।'[16]

1 इस परिभाषा में एक पारिभाषिक शब्द गवेषणा का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया गया है।

2 श्री चतुर्वेदी जी ने अपनी परिभाषा में तात्विक चिन्तन के साथ सूक्ष्म निरीक्षण एवं विश्लेषण पर भी बल दिया गया है।

3 अनुसन्धान में प्रत्येक अंश का पूर्वापर सम्बन्ध रहता है और उनके सम्यक विवेचन से प्राप्त निष्कर्षों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

4 श्री चतुर्वेदी जी की परिभाषा में क्रमबद्धता का अभाव परिलक्षित होता है क्योंकि व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान ही अनुसन्धान का प्रधान अंग है। इसके अभाव में ही परिभाषा अनुसन्धान के मौलिक अंग से हटकर प्रतीत होती है।

डॉ० भगीरथ मिश्र– अनुसन्धान के भीतर नवीन तथ्यों नवीन विचारों निष्कर्षों नियमों दृष्टियों परम्पराओं, कारणों आदि का उद्घाटन आवश्यक है।[17]

1 डॉ० मिश्र की परिभाषा पूर्ण परिभाषा नहीं है क्योंकि इसमें केवल अनुसन्धान की विषयवस्तु की ओर संकेत किया गया है लेकिन उसकी पद्धति और प्रक्रिया का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। जबकि वस्तुतः अनुसन्धान में पद्धति का ही महत्व होता है।

2 अनुसन्धान में निष्पक्षता और तटस्थता सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। जिस किसी कृति पर हम अनुसन्धान कर रहे हैं और उसमें कुछ नवीनता नहीं है तो अनुसन्धित्सु उसमें बलात नवीनता आरोपित नहीं कर सकता है। मिश्र जी के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि यदि नये विचार एवं नये तथ्य नहीं खोले गये तो वह अनुसन्धान नहीं है। अनुसन्धान वास्तव में एक वैज्ञानिक अर्थात् क्रमबद्ध प्रणाली

है। उसके द्वारा नये तथ्य प्राप्त होंगे या नहीं होंगे उसका कोई विशेष महत्व नहीं है।

3 इस परिभाषा में अनुसन्धान के तत्वों का क्रमबद्ध रूप में उल्लेख न करके बहुत सी बातें एक साथ आगे पीछे करके कह दी गई हैं। जस नियम अनुसन्धान में सबसे अन्त में आते हैं लेकिन इन्होंने दृष्टियों परम्पराओं के पहले नियम का उल्लेख कर दिया है। पता नहीं उनका इससे क्या आशय है।

डा० नगेन्द्र– अनुसन्धान का अर्थ है दिशा और अनु का अर्थ है पीछे इस प्रकार अनुसन्धान का अर्थ हुआ किसी लक्ष्य को सामने रखकर दिशा विशेष में बढ़ना पश्चाद् गमन अर्थात् किसी तथ्य की प्राप्ति के लिये परिपृच्छा परीक्षण आदि करना।[18]

1 *डॉ० नगेन्द्र ने अनुसन्धान शब्द की कोई सम्यक परिभाषा नहीं दी है।* उन्होंने केवल अनुसन्धान शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ देकर छोड़ दिया है। केवल व्युत्पत्ति मूलक अर्थ से किसी विषय के अन्तरंग या उसके व्यावहारिक रूप का परिचय प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है। आधुनिक अर्थ में अनुसन्धान केवल लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना ही नहीं है अपितु किस प्रकार से आगे बढ़ा जाय यह विशेष महत्वपूर्ण है। इस परिभाषा में अनुसन्धान के इस आधारभूत तत्व का कोई उल्लेख नहीं है। जस भौतिक साहित्यिक सामाजिक सांस्कृतिक आदि अनेक क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ निरीक्षण परीक्षण करता रहता है ये सब व्यक्ति न अनुसन्धानकर्त्ता हैं और न वैज्ञानिक। जो व्यक्ति क्रमबद्ध व्यवस्थित और मान्य प्रणाली के द्वारा निरीक्षण परीक्षण करते हैं उन्हीं कार्यों को अनुसन्धान कहा जाता है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी– शोध शब्द में किसी अज्ञात तथ्य को प्रकाश में लाने और प्रतिष्ठित करने का आशय निहित है। शोध में बिखरे हुए तथ्यों का संयोजन और समाहार भी किया जाता है। शोध के लिए उस समस्त सामग्री का संचय और संग्रह आवश्यक है जो उस वस्तु या विषय से सम्बन्धित है और इस समस्त संग्रह को सुव्यवस्थित रूप में सजाकर उसके आधार पर वस्तु मूलक स्थापनाएँ की जाती हैं और निर्णय दिये जाते हैं। *शोध में विषय से सम्बन्धित पूर्ववर्ती* वक्तव्य भी दिये जाते हैं तथा उनके आधार पर नया अभिमत व्यक्त किया जाता है। शोध के लिए प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है और तभी किसी नये निष्कर्ष का उपन्यास किया जा सकता है। फिर उस निष्कर्ष की पुष्टि करने के लिए विरोधी अभिमतों का खण्डन और निराकरण कर नये निर्णय की प्रतिष्ठा की जाती है। यह नया निर्णय जब एक स्वतन्त्र विचार सारणी के रूप में उपस्थित होता है तब उसे थीसिस या प्रबन्ध कहते हैं।[19]

1 वास्तविक अर्थ म यह परिभाषा नहीं है लेकिन इसमें शोध की विशेष ताओं का विश्लेषण पर्याप्त स्पष्ट रूप में किया गया है। इस परिभाषा में मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

(क) अज्ञात तथ्यों का उदघाटन।
(ख) बिखरे तथ्यों का सयोजन।
(ग) विषय से सम्बन्धित सामग्री का सकलन।
(घ) प्राप्त सामग्री का सुनियोजन।
(ङ) विश्लेषण और निष्कर्ष।

2 प्रत्येक अनुसन्धान मे अज्ञात तथ्यों का उदघाटन नही होता है। कभी कभी अनुसन्धान में सुपरिचित तथ्यों की सत्यता प्रमाणित करना ही अनुसन्धान का लक्ष्य होता है।

(ग) अनुसन्धान की सतुलित परिभाषा

अनुसन्धान की उपयुक्त विभिन्न विद्वानो की परिभाषाओं मे पाश्चात्य परिभाषाए पर्याप्त सन्तोषजनक प्रतीत होती है। लेकिन भारतीय परिभाषाओ मे बहुत अस्पष्टता परिलक्षित होती है। परिभाषा का लक्ष्य अत्यन्त स्पष्ट शब्दों म तथा सक्षेप म किसी विषय का अधिकतम बोध करा देना होता है। एक उत्तम परिभाषा म क्या, क्यो और कसे इन तीन प्रश्नो का उत्तर अवश्य प्राप्त होना चाहिये। जसे अनुसन्धान क्या है ? क्यो किया जाता है ? और कसे किया जाता है ? अनुसन्धान की किसी परिभाषा म इन तीनों प्रश्नो का सुनिश्चित उत्तर नही प्राप्त होता है। वह परिभाषा आंशिक या एकागी है। इस दृष्टि मे यदि हम अनुसन्धान की परिभाषा करना चाहें तो कह सकते हैं कि–अनुसन्धान मूलत किसी विषय के अध्ययन या अनुशीलन की सुनिश्चित क्रिया पद्धति है जिसमे अनुसन्धानकर्ता तटस्थ भाव से या पूर्वाग्रह रहित होकर प्रयोग, सूक्ष्म पर्यवेक्षण तथ्यो के वर्गीकरण और विश्लेषण द्वारा किसी यथा तथ्य निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है, जिसका लक्ष्य उस विषय क सम्बन्ध म सापेक्ष्य सत्य का उद्घाटन करना भ्रमो का निवारण करना या उस सम्बन्ध म उपलब्ध तथ्यो को सुसयोजित करके व्याख्या करना, पुराने तथ्यो को नव्य परिप्रेक्ष्य प्रदान करना किसी नव नियम की प्रतिष्ठा या ज्ञात तथ्य को प्रामाणिकता प्रदान करना है।

अनुसधान का लक्ष्य

अनुसधान की विभिन्न परिभाषाओ क अनन्तर उसके लक्ष्य पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है क्योकि अनुसन्धान में लक्ष्य को ही सामने रखकर अग्रसरित हुआ जाता है। लक्ष्य के बिना अनुसधान काय म अनुसन्धित्सु की स्थिति

दिग्भ्रमित पथिक की भांति बनी रहती है और अन्त तक वह अभीप्सित कार्य को पूरा नहीं कर पाता है। इस दृष्टि से लक्ष्य अनुसन्धान का प्रमुख अंग है। अनुसन्धान के लक्ष्य को मुख्य रूप से दो अनुभागों में विभक्त किया जा सकता है—

1 सामान्य लक्ष्य 2 विशिष्ट लक्ष्य

अनुसन्धान के शाब्दिक अर्थ और इसकी परिभाषा में अनुसन्धान के उद्देश्य या लक्ष्य के सम्बन्ध में संकेत मात्र किया गया है। प्रायः अनुसन्धान के लक्ष्य के सम्बन्ध में विभ्रम की स्थिति देखने को मिलती है। लक्ष्य के स्पष्ट न होने के कारण अनुसंधित्सु का प्रयास निरर्थक रहता है और विद्वानों की आलोचना का विषय बनता है। सम्प्रति लक्ष्यहीन अनुसन्धानों की प्रचुरता है। कतिपय अनुसंधित्सु इन लक्ष्यहीन शोध प्रबन्धों का उद्देश्य उपाधि पाना, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में नौकरी पाना मात्र मानते हैं। फलतः यह शोध का लक्ष्य नहीं है। बौद्धिक दृष्टि से शोध के लक्ष्य निम्नांकित हैं जिन्हें हम सामान्य और विशिष्ट दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

अनुसन्धान का सामान्य लक्ष्य – अधिकांश विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि शोध का उद्देश्य ज्ञान का विस्तार करना है। सामान्य रूप से प्रत्येक उच्च कोटि के अनुसन्धान कार्य में मौलिक और नवीन तथ्यों का उद्घाटन होता है। यह नये तथ्य ज्ञान के सम्वर्द्धन में योगदान करते हैं, लेकिन अनेक स्थितियों में तात्विक रूप में अनुसन्धान ज्ञान की वृद्धि में विशेष सहायक नहीं होता है। उदाहरण के लिए अनुसन्धान का लक्ष्य किसी उपलब्ध ज्ञान की प्रामाणिकता की परीक्षा करना होता है, जिससे नये ज्ञान की वृद्धि नहीं होती है केवल उसकी पुष्टि हो जाती है। जैसे तुलसीदास राजापुर में पैदा हुए या नहीं इस विषय पर शोध कार्य करने वाला व्यक्ति समस्त वैज्ञानिक पद्धतियों का अनुसरण करेगा और वह अपने निष्कर्ष देगा। यह निष्कर्ष एक सूचना मात्र को सत्यापित करना है न कि ज्ञान का विकास करना है। हिन्दी में अनेक ऐसे शोध प्रबन्ध हैं जिनके द्वारा किसी गम्भीर ज्ञान का विस्तार नहीं हुआ है, लेकिन सूचना के क्षेत्र में कुछ नये तथ्य मात्र प्राप्त हुए हैं। जैसे पाठानुसन्धान विषय के शोध में ज्ञान की वृद्धि नहीं होती है कुछ भ्रमों का निवारण मात्र होता है अथवा मध्य युगीन और आधुनिक हिन्दी कविता में पेड़ पौधे और पशु पक्षी जैसे विषय में सूचनाओं का संकलन मात्र होगा। कुछ अनुसन्धान वास्तविक रूप में ज्ञान के विस्तार में पर्याप्त सहायक होते हैं। विशेष रूप से सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बन्धित अनुसन्धान इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं। हिन्दी में सैद्धान्तिक पक्ष को लेकर बहुत कम अनुसन्धान हुआ है। जैसे 'ध्वनि सम्प्रदाय और उनके सिद्धान्त (डॉ० भोलाशंकर व्यास)[20] काव्य में रस (डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित)[21] रस की दार्शनिक और नैतिक व्याख्या (डा० तारकनाथ बाली)[22]

वास्तव में वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रयोग पर्यवेक्षण और विश्लेषण के बाद सामान्य नियम की प्रतिष्ठा के द्वारा ही ज्ञान का विस्तार किया जाता है। यदि अनुसन्धान के निष्कर्ष के रूप में किसी नियम की उपलब्धि नहीं होती तो उसे विशेष महत्वपूर्ण नहीं कहा जायेगा। भौतिक विज्ञानों में 'ला' और सामाजिक विज्ञानों में थ्योरी के द्वारा ही ज्ञान का विकास होता है। इन विज्ञानों में अनुसंधान का लक्ष्य इसी दिशा की ओर अग्रसर होना (करना) होता है। हिन्दी में इस प्रकार के ज्ञान के विस्तार की ओर बहुत ही कम कार्य हुआ है। अधिकांश अनुसंधान व्याख्यात्मक या सूचनात्मक हैं। यद्यपि यह कार्य भी अनुसन्धान की कोटि में ही परिगणित होगा, लेकिन इसे वास्तविक अर्थ में उच्चकोटि का अनुसंधान या ज्ञान प्रवद्धक नहीं कहेंगे।

मूलतः अनुसंधान एक सृजन है इसमें स्वान्तः सुखाय का गुण सन्निहित रहता है। जिन लोगों का यह कहना है कि काव्य कला में ही स्वान्तः सुखाय (आनन्द) की प्राप्ति होती है, सर्वांशतः सत्य नहीं है क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान भी इस सुख से परे नहीं है। उदाहरणार्थ जब आर्कमिडीज ने सापेक्षित घनत्व पर अनुसंधान करके अपने लक्ष्य को प्राप्त किया तो उसे भी परमानन्द की प्राप्ति हुई थी और वह नग्नावस्था में ही 'मिल गया मिल गया' की ध्वनि करता हुआ इधर उधर दौड़ने लगा था। तात्पर्य यह है कि अनुसंधान में जब अनुसन्धित्सु को अपेक्षित नवीन तथ्यों की प्राप्ति होती है तो उसे ब्रह्मानन्द जैसा आनन्द मिलता है। यह हो सकता है कि अनुसन्धान में काव्य जैसी सरसता भले ही न प्राप्त हो लेकिन आनन्द अवश्य मिलता है। इसलिए अनुसन्धान का दूसरा लक्ष्य 'स्वान्त सुखाय' भी होता है।

काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य को ह्लादैकमयी कहा है, क्योंकि इसमें अन्तःकरण के सभी सुख सम्मिलित होते हैं। कवि सर्वशक्तियों के साथ काव्य का निर्माण करता है और इसके बाद वही काव्य स्रष्टा को आह्लाद प्रदान करता है। ठीक यही बात अनुसन्धान में भी घटित होती है। अनुसन्धित्सु भी सर्वात्मना सायास प्रयास करके एक नया सृजन करता है और वही सृजन अनुसन्धित्सु के असीमित आह्लाद का हेतु बनता है। धीरे धीरे सहृदयों की रुचि के आधार पर यह परान्त सुखाय' भी बन सकता है। तुलसी ने मानस की रचना, सूर और मीरा ने कृष्ण गान स्वान्त सुखाय ही किया था लेकिन व्यावहारिक और सामाजिक पक्षों पर घटित होकर जब से ये रचनाएँ परान्त सुखाय बनी तो इन कृती काव्यकारों को द्विगुणित आनन्द मिला लेकिन यह आवश्यक नहीं कि उनकी रचना परान्त सुखाय बने। ठीक यही बात अनुसन्धित्सु पर भी घटित होती है। जिस तरह प्रत्येक सत्काव्य स्वान्त सुखाय लिखा जाता है उसी तरह प्रत्येक अनुसन्धान

रूप से कल्याण करना ही है। यदि कोई अनुसन्धान उपयोगिता की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण होता है तो उसकी उपेक्षा हो जाती है जो अनुसन्धान विशेष सार्थक होता है वह सार्वभौम सम्मान प्राप्त करता है।

अनुसन्धान का विशिष्ट लक्ष्य

वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण—अनुसन्धान सत्य के उद्घाटन की एक प्रणाली है। इसमें जिस साधन से सत्य तक पहुँचा गया है इस बात का महत्व होता है। विज्ञान का स्वभाव यथार्थता या वास्तविकता के विश्वसनीय ज्ञान का मुक्त मस्तिष्क से अनुसन्धान करना है भले ही वह यथार्थता प्राकृतिक हो या सामाजिक। इस रूप में इसमें प्रमाणों की सावधानी से की गयी सूक्ष्म परीक्षा निहित है। वैज्ञानिक पद्धतियाँ समस्त प्राकृतिक विज्ञानों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं। किसी विषय की समुचित जानकारी के लिए दो प्रणालियों का आश्रय लिया जाता है प्रथम अनुमान प्रणाली होती है। इस प्रणाली के द्वारा किसी विषय या वस्तु का अनुमान मात्र हो पाता है जैसे रास्ता चलते हुए एक पथिक ने दूसरे पथिक से पूछा कि अमुक गाँव की दूरी कितनी है दूसरे पथिक ने अनुमान से बता दिया कि 5 मील। अब यह निश्चित नहीं है कि वह गाँव ठीक पाँच मील ही हो कुछ कम या अधिक भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि अनुमान प्रणाली के द्वारा किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है क्योंकि इसमें प्रामाणिक मानदण्डों, प्रयोगों तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षणों का सर्वथा अभाव रहता है।

द्वितीय प्रणाली प्रत्यक्ष अनुभूति की होती है। इस प्रणाली में प्रयोग और प्रमाणों का आश्रय लिया जाता है। उदाहरणार्थ कल्पना करिए कि जाड़े के दिनों में बर्फ गिरने के पश्चात सुबह एक व्यक्ति खरगोश के शिकार के लिए बाहर जाता है। वह बर्फ पर झाड़ियों के झुरमुट की ओर बने खरगोश के परों के निशान देखता है तथा झुरमुट की सभी दिशाओं की बर्फ को सावधानी से देखता है, लेकिन उस झाड़ी से बाहर की ओर खरगोश के परों के निशान नहीं मिलते हैं। अतः वह यह निष्कर्ष निकालता है कि खरगोश अब भी झाड़ी के अन्दर ही है। इस प्रकार का निष्कर्ष वैज्ञानिक पद्धति से मान्य है। यही वैज्ञानिक तर्कना की प्रकृति का उदाहरण है। वास्तव में यही मार्ग है जिस पर चलकर समस्त विज्ञानों में महान निष्कर्ष पर पहुँचा गया है। इस सरल उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि जिसे हम वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं वह कुछ नहीं केवल सामान्य बुद्धि का परिष्कृत रूप है तथा इसमें तर्कना और अनुभूति जन्य तथ्यों की व्याख्या सदैव अन्तर्निहित होती है। यह सुदृढ़ तर्क और सामान्य बुद्धि से युक्त मानवीय अनुभूति पर आधारित है। लेकिन आज के अतिवैज्ञानिक इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं और कहते हैं कि विज्ञान तर्क पर आश्रित नहीं है (अर्थात जिस पर विश्वास नहीं किया जा

सकता है) अपितु पर्यवेक्षण मापन पद्धति तथा सूक्ष्म उपकरणों के उपयोग पर आधारित है। उनका कहना है कि झाड़ियों में खरगोश के होने के निष्कर्ष पर पहुंचने के पहले शिकारी को एक्सरे मशीन से यह जानना चाहिए था कि वास्तव में खरगोश वहाँ है अथवा नहीं या कम से कम खरगोश के छिपने के स्थान की कुछ झाड़ियाँ काट कर उसकी फोटो लेनी चाहिए थी या उसके पास मापन उपकरण होना चाहिए था और बर्फ पर पर के चिह्नों को सावधानी से मापना चाहिए था तथा बाद में खरगोश के पैरों के मानक प्रतिरूपों से मापों की तुलना करके यह निश्चित करना चाहिए था कि झाड़ियों में खरगोश है अथवा कोई अन्य जानवर छिपा है। अति वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक इस प्रकार से निष्कर्ष नहीं निकाले जायेंगे तब तक उन्हें वैज्ञानिक पद्धति से समन्वित नहीं कहा जायेगा। अनुसंधान का भी यही दृष्टिकोण रहता है कि अधिकतम वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके निष्कर्ष निकाले जायें। यह दृष्टिकोण भौतिक विषयों के अनुसंधान के लिए तो उपयुक्त हो सकता है लेकिन मानविकी के विषयों में इस तरह का कठोर परिप्रेक्ष्य व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता है।

ज्ञान प्राप्ति का साधन—अनुसन्धान स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं होता है बल्कि सत्य के उद्घाटन का साधन मात्र है। विदेशों में अधिकांशतः वैज्ञानिक पद्धति ही साध्य होकर रह गई है वहाँ निष्कर्षों का कोई महत्व नहीं है क्योंकि उनमें से अधिकांश वैज्ञानिक अनुसंधान की वैज्ञानिक पद्धति पर ही बल देते हैं तथा निष्कर्षों की पूर्ण उपेक्षा करते हैं। अतः किसी ऐसी स्थिति में अनुसन्धान केवल साध्य मात्र रह जाता है जो यथार्थ से दूर हो जाता है। इसे हम एक धार्मिक उदाहरण से भी समझ सकते हैं-धार्मिक क्षेत्र में पूजा का बहुत महत्व होता है। वास्तव में पौराणिक मान्यता के आधार पर पूजा ईश्वर के निकट पहुँचने का एक साधन मात्र है, लेकिन आज का भक्त इसे साधन न मानकर साध्य समझ लेता है क्योंकि वह पूजा को नित्यकृत्य समझ कर किसी भी स्थिति में पूरा करने का प्रयास करता है। वास्तव में पूजा भी शुद्ध बुद्धि या निर्मल ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। अनुसन्धान के द्वारा भी अनुसन्धित्सु विषय के छिपे हुए रहस्यों का उद्घाटन करके ज्ञान प्राप्त करता है। अतः अनुसंधान का लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करने का साधन है साध्य नहीं। क्योंकि आज का अनुसन्धित्सु भी अनुसन्धान को साध्य मानने लगा है और वह इसे केवल खानापूर्ति मात्र समझकर उपाधिग्रहण करना चाहता है उसका ज्ञान प्राप्त करने का लक्ष्य गौण हो जाता है।

विशृंखलित तथ्यों का संयोजन—एक ही विषय पर बहुत सी सामग्री बिखरी तथा छिटपुट रूप में प्राप्त होती हैं इस सामग्री को संकलित करके उसमें कार्य कारण का सम्बन्ध तथा समन्वय स्थापित करके उसका वर्गीकरण या विश्ले

रूप से कल्याण करना ही है। यदि कोई अनुसन्धान उपयोगिता की दृष्टि से अमहत्वपूर्ण होता है तो उसकी उपेक्षा हो जाती है जो अनुसन्धान विशेष सार्थक होता है वह सार्वभौम समादर प्राप्त करता है।

अनुसन्धान का विशिष्ट लक्ष्य

वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण—अनुसन्धान सत्य के उद्घाटन की एक प्रणाली है। इसमें जिस साधन से सत्य तक पहुँचा गया है इस बात का महत्व होता है। विज्ञान का स्वभाव यथार्थता या वास्तविकता के विश्वसनीय ज्ञान का मुक्त मस्तिष्क से अनुसन्धान करना है भले ही यह यथार्थता प्राकृतिक हो या सामाजिक। इस रूप में इसमें प्रमाणों की सावधानी से की गयी सूक्ष्म परीक्षा निहित है। वैज्ञानिक पद्धतियाँ समस्त प्राकृतिक विज्ञानों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं। किसी विषय की समुचित जानकारी के लिए दो प्रणालियों का आश्रय लिया जाता है प्रथम अनुमान प्रणाली होती है। इस प्रणाली के द्वारा किसी विषय या वस्तु का अनुमान मात्र हो पाता है जैसे रास्ता चलते हुए एक पथिक ने दूसरे पथिक से पूछा कि अमुक गाँव की दूरी कितनी है दूसरे पथिक ने अनुमान से बता दिया कि 5 मील। अब यह निश्चित नहीं है कि वह गाँव ठीक पाँच मील ही हो कुछ कम या अधिक भी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि अनुमान प्रणाली के द्वारा किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है क्योंकि इसमें प्रामाणिक मानदण्डों, प्रयोगों तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षणों का सर्वथा अभाव रहता है।

द्वितीय प्रणाली प्रत्यक्ष अनुभूति की होती है। इस प्रणाली में प्रयोग और प्रमाणों का आश्रय लिया जाता है। उदाहरणार्थ कल्पना करिए कि जाड़े के दिनों में बर्फ गिरने के पश्चात सुबह एक व्यक्ति खरगोश के शिकार के लिए बाहर जाता है। वह बर्फ पर झाड़ियों के झुरमुट की ओर बने खरगोश के परों के निशान देखता है तथा झुरमुट की सभी दिशाओं की बर्फ को सावधानी से देखता है लेकिन उस झाड़ी से बाहर की ओर खरगोश के परों के निशान नहीं मिलते हैं। अतः वह यह निष्कर्ष निकालता है कि खरगोश अब भी झाड़ी के अन्दर ही है। इस प्रकार का निष्कर्ष वैज्ञानिक पद्धति से मान्य है। यही वैज्ञानिक तर्कना की प्रकृति का उदाहरण है। वास्तव में यही मार्ग है जिस पर चलकर समस्त विज्ञानों में महान निष्कर्ष पर पहुँचा गया है। इस सरल उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि जिसे हम वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं वह कुछ नहीं केवल सामान्य बुद्धि का परिष्कृत रूप है तथा इसमें तर्कना और अनुभूति जन्य तथ्यों की व्याख्या सदैव अन्तर्निहित होती है। यह सुदृढ़ तर्क और सामान्य बुद्धि से युक्त मानवीय अनुभूति पर आधारित है। लेकिन आज के अतिवैज्ञानिक इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं और कहते हैं कि विज्ञान तर्क पर आश्रित नहीं है (अर्थात जिस पर विश्वास नहीं किया जा

सकता है) अपितु पर्यवेक्षण मापन पद्धति तथा सूक्ष्म उपकरणों के उपयोग पर आधारित है। उनका कहना है कि झाड़ियों में खरगोश के होने के निष्कर्ष पर पहुँचने के पहले शिकारी को एक्सरे मशीन से यह जानना चाहिए था कि वास्तव में खरगोश वहाँ है अथवा नहीं या कम से कम खरगोश के छिपने के स्थान की कुछ झाड़ियाँ काट कर उसकी फोटो लेनी चाहिए थी या उसके पास मापन उपकरण होना चाहिए था और बर्फ पर पैर के चिह्नों को सावधानी से मापना चाहिए था तथा बाद में खरगोश के पैरों के मानक प्रतिरूपों से मापों की तुलना करके यह निश्चित करना चाहिए था कि झाड़ियों में खरगोश है अथवा कोई अन्य जानवर छिपा है। अति वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक इस प्रकार से निष्कर्ष नहीं निकाले जायेंगे तब तक उन्हें वैज्ञानिक पद्धति से समन्वित नहीं कहा जायेगा। अनुसन्धान का भी यही दृष्टिकोण रहता है कि अधिकतम वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके निष्कर्ष निकाले जायँ। यह दृष्टिकोण भौतिक विषयों के अनुसंधान के लिए तो उपयुक्त हो सकता है लेकिन मानविकी के विषयों में इस तरह का कठोर परिप्रेक्ष्य व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता है।

ज्ञान प्राप्ति का साधन—अनुसन्धान स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं होता है, बल्कि सत्य के उद्घाटन का साधन मात्र है। विदेशों में अधिकांशतः वैज्ञानिक पद्धति ही साध्य होकर रह गई है वहाँ निष्कर्षों का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि उनमें से अधिकांश वैज्ञानिक अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धति पर ही बल देते हैं तथा निष्कर्षों की पूर्ण उपेक्षा करते हैं। अतः किसी ऐसी स्थिति में अनुसन्धान केवल साध्य मात्र रह जाता है जो यथार्थ से दूर हो जाता है। इसे हम एक धार्मिक उदाहरण से भी समझ सकते हैं-धार्मिक क्षेत्र में पूजा का बहुत महत्व होता है। वास्तव में पौराणिक मान्यता के आधार पर पूजा ईश्वर के निकट पहुँचने का एक साधन मात्र है, लेकिन आज का भक्त इसे साधन न मानकर साध्य समझ लेता है क्योंकि वह पूजा को नित्यकृत्य समझ कर किसी भी स्थिति में पूरा करने का प्रयास करता है। वास्तव में पूजा भी शुद्ध बुद्धि या निर्मल ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। अनुसन्धान के द्वारा भी अनुसन्धित्सु विषय के छिपे हुए रहस्यों का उद्घाटन करके ज्ञान प्राप्त करता है। अतः अनुसन्धान का लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करने का साधन है, साध्य नहीं। क्योंकि आज का अनुसन्धित्सु भी अनुसन्धान को साध्य मानने लगा है और वह इसे केवल खानापूर्ति मात्र समझकर उपाधिग्रहण करना चाहता है उसका ज्ञान प्राप्त करने का लक्ष्य गौण हो जाता है।

विशृंखलित तथ्यों का संयोजन—एक ही विषय पर बहुत सी सामग्री विकीर्ण तथा छिटपुट रूप में प्राप्त होती है इस सामग्री को संकलित करके उसमें कार्य कारण का सम्बन्ध तथा समन्वय स्थापित करके उसका वर्गीकरण या विश्ले

पण किया जाता है। ऐतिहासिक अनुसन्धान इसकी सीमाओं के अन्तर्गत आते हैं। जैसे दक्षिण के कवि' एक शोध विषय है इसमें सम्पूर्ण दक्षिण के कवियों और उनके कवित्व को खोजकर काल क्रमानुसार उनका समायोजन किया जाता है। यह सत्य है कि दक्षिण में बहुत से कवि हो सकते हैं और प्रत्येक कवि के विषय में समुचित जानकारी प्राप्त करना उनकी जीवनचर्या एवं साहित्यिक मूल्यांकन करने वाले तथ्यों का सकलन करने पर ही शोध कार्य पूरा हो सकेगा। इसी प्रकार का एक विषय हिन्दी का नीति काव्य लिया जा सकता है। इस शोध कार्य में भी सम्पूर्ण हिन्दी काव्य का निरीक्षण परीक्षण करना होगा और उस सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में नीति निर्धारक तत्वों को खोजकर उनका समुचित विश्लेषण करना होगा। अतः यह स्पष्ट है कि अनुसन्धान में यत्र तत्र बिखरी हुई सामग्री का सकलन करना आवश्यक होता है। अनुसन्धान के बहुत से विषय ऐसे होते हैं जिनमें सामग्री या तथ्यों के सकलन की समस्या विशेष नहीं होती है लेकिन बहुत से ऐसे भी विषय होते हैं जिनमें अनुसन्धान का मुख्य कार्य तथ्यों या सामग्री का सकलन ही होता है। जैसे–किसी प्राचीन कवि की कृतियों का सम्पादन करना। यह कार्य भी अनुसन्धान कहलाता है, इसके अन्तर्गत देव श्रीपति सोमनाथ आदि कवि लिए जा सकते हैं।

समस्याओं का समाधान—प्रत्येक अनुसन्धान में कोई न कोई गहन समस्या अवश्य होती है। समस्या रहित विषय अनुसन्धान का विषय नहीं कहा जा सकता है। ये समस्याएँ प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ प्रत्यक्ष तो यह है कि तुलसीदास कहाँ पैदा हुए थे और परोक्ष यह है कि तुलसीदास के काव्य में कौन कौन से उदात्त तत्व हैं जिनके कारण उनका काव्य इतना महान माना जाता है। इसी प्रकार एक वैज्ञानिक उदाहरण लिया जा सकता है कि सेब क्यों फली? यह प्रत्यक्ष समस्या है। मनुष्य सुन्दर स्वस्थ और दीर्घजीवी कैसे रह सकता है? यह परोक्ष समस्या है। इसी तरह प्रत्येक अनुसन्धान में कोई न कोई समस्या अवश्य निहित होती है और उसका समाधान अनुसन्धान के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। भौतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धान में समस्या के निर्धारण को बहुत महत्व दिया जाता है क्योंकि जब तक प्रश्न ही ठीक नहीं होगा तब तक उसका समुचित उत्तर भी नहीं खोजा जा सकता है। अतः समस्या का समाधान अनुसन्धान का प्रमुख तत्व है।

अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषण—तथ्य कच्ची सामग्री की तरह से होते हैं। बिना मिट्टी या धातु के किसी मूर्ति का गढ़ना सम्भव नहीं होता है जितनी शुद्ध मिट्टी और धातु होगी मूर्ति उतनी ही अच्छी होगी। अनुसन्धान में तथ्यों का सर्वाधिक महत्व होता है जो आधार सामग्री का कार्य करते हैं। अनेक प्रश्न व तथ्य अज्ञात और छिपे हुए होते हैं जब तक उनका उद्घाटन नहीं होगा तब तक

विषय स्पष्ट नही हो सकेगा। जैसे—एक रोगी का पूर्व जीवन क्या रहा है? उसका खान पान कैसा रहा है? शारीरिक स्थिति कैसी रही है? यह सभी अज्ञात तथ्य हैं। जब तक इन्हें अच्छी तरह से जान नही लिया जाता है तब तक कोई डाक्टर रोगी की समस्या का समाधान नही कर सकता। इसी प्रकार अन्य अनुसन्धानिक विषयो में अज्ञात तथ्यो का निरूपण होता है। जैसे आधुनिक कविता का विकास या किसी कवि के व्यक्तित्व का विकास आदि विषय लिये जा सकते हैं। आधुनिक कविता के विषय में यह तथ्य अन्वेषणीय होगे कि कविता का प्रारम्भ कब से हुआ किन कवियो का इसमे योगदान रहा और कविता किस भाषा में लिखी गयी आदि। कवि के व्यक्तित्व के विकास में उसका रहन सहन उसका साहित्य चिन्तन, साहित्यिक क्षेत्र में उसका योगदान आदि तथ्यों का अन्वेषण ही अनुसन्धान कहलायगा। भारत में गरीबी है यह सर्वविदित है लेकिन गरीबी के कारण हैं? यह तथ्य अज्ञात है। इसके विषय में यथार्थ तथ्यो का पता लगाना ही अन्वेषण होगा। बहुत से अनुसन्धानो का लक्ष्य अज्ञात तथ्यो का उद्घाटन करना ही होता है। जैसे हिन्दी का आदि काल इसके विषय में पहले से कोई समुचित जानकारी नही थी, लेकिन अनुसन्धान के द्वारा ही इस युग के अनेक कवियो एवं उनकी कृतियो को प्रकाश में लाया गया है। मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा में भी यही प्रक्रिया होती है। उसमें भी मनुष्य की मानसिक स्थिति का पता लगाना अज्ञात तथ्य का ही उद्घाटन है।

उपर्युक्त उदाहरणो से यह स्पष्ट होता है कि जो तथ्य पहले अनुपलब्ध होते हैं उनका अन्वेषण करके प्रकाश में लाना ही अनुसन्धान कहलाता है।

उपलब्ध तथ्यों या सिद्धान्तों का पुनराख्यान—अनुसन्धान में अनेक बार तथ्य तो उपलब्ध होते हैं लेकिन उनमें कार्य कारण का सम्बन्ध स्थापित करना और सिद्धांत तथा नियम का निर्माण करना अनुसन्धान का लक्ष्य होता है जैसे इतिहास की घटनाओ का तो हमे पता रहता है लेकिन वे क्यो घटित हुइ, साहित्य मे छायावादी प्रवृत्ति का जन्म क्यो हुआ, अमुक कवि ने इसी प्रकार का काव्य क्या लिखा? इस प्रकार के प्रश्नो के उत्तर उपलब्ध सामग्री के आधार पर विवेक, तर्क और चिन्तन के द्वारा दिये जाते हैं। यह एक प्रकार से शोध का सृजनात्मक कार्य है। कोई भी शोध कार्य इस प्रकार के निष्कर्षों और व्याख्याओं के बिना महत्वपूर्ण शोध नही हो सकता है।

मौलिकता का प्रतिपादन—अगर किसी अनुसन्धित्सु ने नये तथ्यों का उद्घाटन नही किया है तो उसके निष्कर्षों में मौलिकता नही होगी। अगर वह नई और सार्थक व्याख्या करने मे सक्षम नही है तो उसका कार्य पिष्टपेषण मात्र होगा और वह नवीन या मौलिक अनुसन्धान नही कहा जायेगा। अनुसन्धान में या तो नवीन तथ्यो का उद्घाटन हो या अन्य लोगो की अपेक्षा अधिक पुष्ट प्रमाण दिये

गये हों। जसे–तुलसीदास राजापुर म पदा हुए थे यह बात अन्य बहुत स लोग भी कहते हैं, लेकिन हमन अ य लोगों की अपेक्षा पुष्ट एव नवीन प्रमाण अधिक खोजे हैं। यह हमारी मौलिकता होगी। कभी कभी उपलब्ध तथ्य तो नवीन नहीं होते किन्तु प्रतिभावान अनुसन्धानकर्ता उन तथ्यों स नवीन निष्कर्ष और नई व्याख्या प्रदान करता है। जस–कामायनी पर अनेक शोध हुए हैं, लेकिन इसक निष्कर्षों म पर्याप्त भिन्नता है। यद्यपि कामायनी सम्बन्धी तथ्य नवीन नहीं हैं। फिर भी अपन अपन निष्कर्ष स्थापित किय हैं।

अत यह स्पष्ट है कि अनुसन्धान म मौलिकता का होना नितान्त आवश्यक है। उपयुक्त दो प्रकार की मौलिकता मे स किसी एक प्रकार की मौलिकता अनुसन्धान के लिए अनिवार्य है।

अनुसधान के क्षेत्र

आधुनिक काल में अनुसन्धान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक बना। इस युग में भौतिक विज्ञान, समाज विज्ञान, दर्शन साहित्य इत्यादि के क्षेत्र म नवीन शोध किये जा रहे हैं। इनमें वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिय प्रयोगशालाओं की आवश्यकता पड़ती है, जबकि साहित्यिक अनुसन्धान मे प्राचीन, तथ्यों का अन्वेषण पाण्डुलिपि शोध एव ऐतिहासिक तथ्यों का विवेचन किया जाता है। इसलिए शोध विषय का चयन करत समय अनुसंधित्सु विषय की गम्भीरता एव अपनी प्रवृत्ति का विशेष *ध्यान रखता है। इस दृष्टि से डॉ॰ रामकुमार वर्मा का कथन उल्लखनीय है शोध* का महत्व तो उसकी समस्या में है। भाषा और साहित्य के क्षेत्र म जो ऊचे टील नजर आते हैं क्या उनके भीतर कोई महत्व का वस्तु है ? जो गहरा खाइयाँ है क्या उनमें स्वण रजत की खानें हैं।[33] डा॰ वर्मा ने शोध समस्या की गम्भीरता को केन्द्र में रखकर अतीत के गर्भ म निगूढ़ भाव से छिप हुए तथ्यों के अन्वेषण एव उनके शोधन के लिये अनुस धान को उपयोगी बताया है। इस प्रकार अनुसन्धान स इतिहास का पर्यालोचन हो जाता है तथा अनुस धान का क्षेत्र अतीत से वर्तमान तक व्याप्त रहता है।

सामान्य रूप से अनुसन्धान क क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं, क्योंकि अनुसन्धान काय प्रत्येक विषय में होता है यथा विज्ञान इतिहास, भूगोल, हिन्दी अंग्रेजी, *समाजशास्त्र, राजनीतिकशास्त्र, सस्कृत वाणिज्य आदि। यहाँ यह कहना अनुचित* न होगा कि पठन पाठन एव मानव व्यवहार क समस्त काय अनुस धान क क्षेत्र म आते हैं। लेकिन विशिष्ट रूप स यहाँ हमारा म त य साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्रों से है। अनुस धान ज्ञान के क्षेत्र में उठी हुई शकाओं के समाधान के लिये किया जाता है। इसमे अनुस धान कर्ता प्रयास के द्वारा असदय नवीन तथ्यों की खोज करके अपन क्षेत्र अथवा क्षेत्रेतर ज्ञान की उपलब्धि करता है। अत उसकी दृष्टि

अत्यन्त व्यापक होती जाती है और इस प्रकार अनुस धान के क्षेत्रो का माग भी प्रशस्त होना जाता है।

अनुसन्धान का स्थूल क्षेत्र निर्धारित करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि 'हिन्दी के स्थूल रूप से दो क्षेत्रों में अनुसधान हो रहा है, भाषा के क्षेत्र मे और साहित्य के क्षेत्र मे।[26] लेकिन शुद्ध साहित्यिक और सास्कृतिक दृष्टि स भी अनुसन्धान के क्षेत्र को किन्ही निश्चित सीमाओ मे नही बाँधा जा सकता है। बात यह है कि भाषा और साहित्य या वाङ्मय एक अविच्छिन्न और अविभाज्य धारा है जो कभी कभी मन्द और कभी तीव्र गति से अव्याहत रूप में प्रवाहमान है।[27] अत अनुसधान के व्यापक क्षेत्रों में भाषा सस्कृति काव्य का यशास्त्र, साहित्य का इतिहास तथा सम्पादन काय को माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त धम, दशन, पथ, सम्प्रदाय इतिहास, किसी विशेष धारा या प्रवृत्ति स सम्बधित काय भी अनुसन्धान के क्षेत्र में परिगणित होते हैं। विशेष कवि या लेखक अथवा ग्रथ सम्बन्धी काम युग विशेष के साहित्यकारों पर किया गया काय, पृष्ठभूमि, विकास एव परम्परा सम्बन्धी काय भी अनुसन्धान के क्षेत्र की सीमा वद्धि हा करते हैं।

डा० हरवशलाल शर्मा न साहित्यिक अनुसधान का दस क्षत्रो म वर्गीकृत किया है[28]—

1 धम, दशन, सम्प्रदाय इतिहास, समाज एव सस्कृति।
2 विशेष धारा या प्रवत्ति।
3 विशेष कवि लेखक या ग्रथ।
4 पथ सम्प्रदाय एव युग विशेष के साहित्यकार।
5 पृष्ठभूमि, विकास एव परम्परा प्रभाव।
6 काव्य रूप।
7 काव्य शास्त्र।
8 साहित्य का इतिहास।
9 ग्रथ की भाषा एव भाषा विज्ञान।
10 ग्रथ सम्पादन।

इसक अतिरिक्त समालोचना मनोविज्ञान एव पत्रकारिता भी इसी के अग हैं। अभी तक जितने भी अनुसधान हुए है वे इन्हा क्षेत्रो में किये गये हैं। यद्यपि ये सभी क्षेत्र डॉ० नगेन्द्र के स्थूल विभाजन में समाहित हैं तथापि सूक्ष्म विवेचन की दृष्टि से इन क्षेत्रो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास अनुसन्धान का विशिष्ट क्षेत्र है। हिन्दी का समस्त साहित्य विशिष्ट ऐतिहासिक परम्पराओ में ही रचा गया है। अत पृष्ठभूमि के रूप में ही नहीं उसक विकास और प्रसार के लिये भी इतिहास की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यथार्थ में इतिहास का कार्य मानव के

गये हों। जैसे—तुलसीदास राजापुर में पैदा हुए थे यह बात अन्य बहुत से लोग भी कहते हैं लेकिन हमने अन्य लोगों की अपेक्षा पुष्ट एवं नवीन प्रमाण अधिक खोजे हैं। यह हमारी मौलिकता होगी। कभी कभी उपलब्ध तथ्य तो नवीन नहीं होते किन्तु प्रतिभावान अनुसन्धानकर्ता उन तथ्यों से नवीन निष्कर्ष और नई व्याख्या प्रदान करता है। जैसे—कामायनी पर अनेक शोध हुए हैं, लेकिन इसके निष्कर्षों में पर्याप्त भिन्नता है। यद्यपि कामायनी सम्बन्धी तथ्य नवीन नहीं हैं। फिर भी अपने अपने निष्कर्ष स्थापित किये हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि अनुसन्धान में मौलिकता का होना नितान्त आवश्यक है। उपर्युक्त दो प्रकार की मौलिकता में से किसी एक प्रकार की मौलिकता अनुसन्धान के लिए अनिवार्य है।

अनुसंधान के क्षेत्र

आधुनिक काल में अनुसंधान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक बना। इस युग में भौतिक विज्ञान, समाज विज्ञान, दर्शन, साहित्य इत्यादि के क्षेत्र में नवीन शोध किये जा रहे हैं। इनमें वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये प्रयोगशालाओं की आवश्यकता पड़ती है, जबकि साहित्यिक अनुसंधान में प्राचीन, तथ्यों का अन्वेषण पाण्डुलिपि शोध एवं ऐतिहासिक तथ्यों का विवेचन किया जाता है। इसलिए शोध विषय का चयन करते समय अनुसंधित्सु विषय की गंभीरता एवं अपनी प्रवृत्ति का विशेष ध्यान रखता है। इस दृष्टि से डॉ॰ रामकुमार वर्मा का कथन उल्लेखनीय है "शोध का महत्व तो उसकी समस्या में है। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में जो ऊँचे टीले नजर आते हैं क्या उनके भीतर कोई महत्व का वस्तु है? जो गहरी खाइयाँ हैं क्या उनमें स्वर्ण रजत की खानें हैं।"[25] डा॰ वर्मा ने शोध समस्या की गम्भीरता को केन्द्र में रखकर अतीत के गर्भ में निगूढ़ भाव से छिपे हुए तथ्यों के अन्वेषण एवं उनके शोधन के लिये अनुसन्धान को उपयोगी बताया है। इस प्रकार अनुसन्धान से इतिहास का पर्यालोचन हो जाता है तथा अनुसंधान का क्षेत्र अतीत से वर्तमान तक व्याप्त रहता है।

सामान्य रूप से अनुसन्धान के क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं, क्योंकि अनुसंधान कार्य प्रत्येक विषय में होता है यथा विज्ञान, इतिहास, भूगोल, हिन्दी, अंग्रेजी, समाजशास्त्र, राजनीतिकशास्त्र, संस्कृत, वाणिज्य आदि। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि पठन पाठन एवं मानव व्यवहार के समस्त कार्य अनुसंधान के क्षेत्र में आते हैं। लेकिन विशिष्ट रूप से यहाँ हमारा मन्तव्य साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्रों से है। अनुसन्धान ज्ञान के क्षेत्र में उठी हुई शंकाओं के समाधान के लिये किया जाता है। इसमें अनुसंधानकर्त्ता प्रयास के द्वारा असत्य नवीन तथ्यों की खोज करके अपने क्षेत्र अथवा क्षेत्रेतर ज्ञान की उपलब्धि करता है। अतः उसकी दृष्टि

अत्यन्त व्यापक होती जाती है और इस प्रकार अनुसधान के क्षेत्रो का मार्ग भी प्रशस्त होता जाता है।

अनुसन्धान का स्थूल क्षेत्र निर्धारित करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है कि 'हिन्दी के स्थूल रूप से दो क्षेत्रो मे अनुसधान हो रहा है, भाषा के क्षेत्र म और साहित्य के क्षेत्र मे।[26] लेकिन' शुद्ध साहित्यिक और सास्कृतिक दृष्टि स भी अनुसन्धान क क्षेत्र को किन्ही निश्चित सीमाओ म नही बाँधा जा सकता है। बात यह है कि भाषा और साहित्य या वाङमय एक अविच्छिन्न और अविभाज्य धारा है जो कभी कभी मन्द और कभी तीव्र गति से अव्याहत रूप में प्रवाहमान है।[27] अत अनुसधान के व्यापक क्षेत्रों में भाषा सस्कृति काव्य काव्यशास्त्र, साहित्य का इतिहास तथा सम्पादन काय को माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त धम, दशन, पथ, सम्प्रदाय इतिहास, किसी विशेष धारा या प्रवृत्ति स सम्बधित काय भी अनुसन्धान के क्षेत्र में परिगणित होते हैं। विशेष कवि या लेखक अथवा ग्रथ सम्बन्धी काय युग विशेष के साहित्यकारों पर किया गया काय, पृष्ठभूमि, विकास एव परम्परा सम्बन्धी काय भी अनुसधान के क्षेत्र की सीमा वृद्धि ही करते हैं।

डा॰ हरवशलाल शर्मा न साहित्यिक अनुसधान को दस क्षेत्रो म वर्गीकृत किया है[28]—

1 धम, दशन, सम्प्रदाय, इतिहास, समाज एव सस्कृति।
2 विशेष धारा या प्रवृत्ति।
3 विशेष कवि लेखक या ग्रथ।
4 पथ सम्प्रदाय एव युग विशेष के साहित्यकार।
5 पृष्ठभूमि विकास एव परम्परा प्रभाव।
6 काव्य रूप।
7 काव्य शास्त्र।
8 साहित्य का इतिहास।
9 ग्रथ की भाषा एव भाषा विज्ञान।
10 ग्रथ सम्पादन।

इसक अतिरिक्त समालोचना मनोविज्ञान एव पत्रकारिता भी इसी के अग हैं। अभी तक जितने भी अनुसधान हुए हैं वे इन्हा क्षेत्रो में किये गय हैं। यद्यपि य सभी क्षेत्र डॉ॰ नगेन्द्र के स्थूल विभाजन में समाहित हैं तथापि सूक्ष्म विवेचन की दृष्टि से इन क्षेत्रो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास अनुसन्धान का विशिष्ट क्षेत्र है। हिन्दी का समस्त साहित्य विशिष्ट ऐतिहासिक परम्पराओ में ही रचा गया है। अत पृष्ठभूमि के रूप में ही नहा, उसक विकास और प्रसार के लिये भी इतिहास की उपेक्षा नही की जा सकती। यथाथ में इतिहास का काय मानव के

समग्र अनुभव एवं उसकी समस्त उद्भावनाओं का जोड़ करता है। यदि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है तो उसे इतिहास रूपी दर्पण में ही भली भाँति देखा जा सकता है।[29] अतएव साहित्यिक अनुसंधान के क्षेत्र के लिये इतिहास का योगदान असन्दिग्ध है।

अनुसन्धान के वर्गीकरण की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास डा० सत्येन्द्र ने किया है। डॉ० सत्येन्द्र ने शोध क्षेत्र को अधोलिखित वर्गों में विभाजित किया है[30]—

1 साहित्य सामान्य।
2 व्यक्ति
3 गद्य सामान्य
4 उपन्यास
5 नाटक
6 कहानी
7 कथा साहित्य
8 निबन्ध
9 जीवनी
10 गद्य काव्य
11 आलोचना
12 समाचार पत्र
13 साहित्य शास्त्र।

इन दोनों वर्गीकरणों के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी हिन्दी शोध क्षेत्र की दिशा निर्दिष्ट की है। डॉ० विनय मोहन शर्मा ने हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य, लोक साहित्य, संत साहित्य, कवि विवेचन तथा पाठालोचन को अनुसंधान की परिधि में लिया है।[31] इन समस्त वर्गीकरणों में डा० हरवंशलाल शर्मा का वर्गीकरण अधिक समीचीन और तर्क संगत प्रतीत होता है। उन्होंने भाषा, साहित्य एवं काव्य रूपों के सम्पूर्ण क्षेत्र को पूर्ण वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया है।

हिन्दी शोध की दृष्टि से यद्यपि सम्पूर्ण साहित्य शोध का क्षेत्र है किन्तु अनुसंधित्सु अपनी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर विषय निर्वाचन करता है क्योंकि उसे विशाल साहित्य सागर में मुक्ता हेतु गम्भीर मंथन की आवश्यकता पड़ती है।[32] ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक एवं युगीन महत्व के अप्रकाशित एवं अज्ञात तथ्यों का प्रस्तुतीकरण ही शोध का प्रमुख क्षेत्र हो सकता है। यह क्षेत्र रूपात्मक अथवा विधात्मक दृष्टि से कहीं से भी चयनित हो सकता है।

अनुसन्धान की प्रकृति

अनुसन्धान की प्रकृति मूलत वैज्ञानिक है इसम वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा तथ्यों का निरूपण होता है। अनेक विद्वानो ने विज्ञान शब्द का प्रयोग किया है लेकिन विज्ञान शब्द की परिभाषा का औचित्य बहुत कम लोगो ने ही स्पष्ट किया है। अत अनुसन्धान की प्रकृति को समझने के लिये विज्ञान की परिभाषा एव उसके तत्वो का विवेचन अधिक प्रामाणिक एव उपयुक्त होगा। विज्ञान की प्रकृति ही मूलत अनुसन्धान की प्रकृति है। मूलरूप से विज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र अपने अध्ययन की विषय वस्तु को शुद्धतम रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। यह भले ही ठीक हो सकता है कि विभिन्न क्षेत्रों मे अनुसन्धान कार्य करने वाले लोग अपनी अपनी परिस्थितियो और आवश्यकताओ के अनुसार विविध साधनों का उपयोग करते हैं। यह विज्ञान के लिए दूरदर्शक यन्त्रों की अनिवार्य आवश्यकता हो सकती है लेकिन एक चिकित्सक के लिए उसका कोई महत्व नहीं हो सकता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न ज्ञान एव अनुसन्धान के क्षेत्रो साधनों और उपादानों में विभिन्नता भले ही हो लेकिन सबका लक्ष्य अपने विषय का शुद्धतम ज्ञान प्राप्त करना होता है। यहाँ पर हम अनुसन्धान की वैज्ञानिक प्रकृति पर सक्षेप में विश्लेषण करेंगे।

वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रकृति के सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि अनुसन्धान चाहे जिस प्रकार का हो वह हमारे ज्ञान की वृद्धि मे सहायक होता है। अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य परम्परागत अर्जित ज्ञान के शोधन द्वारा सत्य की प्राप्ति है। विज्ञान स्वय सत्यान्वेषण की एक प्रविधि है। ऐसी स्थिति म वैज्ञानिक अनुसन्धान की मूल प्रकृति प्राप्त वास्तविक तथ्यो के आधार पर सत्यो मुखी होना है। क्योंकि ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे जिन नवीन कृतियों की सर्जना हो रही है उनका पूर्ण ज्ञान अनुसन्धायिनी दृष्टि द्वारा ही हो सकता है।[23]

वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र म यान्त्रिक क्रियाविधियो एव सूक्ष्म निरीक्षणो द्वारा नव्य तथ्यो का सकलन किया जाता है तथा प्रायोगिक परीक्षणो के उपरान्त प्राप्त सत्य को सामाजिक एव भौतिक उपयोगिता के आधार पर स्वीकृति प्रदान की जाती है। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र म होने वाली गवेषणायें मानवीय आवश्यकता से सम्बन्धित होती हैं। इसीलिए समस्त वैज्ञानिक सम्मतियाँ युग एव समाज के अनुसार अपनी अर्थवत्ता को परिवर्तित करती रहती हैं। भौतिक विज्ञानो की अनुसन्धान प्रकृति परिवर्तनशील होने के कारण जीवन मूल्यो के अधिक निकट होती है। जीवन मूल्य परम्परा परिवेश एव मानसिक प्रक्रिया के आधार पर निर्धारित होते हैं इसीलिए वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रक्रिया भी इन्हीं के आधार पर सचालित होती है। इसके विपरीत साहित्यानुसन्धान की प्रकृति शाश्वत मूल्यों

के अन्वेषण पर आधत होती है। वज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति के अ तगत साहित्या नुसधित्सु जिस सत्य का अ वेषण करता है वह कृतिकार एव शोधार्थी के युग एव परिवेश से सम्बन्धित रहता है । इसके अतिरिक्त सास्कृतिक उपलब्धियो एव शाश्वत मल्यों का समाज म प्रतिष्ठित करता है। इस प्रकार साहित्यिक अनुसधान की प्रकृति वज्ञानिक परिसर से सम्बद्ध रहकर भी सौ दयवादी दष्टि एव कलात्मक बोध के कारण अधिक स्थिर शाश्वत एव युग निरपेक्ष है तथा इसके लिए कति पय पथक मानदण्डो का निर्धारण आवश्यक है।

भौतिक विज्ञानों की अपेक्षा सामाजिक और साहित्यिक विषयो के अनु सन्धानो म कल्पना की विशेष आवश्यकता होती है क्योकि इनमें मनुष्य के आच रणो भावनाओ अनुभूतियो और विचारो पर अनुसन्धान करना पडता है ? जिनका वज्ञानिक उपकरणो यन्त्रो द्वारा विश्लेषण नही हो सकता। इनके तथ्या तथ्य का निरूपण अनुस धानकर्ता की अनुभूति विवेक और कल्पना पर ही निभर है। कवि और अनुसन्धानकर्ता दोनो कल्पना का ही प्रयोग करते हैं, कि तु दोनो में कुछ सक्ष्म अ तर होता है। कवि की कल्पना किसी सीमा तक निर्बाध और मुक्त होती है जबकि अनुसन्धानकर्ता की कल्पना आलोचनात्मक होती है ऐसी स्थिति म अनुभव और तथ्यो क द्वारा उसकी निर तर जाच होती रहनी चाहिए। सम्भवत जब अनुसन्धान म इस प्रकार की कल्पना क प्रयोग की आवश्यकता होती है उस समय अनुस धान कला के निकट आ जाती है। इस कलात्मक प्रकृति से कोई भी अनुस धान मुक्त नही हो सकता।

कला केवल कल्पना नही है, यह सौ दय की सजिका भी है। सौन्दय शिल्प म घनिष्ट रूप से सम्ब धित है। शिल्प से सौ दय के उपादान प्राप्त होते हैं। यदि शिल्प न हो तो सौ दय की सष्टि सम्भव नही। मूर्तिकला चित्रकला आदि में रेखायें और रगो क द्वारा सौ दय की सृष्टि होती है और साहित्य कला में शब्द छ द आदि सौ दय साधक उपकरण होते हैं। भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसकी आवश्यकता अ तत समस्त प्रकार के अनुस धानो में होती है चाहे वह भौतिक विज्ञान हो या खगोल विज्ञान। चाहे वह अथशास्त्र हो या राजनीति। अनुसन्धान कर्ता प्रत्यक्ष पयवक्षण एव परीक्षण के द्वारा जो तथ्य प्राप्त करता है उ हें वह बिना भाषा क व्यक्त नही कर सकता है। भाषा जितनी आकषक एव सक्षम होगी अनुस धान क परिणाम उतने ही सहज सप्रेष्य होंग। यह कथन साहित्यिक अनु स धानो म सर्वाधिक सत्य होता है। अत अनुस धान मे कला का दूसरा तत्व सौ दय सष्टि भी अनिवाय हो जाता है।

उपाधि सम्बन्धी शोध प्रबन्धों में अनुस धानकर्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपन अनुस धान काय को अधिकतम व्यवस्थित और आकषक रूप में

प्रस्तुत करे। यथा स्थान चित्रों, मानचित्रों का भी उपयोग करे। यहाँ भी अन स धानकर्ता को कलात्मक मूल्यों की सहायता लेनी पड़ती है।

सारांश यह है कि अनसन्धान केवल विज्ञान नहीं है बल्कि उसमें कला और शिल्प के तत्वों का भी सन्निवेश है।

अनसन्धान की प्रकृति में कला एव शिल्प का सन्निवेश होने पर भी उसकी रचना प्रक्रिया का मूल आधार वज्ञानिक होता है। अत अनसन्धान की प्रक्रिया में हमें वज्ञानिक सत्यों का अन्वेषण करते समय अपनी अनुसन्धायिनी वृत्ति को वयक्तिक अनुभतियो एव पूर्वाग्रहो से मुक्त रखना चाहिये जिससे अव्यवस्थित असगत एव अव्यक्त सामग्री से निरत रहकर वास्तविक एव सुसगत व्याख्या की जा सके। इसके लिए वज्ञानिक प्रवृत्ति का होना नितान्त आवश्यक है। वज्ञानिक प्रकृति में निम्नांकित गुण होते हैं।[84]

(क) तटस्थता–किसी विषय के वैज्ञानिक अध्ययन म अध्ययन करने वाले के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी भावुकता को दूर रखते हुए तटस्थ रूप से अध्ययन का काय करे। यह काय भौतिक विज्ञानों में बहुत सरलता से सम्भव हो जाता है क्योंकि उनम जिन वस्तुओं का अध्ययन करते हैं वे निर्जीव होते हैं। अत वे सम्बन्धो को प्रभावित नहीं करते हैं। सामाजिक विज्ञानो में जिन बातों का अध्ययन करते हैं, व भी निर्जीव होते हैं कि तु उनका जीवित और स्पन्दित मनुष्य से विविध सम्ब ध होता है। अत उनके सम्ब ध में पक्षपात रहित तटस्थ दष्टि रखना बहुत कठिन काय हो जाता है। अनुस धान म भावनाओ पर नियत्रण रखते हुये तटस्थता को रखना अत्यन्त आवश्यक है।

(ख) धय–वैज्ञानिक प्रवृत्ति का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण धय है। अनु स धित्सु को किसी विषय की समस्या का अध्ययन करते समय कोई निर्णय देने की आतुरता नहीं करनी चाहिये। जब वह अपने प्रयोगो और निष्कर्षों के सबध में समस्त दष्टियो से निश्चित कर ले कि मेरे निष्कर्षो म कुछ स देह नहीं है तब उनके सम्बन्ध में घोषणा करे। आतुरता से अनुस धान म अनौचित्य की आशंका बनी रहती है।

(ग) कठोर परिश्रम–वज्ञानिक पद्धति में जब तटस्थता और धैय दोनो का पालन होगा तो वहाँ कठोर परिश्रम का होना अत्यन्त आवश्यक है। विषय के अनुदघाटित रहस्यो का पता लगाने के लिए सहज रीति से काम नही चल सकता है।

(घ) जिज्ञासा–जिज्ञासा का तात्पय यह है कि जब तक किसी विषय के सम्बन्ध में निर्णयात्मक प्रमाण न मिल जाय तब तक उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसका आशय यह नहीं है कि हम प्रत्येक बात पर अविश्वास करें लेकिन

जब तक पर्याप्त प्रमाण न मिल जाएँ तब तक अपने मस्तिष्क को खुला रखना चाहिये।

(ट) रचनात्मक कल्पना—वैज्ञानिक अध्ययन में रचनात्मक कल्पना के अभाव में कठोर परिश्रम द्वारा की गई खोजों का कोई महत्व नहीं रहता। अध्ययन द्वारा खोज गये तथ्यों में एक क्रम होना चाहिये। यदि क्रम नहीं होता तो चूने ईंट और गारे के ढेर के समान होता है अर्थात यदि भूमि निर्माण की सम्पूर्ण सामग्री अव्यवस्थित रूप में एकत्र करके एक स्थान पर रख दी जाय तो उससे कोई भवन निर्मित नहीं हो सकता। इसके लिए एक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। यही बात अनुसन्धान में भी है। यदि एकत्र की गई सामग्री में व्यवस्था नहीं होगी तो वह निरर्थक होगी। अतः समुचित व्यवस्था के लिये रचनात्मक कल्पना की आवश्यकता होती है।

कला में कल्पना की प्रधानता होती है तथा इसका लक्ष्य सौन्दर्य की सृष्टि करना होता है। अनुसंधान भी कल्पना से ही प्रारम्भ होता है और कल्पना में ही इसका अंत होता है। जब कोई व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करना चाहता है तो वह कल्पित सत्य को लेकर चलता है। विज्ञान की भाषा में इसे प्राक्कल्पना कहते हैं। उदाहरण के लिये चन्द्रमा पर पहुँचने के सम्बन्ध में सबसे पहले कल्पना ही की गयी फिर साधन खोजे गये और अन्त में वहाँ पहुँचकर कल्पना को साकार कर लिया गया।

इसी प्रकार जितने भी भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान हुए हैं वे सब वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में कल्पना के रूप में ही उद्भासित हुए हैं। अतः यहाँ यह विज्ञान और कला समान धर्मी हैं। अमेरिका के एक भौतिक वैज्ञानिक ने भौतिक विज्ञानों के अनुसन्धानों में कल्पना के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है कि पिछले पचास वर्षों तक परमाणु और अणु के अस्तित्व के प्रायोगिक प्रमाण अल्प थे या बिल्कुल ही नहीं थे और अभी भी इनका अस्तित्व अनुमान पर आश्रित है। यद्यपि यह अनुमान प्रचुर और प्रायोगिक प्रमाणों द्वारा समर्थित है फिर भी पचास वर्षों पूर्व भी परमाणु और अणु की अवधारणाएँ भौतिक विज्ञानों में बहुत उपयोगी पायी गई थी। यद्यपि वे विशुद्ध रूप से काल्पनिक अवधारणायें थी पर्यवेक्षणीय वस्तुएँ नहीं लेकिन ये उपयोगी ही नहीं पायी गयी थी बल्कि भौतिक रासायनिक प्रक्रियाओं की व्याख्या के लिये आवश्यक भी थी।

एक प्रख्यात अमेरिकीय प्राणि शास्त्री ने भी घोषित किया था कि पर्यवेक्षण और प्रयोग द्वारा सदा जाँच तथा पुनर्निर्धारण करके कल्पना का रचनात्मक उपयोग विज्ञान तथा आध्यात्मिक मुक्ति का सार है। केवल एक यही साधन है, जिसके द्वारा हम अलिखित अतीत का पुनर्निर्माण करते हैं। तथा भविष्य के सम्बन्ध में अनुमान या भविष्यवाणी करते हैं।'[58]

इस प्रकार अनुसंधान की प्रकृति वैज्ञानिक एवं काल्पनिक दोनों स्थितियों से प्रभावित है। अनुसंधान के अन्तर्गत सामग्री संकलन, तथ्यानुशीलन एवं तथ्य के क्रमबद्ध विवेचन के लिए निष्पक्ष दृष्टि एवं सारग्राहिका शक्ति वैज्ञानिक की भाँति प्राप्त होती है तथा साहित्य की भावसत्ता के सम्यक बोध हेतु सूक्ष्म कल्पना का समावेश भी आवश्यक होता है। इस प्रकार अनुसन्धान की प्रकृति वैज्ञानिक विचारणा एवं कलात्मक संवेदना पर आधारित होती है। अनुसंधित्सु कल्पना के माध्यम से कृति की सक्ष्मतम व्याख्या तो प्रस्तुत ही करता है साथ ही वैज्ञानिक दृष्टि के कारण उसके द्वारा व्याख्यायित काव्य का सत्य जीवन मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

हिन्दी में अनुसंधान कार्य पाश्चात्य अनुसंधान क्रिया प्रणाली से अनुप्रेरित है। पश्चिम में अनुसंधान शास्त्र का सूक्ष्म और वैज्ञानिक विकास हुआ है। हिन्दी अनुसंधान कर्त्ताओं ने अनुसंधान की वैज्ञानिक संकल्पना को सम्यक रूप से आत्मसात नहीं किया। विज्ञान में पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को विशेष महत्व दिया जाता है। हिन्दी में इस दृष्टि से अराजकता की स्थिति है। यहाँ अनुसंधान के लिये कोई शोध कोई गवेषणा, कोई खोज शब्द का प्रयोग करता है जबकि इनमें अंग्रेजी के 'रिसर्च' शब्द के समतुल्य केवल अनुसंधान है। शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से अनु+सम्+धान (क्रमबद्ध+पूर्ण रूप से+लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना) का अर्थ 'रिसर्च' की वैज्ञानिक व्याख्या के बहुत निकट है।

हिन्दी में अनुसन्धान कार्य बहुत हुआ, लेकिन अनुसंधान पद्धति का वैज्ञानिक स्वरूप अभी निर्धारित नहीं हो सका है। यही कारण है कि हिन्दी की अनुसन्धान की परिभाषाएं अनुपयुक्त और अपूर्ण प्रतीत होती हैं। इस संदर्भ में हमें पाश्चात्य वैज्ञानिकों से मार्ग दर्शन प्राप्त करना चाहिए। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों में भी अनेक प्रकार के मत मतान्तर हैं लेकिन आधारभूत रूप में वे अनुसंधान की वैज्ञानिक व्याख्या के सम्बन्ध में प्रायः एकमत हैं। उनकी दृष्टि में अनुसन्धान किसी विषय के अध्ययन की विशिष्ट पद्धति को कहते हैं। यदि किसी अध्ययन में इस विशिष्ट क्रिया पद्धति का अनुसरण नहीं हुआ है तो उस अध्ययन के परिणाम कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न हों लेकिन उसे अनुसंधान नहीं माना जाएगा। इस वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति में क्रमशः प्राक्कल्पना या उपकल्पना का निर्धारण प्रयोग, पर्यवेक्षण, सत्यापन वर्गीकरण, तथ्यों के बीच सम्बन्ध स्थापन, सामान्यीकरण, पूर्व कथन आदि अवस्थाओं का विशेष महत्व है। इन समस्त अध्ययन सोपानों के भी विस्तृत नियम, उपनियम हैं। जब हम अनुसंधान को विज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं तो हमें उसमें वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति के सब स्वीकृत तत्वों को सन्निविष्ट करना अनिवार्य हो जाता है। विज्ञान के अनेक भेद हैं, **भौतिकी,** जीव

विज्ञान, रसायन विज्ञान समाज विज्ञान आदि। जड़ पदार्थों का अध्ययन करने वाले विज्ञानों की अनुसन्धान पद्धतियों का साहित्यिक अनुसंधान में अनुकरण अनु-सरण नहीं हो सकता है साहित्यिक और समाज विज्ञानों के अध्ययन के क्षेत्र प्रायः समान हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने सामाजिक विज्ञानों की अनुसंधान पद्धतियों को अत्यन्त परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया। देश में साहित्यिक अनुसंधानों ने इन सामाजिक विज्ञानों की अनुसन्धान पद्धतियों को कुछ संशोधनों और परिवर्तनों के साथ स्वीकार किया है। यदि हिन्दी अनुसन्धान को वास्तविक अर्थों में वैज्ञानिक आधार प्रदान करना है तो हमें भी समाज विज्ञानों की अनुसंधान पद्धतियों को स्वीकार करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 युवोरनाकौ पाणिनि सूत्र 7/1/1
2 अकः सवर्णे दीर्घः पाणिनि सूत्र 6/1/101
3 आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी पृ० 1038
4 शब्द कल्पद्रुम—शुध + णिच् + ल्युट + अन = शोधन पंचम भाग पृ० 141
5 वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश—पृ० 1031
6 वही। पृ० 54
7 शब्द कल्पद्रुम खण्ड 2 पृ० 320 कालम 1
8 वाचस्पत्यम खण्ड 4 पृ० 2567 कालम 2
9 वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० 340
10 'Research is but diligent search which enjoys the high flavor of Primitive hunting, (James Harvey Robinson)
A Research Mannual s By Cecil B williams & Allan H Stevenson Page 1
11 Research is an instrument which mankind has perfected very slowly over a period of several centuries and it seems to be at present our most reliable means of advancing out knowledge Its Purpose like that of all the other methods, is to discover facts and ideas not previously known to man
Tyrus Hill way Introduction to Research Page 5
12 We may define social research as the systematic method of discovering new facts of veryfying old facts, their sequences

inter relationships, causal explanations and the natural laws which govern them '

P V Young opcit

13 The application to any social situation of exact procedures for the purpose of solving a problem or testing an hypothesis or discovering new Phenomena These procedures must confirm as closely as Possible to the accepted scientific requirement Dictionary of Sociology Page 291 Edited by Henry Pratt Fairchild

14 डॉ० गुलाबराय अध्ययन और आस्वाद, पृ० 399

15 वही । पृ० 399

16 आ० परशुराम चतुर्वेदी अनुसन्धान का स्वरूप (सपादिका) डॉ० सावित्री सिन्हा, पृ० 30

17 भारतीय हिन्दी परिषद रायगढ़ के शोध सत्र का अध्यक्षीय भाषण ।

18 डा० नगेन्द्र अनुसंधान का स्वरूप, (सपादिका) डा० सावित्री सिन्हा, पृ० 97

19 आ० नन्ददुलारे वाजपेयी प्रकीर्णिका शोध और समीक्षा' पृ० 13

20 डा० भोलाशंकर व्यास राजस्थान विश्वविद्यालय 1952

21 डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित आगरा विश्वविद्याल 195

22 डॉ० तारकनाथ बाली दिल्ली विश्वविद्यालय 1962

23 डा० विद्याभूषण विभु' इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1952

24 सावित्री सिन्हा (स०) अनुसन्धान का स्वरूप (खोज सम्बन्धी कुछ अनुभव तथा समस्याएँ डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 11

25 हिन्दी अनुशीलन, अंक 3 4, वर्ष 1962 डा० रामकुमार वर्मा अनुसन्धान की प्रक्रिया

26 डॉ० नगेन्द्र साहित्यिक अनुसंधान के प्रतिमान सपादक डा देवराज उपाध्याय पृ० 15 तथा डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश पृ० 1

27 डॉ० हरवंशलाल शर्मा अनुसंधान की प्रक्रिया सम्पादक डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० 133 34

28 वही । पृ०-139 140

29 डॉ० सवित्री सिन्हा-तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (सम्पादक) 'अनुसन्धान की प्रक्रिया' सम्पादकीय, पृ० 8

30 कृष्णाचार्य हिन्दी के स्वीकृत प्रबन्ध पृ० 8

31 डा० विनय मोहन शर्मा शोध प्रविधि पृ० 25

32 'In selection of a topic for research the social scientist mu t rely upon his own inclinations The best and most indepen dent minds rebel against Pursuing work which does not sati sfy their curiosity"–Research methods in social Relations part I Page 15 By–Jahoda and others

33 Progress as we know it in the modern world would be impo ssible without research Each year new product new facts new concepts and new ways of doing things come into our lives as the result of it

–Tyrus Hillway––Introduction to Research Page–3

34 J L Gillin and J P Gillin Cultural Sociology P 10

35 डा० चार्ल्स ए० इलवुड समाजशास्त्र की विधियाँ अनु० शम्भुरत्न त्रिपाठी पृ० 75

O

2

अनुसन्धान-पद्धतियाँ

अनुसन्धान पद्धतियों के निर्माण का आधार प्राच्य वैज्ञानिक अनुसन्धानों को माना जा सकता है। अनुसंधान एक विशिष्ट विधान है जिसके सम्यक विश्लेषण हेतु उसकी विभिन्न शाखाओं को भिन्न भिन्न रूपों में विवेचित करना पड़ता है। इस वैविध्य के कारण समस्त ज्ञान क्षेत्रों के अनुसंधान हेतु विशिष्ट पद्धतियों का निर्माण आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि पद्धति विहीन अनुसन्धान की स्थिति में हस्तामलकवत विषय भी मायवी कल्पना बन जाता है। इसलिए पद्धतियों का निर्माण अनुसन्धानयिक एक रूपता क्रमबद्धता एवं उदात्तता के लिए अपरिहार्य है। वैज्ञानिक परिदृष्टि के अन्तर्गत विषय स्वयं पद्धति को प्रश्रय देता है। उदाहरणार्थ वस्तु निक्षेप द्वारा जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का अनुसंधान हुआ उसमे प्रायोगिकी के किसी सैद्धान्तिक मानदण्ड द्वारा कार्य नहीं हुआ अपितु सामान्य दृष्टि ही क्रिया वयन में सहायक हुई। इसके विपरीत शास्त्रीय अनुसंधान प्रतिमा की अपेक्षा बौद्धिकता एवं तर्कना को महत्व देता है जिसके अन्तर्गत पद्धतिशास्त्र की एक निश्चित सैद्धान्तिकी अनिवार्य मानी जाती है। किन्तु दुर्भाग्यवश साहित्य वेत्ताओं ने पद्धति शास्त्र के निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया जिसके परिणाम स्वरूप साहित्यानुसंधान अद्यावधि परम्परा का प्रत्यावर्तन मात्र रह गया है तथा सुनिश्चित विचारक इस क्षेत्र को गर्हित और हेय मानते हैं। इसीलिए कतिपय मनीषियों ने पद्धति शास्त्र की उपयोगिता तथा उसकी प्रक्रिया का उल्लेख किया है। डॉ० भगीरथ मिश्र ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। उनके अनुसार "अनुसन्धान के विविध रूपों के अनुसार ही उसकी पद्धतियाँ निश्चित की जा सकती हैं। पद्धति का स्वरूप अधिकांश विषय के अनुरूप होता है और पद्धति विधान की दृष्टि से व्यक्ति की निजी पद्धति का प्रश्न केवल प्रारम्भिक या प्रयोगात्मक स्थिति तक ही सीमित रहता है।[1] विषयानुरूप पद्धतियों के उपयोग की दिशा में कई कठिनाइयाँ आती हैं क्योंकि एक ही विषय विभिन्न पद्धतियों के आधार पर लिखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में अनेक प्रकार के निष्कर्ष भी सामने आते हैं जिनसे शोधार्थी विभ्रम की स्थिति में पड़ जाता है। पद्धति शास्त्र की आलोचना की दृष्टि से प्रभाकर माचवे की प्रतिक्रिया अधिक तीव्र है। उनके अनुसार गुप्त स्मृत मधुकोषों में जाहिर नहीं होते हैं।[2] परन्तु साहित्यानुसंधान की पद्धतियाँ ही अभी तक निर्मित नहीं हुई हैं, इसलिये रचना का प्रश्न ही नहीं उठता। इनके

31 डा० विजय मोहन शर्मा शोध प्रविधि पृ० 25

32 'In selection of a topic for research the social scientist must rely upon his own inclinations The best and most independent minds rebel against Pursuing work which does not satisfy their curiosity,'—Research methods in social Relations part I, Page 15 By—Jahoda and others

33 *Progress as we know it in the modern world would be impossible without research* Each year new product new facts new concepts and new ways of doing things come into our lives as the result of it

—Tyrus Hillway——Introduction to Research Page—3

34 J L Gillin and J P Gillin Cultural Sociology P 10

35 डा० चार्ल्स ए० इलउड समाजशास्त्र की विधियाँ अनु० शम्भुरत्न त्रिपाठी पृ० 75

O

2

अनुसन्धान-पद्धतियाँ

अनुसन्धान पद्धतियो के निर्माण का आधार प्राच्य वैज्ञानिक अनुसंधानो को माना जा सकता है। अनुसंधान एक विशिष्ट विज्ञान है जिसके सम्यक विश्लेषण हेतु उसकी विभिन्न शाखाओं को भिन्न भिन्न रूपों में विवेचित करना पडता है। इस वविध्य के कारण समस्त ज्ञान क्षेत्रों के अनुसंधान हेतु विशिष्ट पद्धतियो का निर्माण आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि पद्धति विहीन अनुसन्धान की स्थिति में हस्तामलकवत विषय भी वायवी कल्पना बन जाता है। इसलिए पद्धतियो का निर्माण अनुसन्धानकि एक रूपता क्रमबद्धता एव उदात्तता के लिए अपरिहार्य है। वैज्ञानिक परिदृष्टि के अन्तर्गत विषय स्वत पद्धति को प्रश्रय देता है। उदाहरणार्थ वस्तु निक्षेप द्वारा जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का अनुसंधान हुआ उसमे प्रायोगिकी के किसी सैद्धान्तिक मानदण्ड द्वारा कार्य नही हुआ अपितु सामान्य दृष्टि ही क्रियान्वयन में साधक हुई। इसके विपरीत शास्त्रीय अनुसंधान प्रतिभा की अपेक्षा बौद्धिकता एव तर्कना को महत्व देता है जिसके अन्तर्गत पद्धतिशास्त्र की एक निश्चित सैद्धान्तिकी अनिवार्य मानी जाती है। किन्तु दुर्भाग्यवश साहित्य नेषियों ने पद्धति शास्त्र के निर्माण की ओर ध्यान नही दिया जिसके परिणाम स्वरूप साहित्यानुसंधान अद्यावधि परम्परा का प्रत्यावर्तन मात्र रह गया है तथा सुचिन्तित विचारक इस क्षेत्र को गर्हित और हेय मानते हैं। इसीलिए कतिपय समीक्षकों ने पद्धति शास्त्र की उपयोगिता तथा उसकी प्रक्रिया का उल्लेख किया है। डा० भगीरथ मिश्र ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। उनके अनुसार अनुसंधान के विविध रूपों के अनुसार ही उसकी पद्धतियाँ निश्चित की जा सकती हैं। पद्धति का स्वरूप अधिकांशत विषय के अनुरूप होता है और पद्धति विज्ञान की दृष्टि में व्यक्ति की निजी पद्धति का प्रश्न केवल प्रारम्भिक या प्रयोगात्मक स्थिति तक ही सीमित रहता है।[1] विषयानुरूप पद्धतियो के उपयोग की दिशा में कई कठिनाइयाँ आती हैं, क्योंकि एक ही विषय विभिन्न पद्धतियो के आधार पर लिखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में अनेक प्रकार के निष्कर्ष भी सामने आते हैं जिनमे घोर विभ्रम की स्थिति में पड जाना है। पद्धति शास्त्र की आलोचना की दृष्टि से प्रभाकर माचवे की प्रतिक्रिया अधिक तीव्र है। उनके अनुसार 'गुरु स्वयं मथडोलाजी में माहिर नहीं होते हैं।[2] वस्तुत साहित्यानुसंधान की पद्धतियाँ ही अभी तक निर्मित नही हुई हैं, इसलिये दमना का प्रश्न ही नहीं उठना। इनके

अतिरिक्त अन्यान्य विद्वानों ने विषय निर्वाचन सामग्री सकलन एव सम्पादन की महत्ता को ही पद्धतियो के अन्तर्गत विवेचित किया है। केवल डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने वस्तगत और समाधानगत दो पद्धतियों का उल्लेख करते हुए अज्ञाताऩ्वेषण एव ज्ञातशोधन को ही अनुसन्धान पद्धति के रूप में विभक्त किया है।[3] किन्तु इसे भी पद्धति की अपेक्षा मनोवृत्ति के रूप में स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

अनुसन्धान पद्धतियो के वर्गीकरण की दिशा में सर्वप्रथम डॉ० मनोरथ मिश्र ने प्रयास किया है और उन्होंने अनुसन्धान कार्य को दस वर्गों म विभाजित किया है।[4] यथा–

1 शब्दानुसन्धान
2 पाठानुसन्धान
3 भाषानुसन्धान
4 अर्थानुसन्धान
5 तथ्यानुसन्धान
6 तत्वानुसन्धान
7 कलानुसन्धान
8 भावानुसन्धान
9 प्रवृत्यानुसन्धान
10 आलोचनानुसन्धान।

लेकिन जसा उन्होंने कहा है कि यह वर्गीकरण अनुसन्धान कार्य का है। विशेषकर यह विभाजन हिन्दी भाषा एव साहित्य के अन्तर्गत आता है। इनके अतिरिक्त पद्धतियो का वर्गीकरण नहीं किया है। जिन विद्वानो ने विषय निर्वाचन से लेकर सम्पूर्ण कार्य सम्पादन तक के तथ्यो का विवरण दिया है वे केवल नियम हैं तथा उन नियमो का पालन करके अनुसन्धान कार्य की पूर्ति म सरलता रहती है। यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि ये नियम उस समय अधिक उपयोगी थे जब अनुसन्धान कार्य का शुभारम्भ हुआ था। अब अनुसन्धान की प्रौढ़ावस्था है इसलिए ये नियम अति सामान्य हैं।

वस्तुत विषयों के आधार पर अनुसन्धान पद्धतियों को तीन वर्गों म विभाजित करना समीचीन प्रतीत होता है–

1 ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियाँ।
2 भौतिक विज्ञान की अनुसन्धान पद्धतियाँ।
3 समाज वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियाँ।

ऐतिहासिक भौतिक वैज्ञानिक एव समाज वैज्ञानिक विषयों में प्रयुक्त पद्धतियों को इस तालिका से समझा जा सकता है—
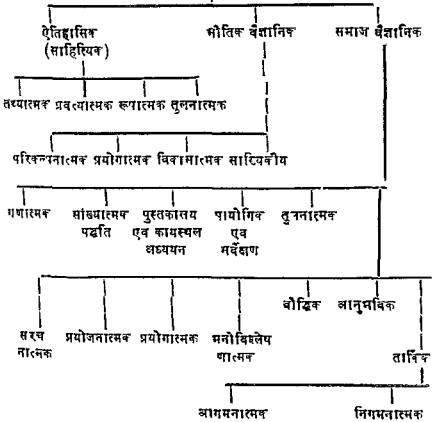
उपयुक्त प्रयुक्त पद्धतियों में अनेक कई क्षेत्रों में व्यवहार में आती हैं। इस प्रकार यदि उन्हें अलग कर दिया जाय तो अधोलिखित प्रवृत्तियाँ समग्र रूप से प्रयुक्त होती हैं—

१ तथ्यात्मक १ प्रवृत्यात्मक ३ रूपात्मक, ४ तुलनात्मक, ५ परिकल्पनात्मक ६ प्रयोगात्मक ७ विकासात्मक, ८ सांख्यिकीय, ९ गुणात्मक १० पुस्तकालय एवं कार्यस्थल अध्ययन, ११ सर्वेक्षणात्मक १२ संरचनात्मक १३ प्रयोजनात्मक, १४ मनोविश्लेषणात्मक, १५ बौद्धिक १६ आनुभविक १७ तार्किक।

ऐतिहासिक अनुसन्धान-पद्धति

इतिहास शब्द की अवधारणा एवं स्वरूप—इतिहास संस्कृति की विकास माला से सम्पन्न है। इसीलिए पुरातन समय से ही इतिहास को अध्ययन के एक

स्वतन्त्र विषय के रूप म मान्यता प्राप्त हुई है। व्युत्पत्तिपरक दृष्टि स इतिहास शब्द इति+ह+आस से निर्मित हुआ है। इतिहास शब्द की उपयुक्त अवधारणा में दो प्रमुख तथ्य स्पष्ट रूप स द्रष्टव्य हैं–सर्वप्रथम यह कि इतिहास का सम्बन्ध अतीत से है द्वितीय यह कि उसके आलेखन में यथार्थ घटनाओं को ही प्रमुखता दी जाती है। सम्प्रति इतिहास' शब्द को इतने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है कि उसके अन्तर्गत अतीत की प्रत्येक परिस्थिति घटना प्रक्रिया एवं प्रवृत्ति की व्याख्या का सन्निवेश हो जाता है।

चिन्तन की विकासात्मक प्रक्रिया एव परिवर्तित दृष्टि के अनुसार इतिहास का स्वरूप बदलता रहा है। वस्तुत इतिहास कला है या विज्ञान यह प्रश्न आज भी विवादास्पद है क्योंकि कभी उसे कला के क्षेत्र में और कभी विज्ञान के क्षेत्र म समाविष्ट कर लिया गया है। किसी भी वस्तु के कला या विज्ञान होने का निर्णय उसकी अध्ययन पद्धति या रचना पद्धति पर निर्भर करता है। इतिहास हम अतीत का इतिवृत्त प्रदान करता है किन्तु हम उस इतिवृत्त को किस रूप म उपयोगी बनाते हैं यह हमारी सर्जनात्मक शक्ति प निर्भर करता है। यदि ऐतिहासिक इतिवृत्त का हम वैयक्तिक अनुभूति एव लालित्यपूर्ण शैली म प्रस्तुतीकरण करें तो वह कला की सत्ता म विभूषित हो सकता है। प्रतिभाशाली साहित्यकार काव्य म इतिहास को आधार बनाकर भाव और कला का अपूर्व सामञ्जस्य उपस्थित कर देता है। यही इतिहास साहित्यकार द्वारा कला के रूप म परिणत हो जाता है। इसी प्रकार जब ऐतिहासिक विवरण को वस्तुपरक दृष्टिकोण तार्किक शैली एव अनुसन्धानात्मक पद्धति से प्रस्तुत किया जायेगा तो वह विज्ञान की विशिष्टताओं से स्वयमेव अलंकृत हो जायगा।

आधुनिक युग म इतिहास को कला की अपेक्षा विज्ञान के अधिक समीप माना गया है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर आज का इतिहासकार तथ्यों की यथार्थता और निष्कर्षों की प्रामाणिकता पर अधिक बल देता है। ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इतिहास म विषय वस्तु की अप्रत्यक्षता के कारण भौतिक विज्ञान या रसायन विज्ञान की सी वस्तुपरक सत्यता न हो।

इतिहास मानव समाज की विगत घटनाओं अथवा तथ्यों का सतर्क सकलन है। घटना का वह कार्य है जो मानव तत्व के कारण हमारा ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ है। इतिहासकार विगत घटनाओं अथवा तथ्यों का सचय कर उनकी विधिवत व्याख्या प्रस्तुत करता है। तथ्य प्राप्य प्रमाणों के आधार पर सगृहीत होते हैं और उनमें से जो इतिहास की गति के अनुकूल और उसके स्वरूप के अनुरूप जान पड़ते हैं, उन्हीं को इतिहासकार ग्रहण करता है। इस प्रकार ऐति

हासिक तथ्य की कोई स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता नहीं है वरन् वह एक विशिष्ट उद्देश्य से परीक्षित और गृहीत निर्णय मात्र है।[5]

इतिहास में गृहीत समस्त तथ्यों के लिए व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। व्याख्या का आशय है तथ्यों के पारस्परिक सबंधों का निर्धारण इस स्पष्टीकरण के लिए इतिहासकार की जिज्ञासा वृत्ति सतत संलग्न रहती है। ऐसी स्थिति में इतिहासकार अतीत एवं वर्तमान में सामंजस्य स्थापित करता है। क्योंकि इतिहास अतीत से जुड़ा रहता है और इतिहासकार वर्तमान का प्रत्यक्ष भोक्ता है। अतीत और वर्तमान की समन्वित मनःस्थिति में रह करके भी इतिहासकार भावी अनुमान हेतु स्वतंत्र है।[6]

ऐतिहासिक अध्ययन की प्रक्रिया-ऐतिहासिक अध्ययन में इतिहासकार के व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है। कतिपय इतिहासकारों ने इतिहासकार के व्यक्तित्व पर बल देते हुए सम्पूर्ण प्रक्रिया को आत्मपरक माना है। वस्तुतः, इतिहास एक विकासशील एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया है इसलिये इसके दो मूल तत्व होते हैं–तथ्य एवं व्याख्या। इतिहासकार जिस सामग्री का चयन करता है और जिनके आधार पर व्याख्या प्रस्तुत करता है उन्हें तथ्य के अन्तर्गत रखा जाता है। इतिहास लेखन की अपनी एक परम्परा होती है। कोई भी लेखक सर्वथा नवीन परिस्थितियों में नव्य प्रतिमानों के आधार पर इतिहास की नितान्त मौलिक व्याख्या नहीं प्रस्तुत कर सकता। ऐसी स्थिति में एक ओर पिष्ट पेषण का भय रहता है, तो दूसरी ओर इतिहास के अखण्ड प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो सकता है। इसीलिये प्रसिद्ध इतिहासकार आर० सी० मजूमदार ने इतिहास के अध्येता को पूर्वाग्रहों एवं पूर्वधारणाओं से मुक्त होकर प्राप्य सामग्री के विवेचन का निर्देश दिया है। इतिहासकार की वृत्ति पक्ष विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करने की अपेक्षा निष्कर्षों की ओर अधिक रहती है।

इतिहास लेखन के प्रारम्भिक चरण में इतिहासकारों ने मात्र तथ्यानुसंधान एवं सामग्री संकलन तक स्वयं को सीमित रखा है। कालान्तर में अतीत के छिपे रत्नों को खोजने के लिये तथा अपने पुराने रत्नों को अधिक गौरवशाली सिद्ध करने के लिये इतिहास के तथ्य परक कंकाल को त्वचा से ढककर आकार प्रदान किया गया।[7]

ऐतिहासिक अध्ययन के इस नवीन दृष्टिकोण ने इतिहास लेखन की पद्धति में परिवर्तन कर दिया और लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासकार फिशर ने इतिहास को मानवीय भाग्य चक्र के आवर्तन में अदृश्य और आकस्मिक तत्वों की क्रीड़ा को इतिहास के रूप में देखा। उपर्युक्त मत के अनुसार इतिहास अपने को दोहराता है।[8] इतिहास की यह पुनरावृत्ति मानव निर्मित सत्य विरोध युक्त तथा नयी-पुरानी

गतिविधि है। इस विचारधारा के कारण ऐतिहासिक अध्ययन की दिशा व्यष्टि के स्थान पर समष्टि की ओर उन्मुख हो जाती है। फ्रांस, रूस और चीन की राज्य क्रान्ति ने इतिहास की दिशा को बदलने में समाज के योगदान का परिचय दिया।

इतिहास में व्यष्टि और समष्टि-ऐतिहासिक अध्ययन के अन्तर्गत जन और आन्दोलन को एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष के रूप में विवेचित किया गया है। इतिहास में किसी महान् पुरुष का उदय उसी स्थिति में होता है जब उसके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं को जन मानस स्वीकार करे। इसलिये व्यक्ति और समाज दोनों का इतिहास में सापेक्षिक महत्व है। इतिहास न केवल मनुष्य अपितु मानवता के विकास का सूचक है। मानव के विकास क्रम में प्रकृति और मानव, मानव और समाज का संघर्ष आदि काल से होता रहा है। इसी संघर्ष ने मानव को समाजो मुखी बनाया। प्रख्यात इतिहासज्ञ कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी ने भी लिखा है कि इतिहास का मुख्य लक्ष्य किसी देश के वासियों को युगों से प्रेरित एवं संगठित करने वाले और उनके जीवन की विभिन्न गतिविधियों को व्यक्त करने वाले मूल्यों की खोज एवं उद्घाटन कार्य होना चाहिये।[9]

इतिहास का स्वरूप एवं प्रयोजन के निर्धारण करने के उपरान्त ऐतिहासिक पद्धतियों का अनुशीलन समीचीन प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान की पद्धतियाँ

इतिहास को अनुसन्धान के रूप में सर्वप्रथम हीरोदोतस ने प्रयुक्त किया और उन्होंने इसे एक वैज्ञानिक विधा के रूप में स्वीकार किया तथा इसकी चार विशेषताओं का उल्लेख किया जिसके अन्तर्गत इतिहास के विवेचन, इतिहास के संबंध, इतिहास के स्वरूप तथा इतिहास के प्रयोजन की ओर संकेत किया गया। हीरोदोतस के पश्चात् वीको, काण्ट तथा हीगल जैसे बुद्धिवादी चिन्तकों ने भी ऐतिहासिक अनुसन्धान की व्याख्या प्रस्तुत की। वीको इतिहास को अतीत एवं वर्तमान दोनों से सम्बद्ध मानते हैं। उनके अनुसार इतिहास की गति चक्रवत् है तथा इतिहास का प्रत्यावर्तन परवर्ती युगों में भी होता है। दूसरी ओर जर्मन विद्वान काण्ट ने इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह अभिमत प्रस्तुत किया कि प्रत्यक्ष जगत में वस्तुओं का विकास उसके प्राकृतिक इतिहास के समकक्ष रहता है। बाह्य प्रगति उन आन्तरिक शक्तियों की कलेवर मात्र होती है जो एक निश्चित नियम के अनुसार मानव जगत में कार्यशील रहता है।[10]

हीगल ने भी काण्ट की विचारधारा का अनुगमन किया किन्तु ऐतिहासिक व्याख्या के लिये कार्य-कारण शृंखला की विद्यमानता पर बल दिया। वे इतिहास को विश्व सभ्यता की प्रगति का वृत्तान्त मानते हैं। विश्व सभ्यता की यह प्रगति

विरोधी परिस्थितियों में अर्थात वाद (Thesis), प्रतिवाद (Anti Thesis) के द्वारा समवाद (Synthesis) की प्रतिस्थापना है। इस प्रक्रिया को हीगल ने द्वन्द्वात्मक अर्थात (Dialectic) प्रक्रिया कहा है।

सन 1859 ई० में डार्विन ने जीव विज्ञान के आधार पर अपने ग्रन्थ 'दि ओरिजिन आफ स्पसीज' में विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसका प्रभाव ऐतिहासिक अनुसन्धान पर भी पड़ा। जिसके आधार पर यह विचार किया गया कि ऐतिहासिक अध्ययन घटना समूह का संकलन न होकर विकास क्रम का अध्ययन है। कार्लमार्क्स एंजिल्स, हक्सले, स्पेंगलर ट्वायनबी टेनर आदि इतिहासकारों ने भी विश्व सभ्यता और संस्कृति के इतिहास की व्याख्या इन्हीं विकासवादी नियमों एवं प्रक्रिया के आधार पर की।[11]

विकास प्रक्रिया के सामान्य सिद्धान्तों की विवेचना के अन्तर्गत साहित्यिक विकास प्रक्रिया का निर्धारण नहीं किया गया। साहित्य के क्षेत्र में सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास फ्रेन्च इतिहासकार तेन (Taine) ने किया और उसने व्याख्या के तीन आधारभूत सूत्रों का निर्धारण किया—जाति (Race) वातावरण (Milieu) क्षण (Moment)[12]। तेन ने इन सत्रों के माध्यम से जातीय परम्परा, युगीन चेतना एवं राष्ट्रीय वातावरण के आधार पर ऐतिहासिक अनुसन्धान की प्रक्रिया को विकसित किया। इस प्रकार अनुसन्धान की पद्धतियों के निर्धारण हेतु नैसर्गिक प्रक्रिया, पर्व पीठिका युगचेतना एवं रचनाकार की मानसिक प्रक्रिया को आधार बनाया गया। किन्तु इन विद्वानों ने ऐतिहासिक अनुसन्धान की पद्धतियों की ओर संकेत तक नहीं किया, क्योंकि मूलत यह विद्वान साहित्येतिहास के क्षेत्र में पृथक मौलिक चिन्तनों से सम्बन्धित थे।

ऐतिहासिक अनुसन्धान की दृष्टि से भारतीय विद्वानों ने भी किसी मौलिक पद्धति की ओर संकेत नहीं किया। हिन्दी साहित्य के शोध के क्षेत्र में ऐतिहासिक प्रबन्धों का बाहुल्य है, किन्तु ऐतिहासिक अनुसन्धान की पद्धतियों की दृष्टि से किसी भी प्रबन्ध में विचार नहीं किया गया।

इतिहास का सम्बन्ध अन्वेषण एवं खोज से है इसीलिये ऐतिहासिक अध्ययन में निश्चित पद्धतियों का प्रयोग अपरिहार्य है, क्योंकि दर्शन एवं कला के क्षेत्र में अनुमान एवं कल्पना को यत्किंचित स्थान मिल सकता है किन्तु वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में हमारा उद्देश्य सत्यान्वेषण तक सीमित रहता है। इस वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति के निर्धारण हेतु हम पूर्व विवेचित मौलिक चिन्तकों के सिद्धान्तों को ही आधार मानना होगा। मौलिक चिन्तन के अन्तर्गत प्राकृतिक संरचना, परम्परा वातावरण द्वन्द्व एवं उपलब्धियों के आधार पर पद्धतियों का निर्माण हुआ है।[13] इन्हीं पाँच तत्वों के आधार पर ऐतिहासिक पद्धतियों का प्रति

पादन किया जा सकता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियों के मूल में डार्विन का विकासवाद ही सन्निहित है क्योंकि इतिहास एक विकासशील मानव परम्परा है। इस दृष्टि से इतिहासकार का दायित्व तटस्थ रूप से प्राप्य तथ्यों का संकलन करना है किन्तु मनुष्य का जीवन गुण एवं दोषों से युक्त होता है ऐसी स्थिति में तटस्थता एवं निष्पक्षता का आधार इतिहासकार को ही बनाया जा सकता है। फलतः इतिहासकार अपनी युग चेतना एवं आन्तरिक प्रवृत्तियों के आधार पर इतिहास को युगानुरूप परिवेश के अनुरूप विवेचित करके भविष्य को प्रेरणा प्रदान करता है। इतिहासकार की इसी विचारणा के कारण *प्रवृत्त्यात्मक प्रणाली का उदय हुआ।*

ऐतिहासिक अनुसन्धान की उपर्युक्त अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुए उसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

1 तथ्यात्मक पद्धति
2 प्रवृत्यात्मक पद्धति
3 रूपात्मक पद्धति
4 तुलनात्मक पद्धति

तथ्यात्मक पद्धति—अनुसन्धान की पद्धतियों के प्रवृत्तिगत विवेचन के अन्तर्गत ऐतिहासिक अनुसन्धान को एक विधि माना गया है किन्तु शास्त्रीय आधार की अपेक्षा जब विषयगत वर्गीकरण किया गया तो इतिहास को एक विषय माना गया और उसकी पद्धतियों को पृथक रूप में वर्गीकृत किया गया। इतिहास मूलतः तथ्य का संकलन है। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक अनुसन्धान के अन्तर्गत अतीत के विश्लेषण के लिये तथ्यानुसन्धान की प्रवृत्ति विकसित हुई। तथ्यात्मक अनुसन्धान की व्याख्या करते हुए एफ० एल० ह्विटनी ने मानव विचारों और क्रियाओं के विकास की दिशा के अनुसन्धान को तथ्यानुसन्धान का उद्देश्य बताया।[14] तथ्यानुसन्धान के अन्तर्गत सर्वाधिक दुरूह स्थिति समस्या निर्धारण की है, क्योंकि तथ्यानुसन्धान समस्या का सर्वेक्षण नहीं अपितु संकलित तथ्य का शोधन एवं परिष्करण भी है। तथ्यानुसन्धान के अन्तर्गत सर्वप्रथम समस्या को निर्धारित करके उनसे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया जाता है तथा संकलित तथ्यों को अनुसन्धित्सु युगीन परिस्थितियों के अनुरूप व्याख्यायित करता है इस प्रकार तथ्यानुसन्धित्सु सर्वप्रथम समस्या मूलक परिस्थितियों का निर्धारण करता है तथा तथ्य एवं व्याख्या में स्थापन करता है।

ऐतिहासिक तथ्यानुसन्धान के अन्तर्गत अनुसन्धित्सु को विवेच्य युग के सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक मानदण्डों का समुचित ध्यान तो रखना ही पड़ता है ऐतिहासिक अनुसन्धान के उद्देश्यों को प्रशस्त भी करना पड़ता

है। वस्तुत तथ्यानुसन्धान प्राचीन स्मारको पाण्डुलिपियो, अभिलेखो इत्यादि के माध्यम से विवेच्य कालखण्ड का अनुमानाश्रित सत्यापन करता है तथा यह भी सिद्ध करता है कि साम्प्रतिक सिद्धा त एव क्रियाएँ किन परिस्थितियो म उदभूत हुई हैं। इसके लिए तथ्यानुसन्धित्सु को लिखित एव मौखिक परम्पराओ, कलात्मक उपलब्धियो एव अवशिष्ट उपादानो का आश्रय लेना पडता है।

2 प्रवृत्यात्मक पद्धति—इतिहास के अनुसन्धान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सशक्त प्रणाली प्रवृत्यात्मक है। प्रवृत्यात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख सवप्रथम विश्व सभ्यता मे अध्ययन हेतु सोरोकिन द्वारा किया गया। सोरोकिन ने विश्व सस्कृति की आ तरिक प्रवृत्तियो के आधार पर व्याख्या की। ऐतिहासिक अनुस धान के अ तगत इस प्रवृत्यात्मक पद्धति का उपयोग कृति के आन्तरिक तत्वो के विवेचन हेतु किया जाता है। कोई भी कृति वाहय एव आभ्या तर दो रूपो स प्रभावित होती है। आ तरिक तत्वो के निर्माण म रचनाकार की मानसिक प्रक्रिया का विशेष योगदान होता है इसके अतिरिक्त परम्परा एव युगीन परिवेश भी प्रवृत्यात्मक व्याख्या के आधार माने जाते हैं। ऐतिहासिक अनुस धान की प्रवृत्यात्मक पद्धति का दूसरा पक्ष अनुसंधित्सु का होता है। अनुसंधित्सु कवि की मानसिक प्रक्रियाओं एव परम्परा तथा परिवेश का अध्ययन तो करता ही है साथ ही वह अपने युग की सचेतना स भी अनुप्राणित होकर कृत्यानुशीलन करता है ऐसी स्थिति म प्रवृत्यात्मक पद्धति के निर्माण म अधोलिखित मा यताओ का प्रभाव अपरिहार्य है—

1 परम्परा
2 कृतिकार का युगीन परिवेश
3 कृतिकार की मानसिक प्रक्रिया
4 अनुसंधित्सु की युगीन सचेतना

इन मा यताओ के आधार पर प्रवृत्यात्मक अनुसन्धान पद्धति का विकास होता है। जसा कि विवेचित किया जा चुका है कि प्रवृत्यात्मक व्याख्या का आधार विकासवाद है। युग एव परिस्थितियो के साथ साथ साहित्यानुशीलन की प्रवृत्ति में भी परिवतन हो जाता है। इसी वर्तमानिक दृष्टिकोण के कारण एक ही कृति विभिन्न युगो एव सामाजिक परिवेशो म भिन्न भिन्न रूपो में व्याख्यायित होती है इसके अतिरिक्त अनुसंधित्सु की अ तश्चेतना भी कृति को विभिन्न दृष्टियो से विवेचित करने के लिये स्वतन्त्र हैं। इन प्रतिमानो के आधार पर प्रवृत्यात्मक अनुसन्धान पद्धति को चार वर्गों म विभाजित किया जा सकता है—

1 सांस्कृतिक
2 दार्शनिक

4 भावात्मक

सांस्कृतिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत कवि के कृतित्व को तद्युगीन एवं साम्प्रतिक परिधि में विवेचित किया जाता है तथा कवि विशेष की सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन भी किया जाता है ।

दार्शनिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत कवि की तत्त्वचिन्तना एवं कवि की बौद्धिक अवधारणाओं का अनुशीलन, नवीन दार्शनिक मान्यताओं का प्रतिपादन एवं अतीत के माध्यम से भविष्य के लिये प्रेरणा का परिपाक कराया जाता है ।

सामाजिक अनुसंधान प्रवृत्ति के आधार पर अनुसन्धित्सु समाज की प्राचीन मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में कृतित्व का अनुशीलन करता हुआ कृतिकार की सामाजिक स्वतन्त्रता एवं उसकी विचारधारा को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़कर कृति को समाजोपयोगी बनाता है ।

साहित्यविज्ञान की प्रवृत्यात्मक अनुसंधान पद्धतियों में भावात्मक पद्धति कवि की मानसिक प्रक्रियाओं पर आधारित होती है । इसके माध्यम से अनुसंधित्सु कृति के अन्तर्निहित सौन्दर्य को हृदयंगम करता है तथा विभिन्न भाव मूलक तत्त्वों के आधार पर समीक्ष्य कृति की विवेचना करता है ।

प्रायः कृति विशेष कवि की संवेदना की उपज होती है ऐसी स्थिति में जब हम कृतिकार की मनःस्थिति में स्वयं को डालकर किसी रचना की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं तब उस कृति का वास्तविक एवं तथ्यपरक मूल्यांकन सम्भव होता है । इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि अनुसंधित्सु अपनी अनुभूतियों का परित्याग नहीं करता । इस प्रकार कृति की व्याख्या दो रूपों में की जाती है—कवि की मनःस्थिति में आरोपित होने के कारण जहाँ एक ओर कृति का अन्तः सौन्दर्य रूपायित होता है वहाँ दूसरी ओर अनुसन्धित्सु की निजी संवेदना विवेच्य रचना को सामयिक सन्दर्भों से जोड़ती हुई उसे जनमानस के लिये सम्प्रेषणीय बनाती है । इसलिये भावात्मक प्रवृत्ति को प्रवृत्यात्मक अनुसंधान पद्धति के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है ।

3 रूपात्मक पद्धति—किसी भी कृति की रूपात्मक व्याख्या के लिये हमें उसके बाह्य तत्त्वों पर विचार करना पड़ता है । रूपात्मक व्याख्या के अन्तर्गत कवि की अपेक्षा कवि के कृतित्व का अनुशीलन उपयोगी होता है क्योंकि बाह्य तत्त्व कवि व्यक्तित्व की अपेक्षा साहित्यिक सन्दर्भों से अनुस्यूत होते हैं । प्रायः देखा जाता है कि एक ही युग में विभिन्न प्रकार की रचनायें प्रकाश में आती हैं । ऐसी स्थिति में अनुसंधित्सु उनके बाह्य कलेवर के आधार पर कृतियों का वर्गीकरण करता है इसके लिए अधोलिखित तत्त्व आवश्यक होते हैं—

1 वस्तु

2 चरित्र
3 विधा
4 शैली

वस्तु के अन्तर्गत युग विशेष के अन्तर्गत लिखी गयी एवं जैसी घटनाओं पौराणिक सन्दर्भो ऐतिहासिक मान्यताओं का विवेचन किया जाता है । यदि एक ही काल के अनेक रचनाकारों ने एक ही कथावस्तु का प्रयोग किया है तो भी कवि व्यक्तित्व के आधार पर उनके कथ्य में अन्तर आ जाता है । अनुसन्धित्सु ऐसी समस्त कृतियों को रूपात्मक पद्धति के अन्तर्गत समीक्षित करता है ।

चरित्र की विविधता केन्द्रीय चरित्र की प्रधानता एवं कथानक के विकास की दृष्टि से सूक्ष्म चरित्र की सर्जना द्वारा जब किसी कथ्य को अधिक महत्वपूर्ण समाजोपयोगी और राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित किया जाता है तो इन कथ्यों से युक्त कृतियों को चरित्रमूलक कृति के रूप में प्रतिष्ठा मिलती है । ऐसी कृतियों की विवेचना के लिये अनुसन्धित्सु उसी प्रकार के अन्य चरित्रों तथा उनके जीवन पर आधारित कृतियों को एक ही क्रम में विवेचित करता है । विभिन्न काव्य परम्पराओं अथवा सम्प्रदायों का विकास इसी सिद्धान्त के आधार पर हुआ है ।

रूपात्मक पद्धति के अन्तर्गत शास्त्रीय मान्यताओं का विशेष महत्त्व है । साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों ने अनेक विधाओं का उल्लेख किया है जिनमें कविता, कहानी नाटक, उपन्यास निबन्ध प्रमुख हैं । विधा मूलक रूपात्मक पद्धति के अन्तर्गत किसी एक विधा की समस्त कृतियों का सकलित करके उनकी समीक्षा की जाती है ।

काव्य में शैली तत्व की सस्थिति पर पाश्चात्य एवं भारतीय कलाविदों विचारकों ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार किया है । प्रतिपादय विषय की सुरुचिपूर्ण प्रस्तुति को शैली कहा जाता है । इस प्रकार शैली काव्य का अभिव्यजना पक्ष है । अतः इसका प्रभाव कृति के अन्तः सौन्दर्य की अपेक्षा बाह्य सौन्दर्य पर अधिक पड़ता है । भिन्न भिन्न युगों में शैली के सम्बन्ध में पृथक पृथक मान्यतायें प्रतिपादित की गयी हैं । किसी युग में पद्य शैली की प्रधानता है तो कहीं मात्रिक छन्दों का प्राबल्य है । इसी प्रकार किसी काल में गद्य शैली का प्राधान्य रहता है तो कहीं काव्य शैली को प्रमुखता मिली है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि युग विशेष में शैली के भिन्न भिन्न रूप उपलब्ध रहते हैं जब शैली के आधार पर ऐतिहासिक रूपात्मक अनुसन्धान पद्धति का प्रयोग किया जाता है, तो वहाँ हम एक ही शैली एवं अभिव्यजना कौशल से प्रभावित समस्त कृतियों को ऐतिहासिक क्रम में विवेचित करते हैं ।

4 तुलनात्मक पद्धति-ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियों में तुलनात्मक पद्धतियों का प्रयोग विकास सर्वथा मौलिक एवं नवीन है । वस्तुतः प्राचीनकाल से ही

मानव बौद्धिक चिन्तन एव आत्मिक चेतना के आधार पर पाशववृत्ति से मुक्ति पाकर एक नवीन जैविक स्थिति प्राप्त करने में सफल हुआ। बुद्धि ने उसे विज्ञान और दर्शन के बीच में अप्रतिम बनाया तथा आत्मा के माध्यम से मानव भाव जगत की सर्जना में सफल हुआ। उसके भाव जगत की सर्वश्रेष्ठ कृति कविता है। प्रारम्भिक काल में काव्य में मर्म भावों का विवेचन हुआ तथा प्रकृत्योपासना के क्षेत्र में अनेक नये काव्यात्मक प्रयोग हुए। कालान्तर में आख्यायिका के विकास के साथ ही काव्य में कथाओं का विश्लेषण किया गया। वैज्ञानिक प्रगति एवं कलात्मक अभिरुचियों ने इन कथात्मक कृतियों को दार्शनिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार सहज संवेदनाओं पर आधारित काव्य कृतियाँ दार्शनिक विचारणा एवं सुष्ठु कलात्मक आधार को प्राप्त कर युग को दिशा निर्देश देने में सफल सिद्ध हुईं। प्रत्येक युग में ऐसी अनेक रचनाओं का प्रणयन हुआ जो युगान्तरकारी सिद्ध हुईं।

काव्यात्मक विकास का मुख्य आधार मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति है। एक ओर इसी जिज्ञासा की प्रवृत्ति ने प्रौढ़ काव्य कृतियों के निर्माण में सहायता की तो दूसरी ओर ज्ञान विज्ञान के विविध परिदृश्यों के अन्तर्गत उन कृतियों के निरीक्षण परीक्षण की प्रेरणा भी प्रदान की।

जैसा कि कहा जा चुका है कि मानव का विकास द्वन्द्वमूलक है। अनादि काल से ही प्रकृति के साहचर्य में रहता हुआ मानव प्रकृति अथवा परिवेश में संघर्ष करता रहा है। इस संघर्ष के मूल में मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति एवं व्यक्तिवादी भावना निहित है। प्रकृति पर विजय पाने के लिये मनुष्य की प्रबल जिजीविषा ने एक ओर नवीन वैज्ञानिक प्रगति की प्रेरणा दी तो दूसरी ओर उसकी असीम भाव सम्पदा उसकी रचनाओं में आने के लिये आकुल हो उठी। आख्यायिकामूलक रचनाओं के सृजन के साथ ही श्रेष्ठता की माप के लिए एक ही मान्यता के आधार पर विभिन्न कृतियों के अनुशीलन का प्रयत्न किया गया। साहित्येतिहास में इसी पद्धति को तुलनात्मक ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति कहा जाता है। इन कृतियों की तुलना के लिये जिन मापदण्डों का निर्माण किया गया उनके अन्तर्गत युग चेतना काव्य प्रवृत्ति, कथ्य अभिव्यंजना एवं साहित्यिक प्रदेय को समाहित किया जा सकता है। प्रायः देखा जाता है कि एक ही युग में एक प्रवृत्ति तथा एक कथावस्तु पर आधारित अनेक रचनाओं में कोई एक कृति ही कालजयी एवं सार्वजनीन बनती है। इस कालजयी कृति के प्रदेय का निर्धारण तुलनात्मक अनुसन्धान पद्धति के आधार पर ही किया जा सकता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति की विशेषतायें—ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की वैज्ञानिक शोध-प्रविधि के अन्तर्गत इसका प्रयोग अनिवार्य है क्योंकि इसके आधार पर हम अतीत को

वर्तमान म भविष्य क लिय उपयोगी बना लेते हैं। ऐतिहासिक अनुसन्धान की अपनी मौलिक विशेषतायें हैं-

1 एतिहासिक अनुसन्धान क द्वारा अतात का अवगाहन करत हुए राष्टीय चतना को प्रभावित करने म सहायता मिलती है।

2 अतीत क माध्यम स मानव के भाग्य चक्र म आवतन म अगोचर और आकस्मिक तत्वो की क्रीडा का दशन होता है।

3 ऐतिहासिक अध्ययन क अ तगत व्यक्तिक जीवनानुभव समाना मुखी हात हैं।

4 एतिहासिक अध्ययन के द्वारा मानव का अतीत क प्रति आस्था वतमान में स्फूर्ति और भविष्य म प्ररणा मिलती है।

5 एतिहासिक पद्धतिया म भी पर्याप्त साम्य हैं तथा य एक दूसर को पूरक हैं अध्यानुसन्धान रूपी कंकाल म प्रवृत्ति आत्मा है और रूप त्वचा।

इस प्रकार इतिहास के उमडते स्रोत म महापुरुषा एव उनकी कृतियो क वज्ञानिक निरीक्षण-परीक्षण द्वारा मानवीय सस्कृति के शाश्वत प्रवहमान स्वरूप की परिकल्पना ही ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतिआ का प्रमुख उद्देश्य है।

४ भौतिक विज्ञानो की अनुसन्धान-पद्धतियाँ

मानव जीवन म वैज्ञानिक दशन का अस्तित्व अत्याधुनिक है। प्रारम्भ में मानव का बौद्धिक चिन्तन प्रकृति दशन तक सीमित था। कालान्तर में ज्यो-ज्यों प्राकृतिक शक्तियाँ पराभूत होती गया और मानवीय शक्तियों का अधिनियमण बढ़ता गया त्यों त्यो प्रकृति पुरावत्त के रूप में परिसीमित हो गयी। आगे चलकर मानवीय चिन्तन के दा पक्ष हुए 1 ज्ञान 2 विज्ञान। ज्ञान की परिधि में धम एव दशन विशेष जटिल रहे जबकि वैज्ञानिक चिन्तन के अन्तग नाभिकीय रहस्यों की गवषणा हुई और पथ्वी का सौर मण्डल के तुच्छ ग्रह के रूप मे विश्लेपित किया गया। प्रारम्भ मे रुढिवादी धार्मिक विचारका ने इन वैज्ञानिक आविष्कारो को अस्वीकार कर दिया, किन्तु भौतिकवादी विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति ने इन दाशनिक विचारो को विज्ञान की सत्ता मानने के लिय विवश कर दिया और काल्पनिक भाव सत्ता का क्रमिक ह्रास प्रारम्भ हुआ। वैज्ञानिक तकनीक ने वस्तु के वैश्लेषिक अध्ययन द्वारा जिस सत्य का उद्घाटन किया उसके समक्ष कला एव दशन के सश्लिष्ट सत्य का स्वीकरण नही हो सका।

मानव जीवन म वज्ञानिक तत्वो के प्रवेश म साथ ही विज्ञान एव समाज के अन्तसम्बन्धा वज्ञानिक उपलब्धियो, अनुसन्धान पद्धतियो एव वैज्ञानिक सकल्पनाओ क विषय म गम्भीरता पूवक विचार किया गया तथा विज्ञान को परिभाषित करने का प्रयत्न हुआ। टी० एस० स्मिथ, उल्फ० गिजबग, काल पियसन प्रभृति विद्वानों ने विज्ञान की काय प्रणाली का विवचन किया। इस दृष्टि स पियसन की मान्यता

अधिक समीचीन है। उसने विज्ञान को तथ्याकलन एव सापेक्षिक महत्व प्रतिपादन की प्रणाली माना है।[15]

वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग की दृष्टि से वैज्ञानिक अविष्कारों ने भिन्न भिन्न पद्धतियों का उपयोग किया है। इन वैज्ञानिकों ने विभिन्न अविष्कारों द्वारा यह सिद्ध किया कि मिथ्याग्रहों से युक्त स्वतः सम्भूत एक पक्षीय दृष्टिकोण का परित्याग करके निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि द्वारा किये गये समीक्षात्मक परीक्षण से प्राप्त ज्ञान ही विज्ञान है। भौतिक विज्ञान के अग्रेज पैगम्बर बेकन ने दर्शन एव विज्ञान का अन्तर स्थापित करते हुए यह स्पष्ट किया कि मात्र शब्दों पर आधारित तार्किक प्रक्रियाओं एव रूढ़िवादी सिद्धान्तों से सचेष्ट रहकर अनुभव पर प्रतिष्ठित सत्य का प्रतिपादन भी विज्ञान का लक्ष्य है। ह्यूम ने इसे स्वदेशी अनुभववादी विचारधारा माना है तथा उसने समस्त मानवीय एव मानसिक क्रियाओं को भौतिक विज्ञान द्वारा संयोजित माना है।[16]

विज्ञान की पारिभाषिकी का अध्ययन करते समय विज्ञान एव कला के सम्बन्धों के मध्य भी विभाजक रेखा खींची गई है। कला को डी० एच० लारेंस ने वस्तु सयुक्त ज्ञान क्रिया (Knowing in togetherness) तथा विज्ञान को वस्तु वियुक्त ज्ञान क्रिया (Knowing in separateness) माना है[17] इसी सिद्धान्त के आधार पर ड्यूरेल ने भी काव्य एव विज्ञान में सत्य का विश्लेषण किया है तथा उसमे विज्ञान को बौद्धिक काव्य तथा काव्य को भावात्मक विज्ञान कहा है। ड्यूरेल के अनुसार Science is the poetry of intelligence and poetry is the science of the hearts affections[18]

इस प्रकार काव्य एव विज्ञान एक दूसरे के पूरक है। एकांगी दृष्टि के कारण ये अधूरे रहकर टूट जाते है, क्योंकि विज्ञान मानव के भौतिक विकास एव सभ्यता से सम्बन्धित है और काव्य आत्मज्ञान एव संस्कृति से ऐसी स्थिति में विज्ञान एव काव्य के अन्योन्याश्रय से ही आत्मिक एव भौतिक ऐक्य स्थापित हो सकता है।

काव्य एव विज्ञान के गहन अन्तसम्बन्धों को देखने पर भी विज्ञान का विरोध किया गया और 19वीं शताब्दी में प्रख्यात शिक्षाशास्त्री लार्ड मकाले ने यहाँ तक कह दिया कि विज्ञान की प्रगति के साथ साथ काव्य का उत्तरोत्तर ह्रास अवश्यम्भावी है, क्योंकि काव्य के काल्पनिक चित्र जो मानवता के शैशव काल में सुन्दर और सत्य प्रतीत होते हैं विज्ञान के प्रखर बौद्धिक प्रकाश में निष्प्रभ तथा निरर्थक सिद्ध होते हैं।[19] लार्ड मकाले के तर्क का खण्डन प्रख्यात आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ ने किया और उसने कहा कि सहस्रों वर्षों से चन्द्रमा को देखकर के जिस रस का अनुभावन होता रहा है वही आनन्द वैज्ञानिकों द्वारा चन्द्रमा को रेत पानी और पर्वतों से आच्छादित पृथ्वी का उपग्रह मात्र मानने से मिलता है। इसलिए वैज्ञानिक

आविष्कार काव्य की ममस्पर्शिता को समाप्त नहीं कर सकते क्योंकि कविता अन्तर्मन की भावनाओं का सहज उच्छलन है।[20]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर काव्य एवं विज्ञान की अध्ययन पद्धतियों एवं प्रभावान्वितियों का पृथक्करण किया जा सकता है। किन्तु दोनों की माध्य मूलक अवधारणाओं को देखते हुए साहित्य के वैज्ञानिक अनुसंधान की अनिवार्यता तर्कसंगत प्रतीत होती है। जैसा कि कहा जा चुका है कि अनुसंधान स्वतः एक वैज्ञानिक प्रविधि है तथा अनुसंधित्सु का मूल लक्ष्य विभिन्न पद्धतियों के आधार पर काव्य के शाश्वत सत्य का उद्घाटन है, किन्तु भौतिक विज्ञान के द्वारा जिस सत्य का प्रतिपादन हो जाता है वह काव्य के सत्य से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि अन्तर्मन की प्रवृत्तियों से संगुम्फित होने के कारण काव्य का सत्य भावसत्तात्मक होता है और प्रयोगों द्वारा अनुस्यूत भौतिक विज्ञानों द्वारा जिस सत्य की प्राप्ति होती है उसका मूल आधार ज्ञान सत्तात्मक होता है। वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करते हुए दार्शनिक विमर्श रहता है कि विधि को ऐसा होना चाहिये कि सभी मनुष्य अन्त में एक ही निष्कर्ष पर पहुँचें यही विज्ञान की विधि है। इस विधि की मौलिक मान्यता है कि समस्त तत्व वास्तविक हैं और उनकी विशेषताएं भागों के उनके सम्बन्ध में दिये गये मतों पर नहीं निर्भर होती है।[21]

काव्य एवं विज्ञान के सम्बन्धों का निर्धारण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव शरीर समस्त रसों को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है और मन एवं मस्तिष्क इन्द्रियों द्वारा लायी गई बाह्य वस्तुओं को सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार वस्तु एवं व्यक्ति में एकता स्थापित की जाती है। इस मत की पुष्टि १८वीं शती के प्राणिशास्त्रियों एवं साहित्यकारों ने भी है। अनन्त सृष्टि में शाश्वत सृष्टि विधान का समन्वयात्मक रूप मस्तिष्क में निर्धारित होता है। दार्शनिकों ने इसे Thesis और Antithesis द्वारा synthesis के लक्ष्य की प्राप्ति कहा है और वैज्ञानिकों ने इन दोनों शक्तियों को मैगनेट के धनात्मक और ऋणात्मक पोल के रूप में परिकल्पित करते हुए इसे केन्द्रोन्मुख (Centripetal) और केन्द्र विमुख (Centrifugal) शक्तियाँ कहा है।[22] इनके पारस्परिक संघर्ष का नाम जीवन है तथा इस संघर्ष द्वारा प्राप्त शक्ति को ही मस्तिष्क की चेतना कहा जाता है।

हृदय एवं बुद्धि के समवाय द्वारा साहित्य सर्जना होती है। साहित्य हृदय के परिसर में रहकर भी बौद्धिकता का परित्याग नहीं करता, अपितु वैज्ञानिक अनुसन्धानों एवं दार्शनिक मान्यताओं को स्वीकार करता हुआ उनकी रसात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। बाह्य प्रकृति भावापेक्षा वैज्ञानिक तत्वों का अधिक ग्रहण करती है। कवि वैज्ञानिक प्रविधि पर आधारित प्रकृति को काव्य का विषय बनाता है। कवि की कारयित्री प्रतिभा कल्पना के माध्यम से विज्ञान द्वारा विश्लेषित प्रकृति

क सौन्दय का गम्भिलष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। इस कल्पना को ही e empla ric power कहा जाता है। इस प्रकार कल्पना एव विज्ञान दोनो वस्तु की एकता म विश्वास रखत हैं किन्तु कल्पना द्वारा सपादित वस्तु एकता अखण्ड (Organic) है तथा वज्ञानिक एकता मशीनी (machnical) है इसलिय काव्य को विज्ञान का अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एव प्रभावशाली माना गया है किन्त १८वी शताब्दी क वज्ञानिक विकास का प्रभाव समाज क विभिन्न क्षत्रा पर पडा —अथ दशन धम एव मानविकी के विभिन्न सिद्धान्तो का निर्धारण वज्ञानिक प्रविधि क अनुरूप हुआ। इसी प्रकार २०वी शती म साहित्य पर भी वज्ञानिक तत्वो का प्रभाव पड़ा तथा सत्य शिवम सुन्दरम की सकल्पना भी विज्ञान द्वारा परीक्षित हुई। ऐसी स्थिति में साहित्य एव विज्ञान एक दूसर के निकट आय तथा विज्ञान का प्रभाव साहित्य पर पडा। स्वच्छन्दतावादी कवि वडसवथ ने तो यहाँ तक कह दिया कि काव्य विज्ञान का स्फूर्तिमय तथा परिष्कृत तत्व है।[28]

साहित्यानुसन्धान १६वी शती की महत्तम उपलब्धि है। काव्य समीक्षा म प्राचीन मानदण्डो की अपेक्षा वज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियो के द्वारा कृति विशेष का विश्लेषण करके उसका निष्कष प्रस्तुत करना अनुसन्धान की मुख्य विशेषता है आधुनिक अनुसन्धान क क्षत्र म समस्त मानवीय ज्ञान क प्रारूप भौतिक विज्ञान क ऋणी हैं क्योंकि गवेषणात्मक सिद्धान्तो का जितना सुस्पष्ट एव वज्ञानिक विवेचन भौतिकी के क्षत्र म हो रहा है उतना किसी भी विधा के अन्तगत नहीं हो सका है। ज्ञान विज्ञान क अन्य क्षेत्रो की भाति साहित्य का अनुसन्धान भी वज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियो क आधार पर होना आवश्यक है इसके लिये सवप्रथम भौतिक विज्ञान की अनुसन्धान पद्धतियो का विवचन करना समीचीन प्रतीत होता है भौतिक विज्ञान की अधोलिखित पद्धतिया अनुसन्धान क क्षेत्र में व्यवहृत होती रही हैं तथा इनका प्रयोग साहित्यानुसन्धान क क्षत्र मे भी हो सकता है—

1 परिकल्पनात्मक पद्धति
2 प्रयोगात्मक पद्धति
3 विकासात्मक पद्धति
4 सांख्यिकीय पद्धति

1 परिकल्पनात्मक पद्धति—पूव चिन्तन की प्रक्रिया को परिकल्पना कहा जाता है। वज्ञानिक अनुसधान क अन्तगत यद्यपि प्रागनुभवो अनुमानो एव प्रयोग विहीन सिद्धान्तों को महत्व हीन माना जाता है किन्तु कतिपय असम्भाव्य परिस्थितियो के कारण किन्ही नवीन तथ्यो का ज्ञान प्राप्त होता है तो उसे परिकल्पना कहा जाता है। परिकल्पना मे तथ्योद्घाटन तो हो जाता है किन्तु उसकी परिभाषिकी का निर्धारण उसके प्रायोगिक परीक्षणो के उपरान्त किया जाता है। इस प्रकार

रिकल्पना में अनुसंधान की समस्त सम्भावनायें निहित हैं किन्तु परिकल्पनात्मक अनुसंधान को सैद्धान्तिक आधार नहीं प्रदान किया जा सकता। वैज्ञानिक अनुसंधान के अन्तर्गत समस्या के निर्धारण हेतु परिकल्पना को अनिवार्य माना गया है। वस्तुतः परिकल्पना रहित अनुसंधान उद्देश्य हीन होता है। भौतिकी के समस्त अनुसंधान परिकल्पना द्वारा हुए हैं। न्यूटन आर्कमिडीज इत्यादि ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उनका आधार परिकल्पना ही है। ऊपर से नीचे वस्तुओं के गिरने पर न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है वह मात्र परिकल्पना ही है। कालान्तर में प्रायोगिकी के आधार पर आइंस्टीन ने इसे पूर्ण वैज्ञानिक कहा है। वस्तुतः जब हम किसी स्थिति विशेष में पड़कर किन्हीं नवीन तथ्यों को उद्घाटित करते हैं तो तथ्योद्घाटन की प्रक्रिया को परिकल्पना माना जाता है। बार तथा स्केम्स ने परिकल्पना को अस्थायी सत्य माना है तथा इसमें पूर्ण सत्य की सम्भावना को विद्यमान माना है।[34]

वस्तुतः परिकल्पना एक अभिग्रह है जिसके ऐश्वर्य एवं प्रामाण्य का परीक्षण करने के लिये हमें प्रायोगिकी का आश्रय लेना पड़ता है। अग्नि की ज्वलनशीलता प्रथम हस्त निक्षेपण से ही प्रतीत हो गयी होगी किन्तु विभिन्न वस्तुओं के अनेक प्रयोगों के उपरान्त अग्नि के प्रज्वलन शील स्वरूप का निर्धारण हुआ होगा। इसी लिये इन दोनों के आधार पर पदार्थ की सैद्धान्तिकी का सघटन होता है। इस प्रकार परिकल्पना परिणाम नहीं अपितु परिणमिति की प्रतीति मात्र है। परिकल्पना के तीन उपादान होते हैं– इकाई (Unit) चर (Variable) मूल्य (Value)। इकाई वस्तु अथवा पदार्थ का बोध कराती है चर पदार्थ की शक्ति का परिचय देता है और मूल्य उस शक्ति के शाश्वत अभिनिवेश का परिचायक है। परिकल्पना के उपयुक्त तत्वों की व्याख्या करते हुए कर्लिंगर ने इसे द्वाधिक चर सम्बन्धों का प्रतिफल माना है।[35] परिकल्पना एवं प्रायोगिकी परस्पर परिपूरक हैं किन्तु परिकल्पना में परीक्षण क्षमता होती है और प्रायोगिकी अपरीक्षित सत्य है। परिकल्पनात्मक पद्धति का उपयोग भौतिकी की भांति साहित्य में भी होता है क्योंकि इसका ... स्रोत संस्कृति है। संस्कृति साहित्य से अभिन्न है। जब साहित्य का ... आनुव ... म पूर्व साहित्यकार की कारयित्री प्रतिभा का एक निश्चित आ...

लेता है तो उसके द्वारा उपलब्ध तथ्य परिकल्पनात्मक रूप। प्रभाव भौतिक, जैविक एवं प्राक्कल्पनाओं से भी जोड़ा जाता है किन्तु ... इस पद्धति के फलस्वरूप पदार्थ के सहायक हो सकती हैं अनुसंधान के लिये गया। नैसर्गिक प्रजनन क्षमता वंश पर कार किया जा सकता है। ... र्षण और सन्तुलन। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ... न में भी इन्हीं तत्वों का प्रभाव परिलक्षित होता है। विकास

2 प्रयोगा...
में होने वाले ... पुरातत्व शास्त्र से सम्बन्धित है क्योंकि इसमें प्रागैतिहासिक काल ... आधुनिक काल तक की मानवीय गतिविधियों का विश्लेषण किया जाता

है किन्तु नवशतर प्राणियों के जातीय संस्कारों का विश्लेषण करने के कारण इसका प्रयोग जीव विज्ञान के समग्र सिद्धान्तों के निर्धारण के लिये भी हुआ। साहित्य भी विकास की गति पर आधारित विज्ञान है। साहित्य की प्रवृत्तियाँ परम्परा एवं परिस्थितियों के प्रभाव में भी परिचालित होती हैं इसलिए जविकी की इस प्रमुख पद्धति को साहित्येतिहास की मीमांसा हेतु प्रयुक्त करना न केवल समीचीन अपितु अपरिहार्य है इसलिए विकासवादी वैज्ञानिक पद्धति को ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के अन्तर्गत विश्लेषित किया गया है।

सांख्यिकीय पद्धति—आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रायोगिक परीक्षणों को समाजोपयोगी बनाने के लिये अत्याधुनिक वैज्ञानिकों ने तीन रूपों में ग्रहीत किया है जिन्हें वान इवेन ने भौतिक क्रिया कौशल (*Physical manipulation*) चयनात्मक क्रिया कौशल (Selective manipulation) तथा सांख्यिकीय क्रिया कौशल (Statistical manipulation) नाम दिया है।[31] सांख्यिकीय क्रिया कौशल के अन्तर्गत आविष्कृत प्रयोगों का प्रभाव आकलित किया जाता है। प्रायोगिकी के माध्यम से वस्तु विशेष का निर्माण किया जाता है किन्तु सांख्यिकीय पद्धति के द्वारा उन प्रयोगों के नियोजन एवं विश्लेषण की व्यवस्था की जाती है अत्यन्त मधुर एवं सुस्वादु वस्तु भिन्न भिन्न अभिरुचि सम्पन्न व्यक्तियों के लिए आस्वादन में भिन्न दिखाई पड़ती है। प्रायोगिक परीक्षण उसके माधुर्य का अभियोपण करेंगे किन्तु सांख्यिकीय सिद्धान्त के द्वारा प्रयोग बाहुल्य के आधार पर उसकी आस्वादन क्षमता को सत्यापित किया जायेगा। वस्तुतः विज्ञान तर्क एवं कल्पना की अपेक्षा प्रमा को प्रधानता देता है। बिना प्रमाण के विज्ञान किसी परीक्षण को ग्राह्य नहीं मानता शास्त्रों में प्रमाण के चार रूपों का उल्लेख हुआ है[32] प्रत्यक्ष प्रमाण अनुमान प्रमाण आगम प्रमाण एवं उपमान प्रमाण। इनमें से आधुनिक विज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मान्यता देता है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण का सम्बन्ध सांख्यिकीय से है। उदाहरण के लिये यदि कोई औषधि व्यक्ति विशेष के लिये चिकित्सोपयोगी सिद्ध होता है तो इसे दैवी चमत्कार माना जायेगा किन्तु यदि वही औषधि बहुसंख्य प्राणियों के लिये स्वास्थ्योपयोगी हो तो इसे उस औषधि का गुण माना जायगा। सांख्यिकीय पद्धति या प्रयोग उसी गुणात्मकता की पुष्टि के लिये किया जाता है। वैज्ञानिक अनुसन्धानों में सांख्यिकीय के इसी प्रभाव का वर्णन एच० एम० वोलकर ने किया है।[33]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सांख्यिकीय पद्धति के द्वारा प्रायोगिक अभिकल्पों का प्रस्थापन होता है। प्रायोगिक अभिकल्प सांख्यिकीय *विश्लेषण के उपरान्त समाजोन्मुखी होते हैं। सांख्यिकीय पद्धति की उपादेयता का* अवलोकन करने के उपरान्त सांख्यिकीय प्रविधि का विश्लेषण आवश्यक है। अनुसन्धान कार्य सामग्री संकलन से प्रारम्भ होता है। ऐसी स्थिति में विविध आंकड़ों

प्राक्कल्पनाओं पूर्वानुमानों एवं चरों के सम्बन्ध से अनुसन्धित्सु भ्रमित हो जाता है ऐसी स्थिति में सांख्यिकीय प्रविधि के द्वारा वास्तविक तथ्यों का बोध होता है। प्रयोगात्मक दृष्टि से सांख्यिकीय की दो विधियाँ प्रयोग में आती हैं-वर्णनात्मक और अनुमानात्मक। वर्णनात्मक सांख्यिकीय पद्धति के अन्तर्गत आंकड़ों का वर्गीकरण रेखीय विवेचन एवं वक्र वितरण प्रणालियों का अंकन करते हुए केन्द्रीय प्रवृत्ति मानों का निर्धारण किया जाता है। इन्हीं मानों के द्वारा प्रयोगात्मक अभिकल्पना को सामाजिक स्वरूप प्रदान किया जाता है। आनुमानिक सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए किया जाता है। इस पद्धति के द्वारा आंकड़ों को सांख्यिकीय मानों में विभाजित करके प्राचल एवं प्रतिदर्शज दो रूपों में विभक्त किया जाता है। प्राचल पद्धति के अन्तर्गत आंकड़ों की अनुमिति के आधार पर प्राप्त तथ्यों को ही उद्घाटित किया जाता है, जबकि प्रतिदर्शजों के द्वारा प्राप्त आंकड़े एक सामान्य प्रतिमापन के अन्तर्गत मध्य मान प्रस्तुत करते हुए यादृच्छ प्रादर्शों का निर्धारण होता है। इस प्रकार सांख्यिकी प्रायोगिकी एवं उसकी प्रभावान्विति का विश्लेषित एवं नियन्त्रित करती है। इसलिये समस्त वैज्ञानिक गवेषणाओं का वास्तविक आकलन सांख्यिकीय पद्धति के आधार पर ही किया जाता है।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में सर्वेक्षणों एवं प्रयोगों को अपेक्षाकृत कम व्यवहृत किया जाता है। इसलिये सांख्यिकीय पद्धति अन्य ज्ञान विज्ञानों की तुलना में साहित्य को कम प्रभावित करती है किन्तु आधुनिक अनुसन्धित्सुओं ने वैज्ञानिक प्रविधि को इतना व्यापक और तार्किक बना दिया है कि साहित्यिक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन प्रणाली आंकड़ों से नियन्त्रित होने लगा है। इसलिए साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में भी सांख्यिकीय पद्धति की उपयोगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन क्रम में विज्ञान के ध्येय एवं वैज्ञानिक चिन्तन के मानवीय प्रभाव का विश्लेषण करते हुए तीन तथ्यों का प्रतिपादन किया जा सकता है घटकों का पूर्वानुमान, घटक निर्णय एवं घटकों का नियन्त्रण। वस्तुतः प्राकृतिक विज्ञानों एवं मानवीय घटनाओं में परस्पर सम्बन्ध हैं। वैज्ञानिक घटनाओं की प्राकल्पनाएं एवं प्रायोगिकी द्वारा निर्णीत तथ्य मानवीय व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं प्राकृतिक विज्ञानों में मनुष्येतर पदार्थों की शक्तियों का प्रत्यक्ष प्रभाव ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाना जाता है तथा निरीक्षणीय विषय को विभिन्न पद्धतियों के आधार पर सृष्टि के उपयोग के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक चिन्तन मानवीय कल्याण के लिये प्रयुक्त होकर अपनी सामाजिक उपादेयता सिद्ध कर देता है। इसलिए अनुसन्धित्सु के लिए इन पद्धतियों का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है।

२ समाज वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियाँ

मनुष्य द्वारा अर्जित सम्पूर्ण ज्ञान स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया

जा सकता है- 1 विज्ञान 2 कला। इन दोनों शाखाओं के अन्तर्गत भेद किये गये हैं। इनमें विज्ञान को दो अनुभागों में विभक्त किया जा सकता है (1) प्राकृतिक विज्ञान तथा (2) सामाजिक विज्ञान। प्राकृतिक विज्ञानों के अन्तर्गत भौतिक शास्त्र रसायन शास्त्र तथा प्राणिशास्त्र आदि आते हैं तथा सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत अर्थशास्त्र मानवशास्त्र राजनीतिशास्त्र मनोविज्ञान समाजशास्त्र आदि आते हैं। ज्ञान के इस विभाजन को निम्नलिखित चित्र से सम्यक रूपेण समझा जा सकता है
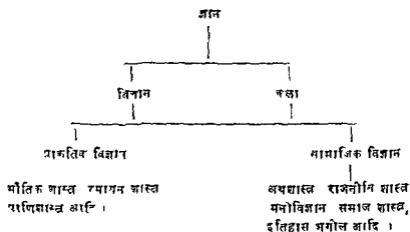
मानवीय विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक सामाजिक विज्ञानों का महत्व स्थापित करते हुए एलिस मन ने मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञानों के रूप में इसे परिभाषित किया है। सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। ये सम्बन्ध समस्त मानविकी सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित किये जाते हैं। समाज विज्ञानों के समकक्ष प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों को भी रखा जाता है। 1931 में अमेरिकन सोसियोलाजिकल सोसाइटी के अध्यक्षीय भाषण में यह घोषित किया कि अनुसन्धान पद्धतियाँ एक जैसी हैं, किन्तु समाज वैज्ञानिक पद्धतियाँ व्यक्तियों के आचरणों और क्रियाओं से ही विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। उनमें मुख्य अन्तर उनके अध्ययन की विशेष रुचि का है। अर्थात कोई सामाजिक विज्ञान मानव के पारस्परिक सम्बन्धों के एक पक्ष का अध्ययन करता है तो दूसरा पक्ष का अध्ययन करता है लेकिन सभी मनुष्य की क्रियाओं से ही सम्बन्धित होते हैं। चूंकि मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं और आचरणों का सम्बन्ध परस्पर होता है इसलिए सामाजिक विज्ञान भी परस्पर सम्बन्धित होते हैं। प्राकृतिक विज्ञानों एवं सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत विविध विषयों का समन्वय होने के कारण उनके अनुसन्धान हेतु विविध पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग एवं पर्यवेक्षण के द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्राकृतिक विज्ञानों को

वस्तुतः ये पद्धतियाँ समाज विज्ञान को पूर्ण रूपेण प्रभावित नहीं करती, ऐसी स्थिति में सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के लिये पृथक अनुसन्धान पद्धतियों के निर्माण की आवश्यकता पड़ी और सामाजिक विज्ञान की ६ पद्धतियाँ प्रकाश में आयीं–

1 गुणात्मक पद्धति
2 संख्यात्मक पद्धति
3 पुस्तकालय तथा कार्यस्थल अध्ययन पद्धति
4 प्रायोगिक तथा सार्वेक्षण पद्धति
5 विकासवादी पद्धति
6 तुलनात्मक पद्धति

1 गुणात्मक पद्धति इन पद्धतियों के अन्तर्गत विभिन्न तथ्यों का अध्ययन गुणात्मक रूप में किया जाता है। प्राचीन काल में केवल गुणात्मक पद्धतियों का ही उपयोग होता था। तर्कशास्त्र इन पद्धतियों का आधार है। विभिन्न घटनाओं का परीक्षण तथा निरीक्षण करके तर्क शास्त्र की आगमन तथा निगमन पद्धतियों के आधार पर हम विभिन्न प्रकार के निष्कर्ष निकालते हैं। गुणात्मक रीतियाँ बहुत निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित होती हैं। तथा उन्हीं सिद्धान्तों का तर्क सम्मत उपयोग विभिन्न घटनाओं में किया जाता है। विवरणात्मक साक्षात्कार वैयक्तिक अध्ययन तथा अवलोकन पद्धतियों द्वारा गुणात्मक अध्ययन किया जाता है। विवरणात्मक साक्षात्कार में सम्बन्धित लोगों से उनके अनुभव, भावनायें तथा प्रतिक्रियायें एक कहानी के रूप में सुनी जाती हैं। वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली में कुछ विशेष इकाइयों को चुनकर उनका विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा उनके आधार पर विभिन्न निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अवलोकन विधि में विभिन्न घटनाओं का गुणात्मक अवलोकन किया जाता है तथा उसके आधार पर निश्चित नियमों का निर्माण किया जाता है।

सामाजिक विज्ञानों की अनुसन्धान पद्धति में गुणात्मक विधियों का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है इसका कारण यह है कि सामाजिक तथ्य स्वभाव से अमूर्त तथा जटिल होते हैं। हम उनको जानते हुए भी उनकी निश्चित माप नहीं कर सकते हैं। सामाजिकता, रूढ़िवादिता रहन सहन के स्तर से क्या भाव व्यक्त होता है यह तो हम जानते हैं, परन्तु ठीक ठीक माप क्या है इसका अनुमान हमें नहीं हो पाता है। अतएव सामाजिक अनुसन्धान व्यक्ति प्रधान होता है तथा इसमें वास्तविक गणना का अभाव होता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान में गुणात्मक विधियों का उपयोग अधिक होता है।

2 संख्यात्मक पद्धति–इस विधि को सांख्यिकीय पद्धति भी कहा जाता है। इस पद्धति में विभिन्न तथ्यों की एक निश्चित माप होती है। साथ ही माप जहाँ

गुणात्मक विधियाँ व्यक्तिगत थोड़ी सी इकाइयों पर आधारित होती हैं वहाँ सांख्यिकीय विधियों में पर्याप्त संख्या में इकाइयों का होना आवश्यक है। सांख्यिकीय विधि की पहली शर्त यह है कि घटना को संख्यात्मक रूप से नापा जा सके। कुछ घटनायें तो ऐसी होती हैं जिनकी प्रत्यक्ष माप होती है जैसे परिवार का आकार, लोगों की आय व्यय बीमारी आदि का ब्योरा। परन्तु अन्य घटनायें ऐसी होती हैं जिनकी प्रत्यक्ष माप सम्भव नहीं होती जैसे—किसी व्यक्ति की पसन्दगी की माप या रहन सहन के स्तर की माप इत्यादि ऐसी घटनाओं को भी उचित पैमानों द्वारा मापने का प्रयास किया जा सकता है।

संख्यात्मक माप के अतिरिक्त विवेचन विधि भी सांख्यिकीय तथा तार्किक विधियों से भिन्न होती है। सम्बन्धों की खोज करने प्रवृत्तियों का पता लगाने तथा नियमों का अनुसन्धान करने के लिये हमें माध्य विचलन सह सम्बन्ध सह विचलन कारक विवेचन इत्यादि क्रियायें करनी पड़ती हैं। ये क्रियायें गणितीय हैं तथा गणित के नियमों पर आधारित हैं। सांख्यिकीय अध्ययन सामूहिक होता है तथा इकाइयों की निजी विशेषताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। वास्तव में सांख्यिकीय अनुसन्धान में व्यक्ति की कोई स्थिति ही नहीं होती है। उसमें केवल तथ्यों का ही अध्ययन होता है तथा किसी विशेष इकाई से हमारा सम्बन्ध उस तथ्य तक ही सीमित रहता है।

सांख्यिकीय विधियाँ अधिक शुद्ध तथा व्यक्तिगत प्रभाव से परे होती हैं और इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसन्धान में अधिक उपयुक्त होती हैं यदि रहन सहन के दर्जे की कोई निश्चित प्रामाणिक माप बना दी जाय फिर कोई भी एक विशेष व्यक्ति के रहन सहन के स्तर का पता लगाये तो सब लोग एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। परन्तु इस माप के अभाव में सभी लोगों की राय भिन्न भिन्न हो सकती है। यही कारण है कि सभी विज्ञानों में सांख्यिकीय विधियों का उपयोग बढ़ता जा रहा है।

आधुनिक युग के समाज वैज्ञानिक साहित्य में सांख्यिकीय विधिओं और *परिमाणात्मक विश्लेषण के वैज्ञानिक मूल्य के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी कथन* प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। सामाजिक विज्ञानों की समस्याएँ किसी भी दशा में परिमाणात्मक समस्याएं नहीं हैं।[34] दूसरी ओर समस्त सैद्धान्तिक सामाजिक विज्ञानों में ऐसे पर्याप्त सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये हैं जिनका दावा है कि केवल सांख्यिकीय विधियों के उपयोग के द्वारा सामाजिक विज्ञानों के अध्ययनों को वैज्ञानिक बनाया जा सकता है। ये समाज वैज्ञानिक स्पष्ट रूप से कार्ल पियर्सन की इस सूक्ति के समर्थक हैं कि 'मापन ही विज्ञान है।

लेकिन मैं न तो प्रो० बकर के विचार का ही समर्थन करता हूँ और न प्रो० पियर्सन की सूक्ति का। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मानव समाज की कुछ आधार

मत समस्यायें भौतिक हैं अतः उनका परिमाणात्मक रूप से विश्लेषण हो सकता है।[88] ऐसी अवस्थाओं में परिमाणात्मक विधियाँ समस्या को अधिक निश्चित शब्दों में प्रस्तुत करने में सक्षम होती हैं तथा हमें इनकी तात्विक सम्भावनाओं का संकेत भी देती हैं। उदाहरण के लिये जनसंख्या की समस्यायें मुख्यतः इसी प्रकार की हैं लेकिन मुझे यह प्रतीत होता है कि विज्ञान केवल उसी समय मापन हो सकता है जब वह वास्तविकता में उन पक्षों पर विचार करता है जो परिमाणात्मक विवरणों के अन्त गत आते हैं लेकिन आज के युग में सामाजिक विज्ञानों में सम्भवतः भ्रम या इससे बढ़कर कोई स्रोत नहीं है कि वे वियमन की भक्ति जैसे विचारों का आधानुसरण करते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हम मापक में ऊँचे चढ़ते हैं तो यह दृष्टि कोण कि विज्ञान वस्तुनिष्ठ दशाओं का परिमाणात्मक मापन है न्यूनाधिक्य व्यवहार्य हो जाता है। ऐसा इसलिये नहीं होता कि मापन बहुत अधिक कठिन हो जाता है बल्कि इसलिये होता है कि व्यक्तिनिष्ठ तत्व बहुत अधिक योगदान करते हैं। यदि व्यक्ति निष्ठ तत्व इसी प्रकार मापेय भी है और यदि यह भी सत्य है कि जिस किसी चीज का अस्तित्व है वह मात्रा या महत्ता के रूप में ही होती है फिर भी यह स्पष्ट है कि जहाँ पर व्यक्तिनिष्ठ तत्व विशेष महत्वपूर्ण योगदान करते हैं वहाँ परिशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिये मापन कम महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यह सम्पूर्ण परस्थिति के सतही पक्षों तक सीमित होता है तथा प्रक्रिया की जिस प्रकृति की खोज करनी होती है उसके उद्घाटन में असफल होता है। यह सामाजिक विज्ञानों में विशेष रूप से सत्य है। मेरे मत से तो अन्य वैज्ञानिक विधियों की तुलना में मापन विधि का प्रयोग प्राथमिक न होकर गौण है।

यदि सामाजिक विज्ञानों का वास्तविक स्थिति यही है तो यह मापन विधि के महत्व सम्बन्धी विरोधी कथनों की व्याख्या करती है। यह स्पष्ट है कि जब वियमन ने यह कहा था कि विज्ञान मापन है तब वह भौतिक विज्ञानों के मापन के सम्बन्ध में सोच रहे थे। यह सम्भव है कि जो समाज वैज्ञानिक इसी मत हैं व भौतिक विज्ञानों में मापन विधियों के विकास से अनावश्यक रूप से प्रभावित हैं। दूसरी ओर यह स्पष्ट है कि जब प्रो० प्रवर यह जोर देते हैं कि सामाजिक विज्ञानों की समस्यायें किसी भी दशा में परिमाणात्मक समस्यायें नहीं हैं तो वह सामाजिक परिस्थितियों और प्रक्रियाओं के व्यवस्थित विश्लेषण और वर्गीकरण की बात सोचते हैं। यह वर्गीकरण और विश्लेषण उस समय किया जाना चाहिये जब सांख्यिकी मापन का फलप्रद रूप में उपयोग किया जा सके।

अभी तक सामाजिक विज्ञानों में इस सांख्यिकी विधि के स्थान और महत्व की चर्चा की। पुनः इस प्रश्न को उठाने का मुख्य कारण मानव समाज की सांस्कृतिक अवधारणा की उत्पत्ति और विकास है। यह नई अवधारणा जो एक पीढ़ी पूर्व

के प्राय सम्पूर्ण सामाजिक चिन्तन के लिए अपरिचित थी, मानव के सामाजिक व्यवहार को भी वैज्ञानिक अन्वेषण की अन्य वस्तुओं के साथ प्रस्तुत करती है क्योंकि सम्पूर्ण प्रकृति में मानव संस्कृति के समान कोई अन्य वस्तु नहीं है। फिर भी सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोग यह स्पष्ट नहीं कर सके हैं कि इन विज्ञानों में सांख्यिकी विधि का मूल्य मानव समाज की प्रकृति द्वारा आवश्यक रूप में निर्धारित होता है यदि संस्कृति के अध्ययन ने उस प्रकृति की अवधारणा को असाधारण रूप से परिवर्तित किया है तो इसे समाज विज्ञानों के लिए उपयुक्त विधि की अवधारणा को भी पूर्ण रूप से परिवर्तित करना चाहिये।

लेकिन सांख्यिकीय विधि हमें दो प्रकार का ज्ञान प्रदान करता है जिसकी हमें सामाजिक कार्य के निर्देशन के लिये नितान्त आवश्यकता है। यदि सांख्यिकी विधियों का समुचित उपयोग हो तो हमें यह ज्ञान हो सकता है कि सामाजिक तथ्य क्या है और यदि हम उनको समय के विस्तार के सन्दर्भ में देखें तो यह भी विदित हो सकता है कि हमारे समाज और हमारी सभ्यता की क्या प्रवृत्तियाँ हैं इस प्रकार सांख्यिकी विधि सामाजिक सिद्धान्तीकरण के लिये तथ्यात्मक आधार प्रदान करता है और अप्रत्यक्ष रूप से यह उन सामाजिक सिद्धान्तों के लिये असाधारण योगदान कर सकती है जो सार्वभौम रूप से सत्य हैं। जैसा कि प्रो० जी० यूडी यूल कहना है—'सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी विधियों को अनिवार्य नहीं अपितु आनुषंगिक मानना चाहिये। ये उस समय अपरिहार्य होती हैं जब हम वर्तमान मानव समाज की व्याख्या के लिए सामाजिक विज्ञानों का उपयोग करने का प्रयत्न करते हैं तब हमें उन समस्त सम्भव कारणों को पूर्ण रूप से जानने की आवश्यकता होती है जो हमारे बीच में घटित होने वाली सामाजिक घटनाओं को प्रभावित करते हैं जैसे—जनसंख्या, आय, विनिमय दरें, बाजार मूल्य आदि। सांख्यिकी विधि ही वर्तमान समाज की गतिविधियों और प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में शुद्ध-शुद्ध ज्ञान दे सकती है। अतः सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी विधि की बहुत कुछ उपयोगिता है। यह ऐसी संश्लिष्ट या संयुक्त विधि है जो विश्वसनीय ज्ञान को अर्जित करने के लिये समस्त विधियों को अपने में समाहित करती है। यह विधि सामाजिक विज्ञानों के अध्येताओं तथा सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ताओं के लिये सक्षम उपकरण है।

3 पुस्तकालय तथा क्षेत्र स्थल अध्ययन-पद्धति—अनुसंधान पुस्तकालयों में पूर्व प्राप्त ज्ञान तथा पूर्व एकत्रित सूचना के आधार पर किया जा सकता है अथवा घटना स्थल पर विशेष रूप से तथ्यों का संकलन करके किया जा सकता है। दोनों पद्धतियों में विभाजन की रेखा पूर्णतया स्पष्ट नहीं है और प्रायः दोनों ही विधियों का उपयोग एक साथ किया जा सकता है। विषय का पूर्व ज्ञान करने

तथा उपकल्पना या निर्माण करने में सद्धान्तिक अथवा पुस्तकीय ज्ञान अति आव श्यक है। प्राय लोग पुस्तकीय ज्ञान को नीची निगाह से देखते हैं तथा उसे काल्प निक एव अव्यावहारिक मानते हैं। यह बहुत बडी भूल है। यदि प्रत्येक व्यक्ति साफस्लेट पर काम करे तथा पूव सचित ज्ञान से कोई सहायता ले तो किसी प्रकार की वज्ञानिक उन्नति सम्भव नही होगी। विज्ञान के विकास की दो आवश्यक शर्तें हैं। एक तो पारस्परिक सहयोग और दूसरा विज्ञान की विरासत। जो भी खोज लोगो ने की है, जिन सिद्धान्तों तथा नियमों का पता लगाया जा सका है उन्हें पुस्तकों म सचित किया गया है। आधुनिक को उनका ज्ञान आवश्यक है उसके बिना अनुसन्धान कर्ता का भ्रमित होने की सम्भावना रहती है। ज्ञान क विकास में पारम्परिक सहयोग भी आवश्यक है। पुस्तकालय अध्ययन पद्धति व अनुसरण म ही विभिन्न सम्बन्धित विज्ञानो के अनुसन्धान कर्ता एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठाते हैं छोटी छोटी समस्याओं पर अनुस धान करके उनको समन्वित करत हैं तथा उनके आधार पर नये सिद्धान्तो का निर्माण करते हैं।

स्थल अध्ययन विधि में अनुसन्धानकर्ता घटना स्थल पर जाकर निरीक्षण करता है तथा सम्बन्धित तथ्यो का सकलन करता है। सफल निरीक्षण के लिये विषय का पूव ज्ञान आवश्यक है इसके बिना अवलोकन सक्षम तथा केन्द्रित नहीं होता। इसके लिये प्राय अनुसूची का भी प्रयोग किया जाता है। इससे सूचना म प्रामाणिकता आ जाती है। स्थल अध्ययन विधि में सूचनाएँ प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा एकत्र की जा सकती है अथवा सम्बन्धित व्यक्तियों स पूछकर। जो सूचना किसी अध्ययन के लिये विशेष रूप से सकलित की जाती है उसे हम प्राथमिक सामग्री कहते हैं जो सूचना पहले से ही इकट्ठी की जा चुकी है उसे हम सकलित अथवा द्वैतीयक सामग्री कहते हैं।

4 प्रायोगिक तथा सर्वेक्षण पद्धति–अनुसन्धान की विधियों के दो और वर्गीकरण किये जा सकते हैं। प्रायोगिक विधि तथा सर्वेक्षण विधि प्रायोगिक विधि में अनुसन्धान भौतिक विज्ञानो की भांति कृत्रिम रूप से प्रस्तुत परिस्थितियों में किया जाता है। इसीलिये इस प्रयोगशाला विधि भी कहते हैं। उसे किसी भी समय उत्पन्न किया जा सकता है तथा उसके विभिन्न अगो में परिवर्तन किया जा सकता है।

सर्वेक्षण विधि में अनुसन्धान कर्ता स्वय घटना स्थल पर पहुंचता है तथा घटना उसके स्वाभाविक स्थल पर ही अध्ययन करता है। अधिकांश सामाजिक घटनायें प्रायोगिक अध्ययन के अनुपयुक्त होती हैं। अतएव सर्वेक्षण विधि का ही उपयोग किया जाता है। गुडवर्ग का कथन ध्यान देने योग्य है– सामाजिक विज्ञान वेत्ता शायद अपनी प्रयोगशाला में समाज का एक भाग कभी न ला सकेगा जहाँ वह

किसी टेस्ट ट्यूब में डालकर विभिन्न दशाओं में उसके व्यवहार का अध्ययन कर सके। अतएव एक सामाजिक घटनाओं का अध्ययन एवं अनुसन्धान उनके स्वाभाविक स्थल पर ही किया जाता है। इस प्रकार के प्रयोग को चेपिन ने स्वाभाविक प्रयोग विधि का नाम दिया है।

वस्तुतः सामाजिक विज्ञानों में विशुद्ध वस्तुनिष्ठ वैयक्तिक पर्यवेक्षण की सीमाएँ अपनी सम्पूर्ण क्षमता के साथ तथा कथित सामाजिक विज्ञानों के प्रयोग में लागू होती हैं। भौतिक वैज्ञानिक तथा भौतिक विज्ञान की विधियों के उपासक प्रायः यह बताते हैं कि केवल उपयोग की विधि के द्वारा ही सामाजिक विज्ञानों को निश्चित तथ्यों और सिद्धान्तों का आधार प्राप्त हो सकता है। फिर भी सामाजिक विज्ञानों में प्रायोगिक विधियों के प्रेम समर्थकों का आशय प्रायः उससे भिन्न होता है जो कुछ हम प्राकृतिक विज्ञानों की प्रयोगशालाओं में पाते हैं। सामान्यतः उनका इससे अधिक और कुछ आशय नहीं है सामाजिक राजनैतिक या आर्थिक क्षेत्र के कुछ नये प्रयोगों के परिणामों का सावधानी से पर्यवेक्षण किया जाय। सामाजिक विज्ञानों में प्रायोगिक विधियों के प्रसार का समर्थन करने वाले भौतिक शास्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि ऐसे प्रश्नों के समाधान के लिए प्रायोगिक विधियों का उपयोग कठिन है। सम्भवतः प्रयोग वह है जो शताब्दियों तक चलता रहता। ऐसे प्रयोग अत्याधिक कठिन हैं कि पर्यवेक्षण में बहुसंख्यक, अनियंत्रित चलते जाते हैं। लेकिन जब तक अनुभव और प्रतिकूल प्रायोगिक प्रमाण एकत्रित नहीं हो जाते हैं तब तक इन प्रश्नों को या तो विशुद्ध तर्कशास्त्र के क्षेत्र में अथवा अभिरुचियों के क्षेत्र में ही स्थान देना चाहिये।[36] यह उदाहरण स्पष्ट करता है कि वास्तव में लेखक निश्चित वैयक्तिक पर्यवेक्षण पर आधारित परिष्कृत ऐतिहासिक विधि के सम्बन्ध में सोच रहा है। प्राकृतिक विज्ञानों की तरह प्रायोगिक विधि के सम्बन्ध में कहना उचित नहीं है क्योंकि उनमें परिस्थितियों को नियंत्रित किया जा सकता है तथा चरों को प्रयोगकर्ता की इच्छा पर परिवर्तित किया जा सकता है। लेकिन सामाजिक विज्ञानों में ऐसा दशाएँ कभी भी प्राप्त की जा सकती हैं। एक अन्यत्र स्थान पर सामाजिक विज्ञानों में निश्चित परिमाणात्मक विधि के समर्थक ने यह स्वीकार किया है कि समाज वैज्ञानिक द्वारा उल्लेखनीय रूप में कोई प्रयोग करने और उनकी दशाओं को नियंत्रित करने की क्षमता सम्भवतः इतनी सीमित है कि उसे नगण्य ही कहा जा सकता है।[37] जो समाज वैज्ञानिक सांख्यिकी विधि के उत्साही समर्थक रहे हैं वे प्रायः दावा करते हैं कि इस विधि का सामाजिक विज्ञानों से अधिकांशतः वही सम्बन्ध है जो भौतिक विज्ञानों का प्रायः प्रायोगिक विधियों से है। वे ऐसा इसलिये कहते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि सांख्यिकी विधि हमें व्यापक आधार पर सामाजिक तथ्यों और शक्तियों के मापन के साधन ही नहीं प्रदान करती है। अपितु सार्वभौम चरों के सह सम्बन्धों को भी प्रदान करती है। अतः सांख्यिकी विधि तथा प्राकृतिक विज्ञानों की

प्रयोग विधि म अत्यन्त सरल सा दृश्य है। सामाजिक विज्ञानों म प्रायोगिक विधि के लिए निकटतम उपागम वह है, जिसम हम नियन्त्रित दशाओं क अन्तगत सूक्ष्म पर्यवेक्षक द्वारा सामाजिक घटनाओं का सतक अध्ययन प्राप्त कर सके।

सर्वेक्षण विधि मानव समाज क आगमनात्मक अध्ययन क लिए एक व्यापक आधार प्रदान करती है। यदि एक सामुदायिक सर्वेक्षण समुदाय की सामाजिक प्रक्रियाओ पर केन्द्रित है तो इस सम्भावित रूप म समुदाय का व्यक्ति अध्ययन कहा जा सकता है। निश्चित ही व्यक्ति-अध्ययन विधि और सर्वेक्षण विधि से सघष होन की कोई सम्भावना नही है। व्यक्ति अध्ययन विधि के समान ही सर्वेक्षण विधि सामाजिक काय कर्ताओं से ली गयी है। चौदहवी शताब्दी पूव सामाजिक काय कर्ताओं का अपन समुदायो की सामाजिक दशाओं का अधिक शुद्ध ज्ञान प्राप्त करन की व्यावहारिक आवश्यकता प्रतीत हुई थी, जिसम उन्ह सामाजिक अन्वेषण के काय क्रमो की स्थापना की प्रेरणा प्राप्त हुई और इसी का उन्होन सर्वेक्षण का नाम दिया। सबस पहला और व्यापक सर्वेक्षण सुविख्यात पिटस बग सर्वेक्षण था। इस सर्वेक्षण क पश्चात अनक बिखर हुए समुदायों में समस्त प्रकार के सर्वेक्षण जस स्वास्थ्य सर्वेक्षण शक्षणिक सर्वेक्षण-अपराध सर्वेक्षण औद्योगिक सर्वेक्षण आदि हुए। कवल सयुक्त राज्य अमरिका मे ही इसी प्रकार क लगभग 30 हजार सर्वेक्षण हो चुके हैं। यह बात स्मरणीय है कि इस प्रकार क सर्वेक्षणो के करन का आ दोलन पूण रूप से व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति क लिए ही किया गया था कि सर्वेक्षणो स सामाजिक जीवन क अध्ययन की वज्ञानिक विधि को कोई योगदान प्राप्त होगा। इतना ही नही पहले सर्वेक्षण अधिकाशत सामुदायिक जीवन क प्राय भौतिक पक्ष जस स्वास्थ्य निवास और वसन आदि तक ही सीमित थ। ये पूण रूप स स्थानीय और अस्थायी घटनाओं के अध्ययन थे तथा इनसे वज्ञानिक सामाजिक सिद्धान्त म कोई योगदान प्राप्त होन की आशा नहीं प्रतीत हुई थी।

कालान्तर म यह देखा गया कि यद्यपि सामाजिक काय कर्ताओं ने सर्वेक्षण विधि को लोकप्रिय बनाया, लेकिन किसी भी दशा म व इसके प्रथम प्रयोक्ता नही थ, अपितु यह गौरव सम्भवत क्षेत्रीय समाज वैज्ञानिकों को प्राप्त होता है। प्राचीन काल में मानव शास्त्रीय प्रयोगशाला या किसी पुस्तकालय का कायकर्ता होता था और प्राय रीति रिवाजो तथा सस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करन क लिये यात्रियो या धम प्रचारकों के विवरण पर ही विश्वास करता था। उन्नीसवीं शताब्दी क उत्त राद्ध में मानव शास्त्रियों का विकास हुआ जो केवल मुख्य रूप स क्षेत्रीय कायकर्ता ही हैं। अनक अवस्थाओं मे व सहकारी रूप में ऐसे अभियान सगठित करत थ, जिनमें किसी क्षेत्र विशेष क रीति रिवाजो, सस्थाओं विचारों विश्वासो तथा

इतिहास तक के सम्यक् विवेचन के लिए व्यापक मानव शास्त्रीय सर्वेक्षण किए जाते थे। इस प्रकार के सर्वेक्षणों में जेसप नाथ पसफिक अभियान तथा टरीज स्टेटस अभियान विशेष उल्लेखनीय हैं। इन मानवशास्त्रीय सर्वेक्षणों से उस समय विशेष महत्वपूर्ण वैज्ञानिक परिणाम प्राप्त हुए जब उनके तथ्यों की एक दूसरे के साथ तुलना की गई है।

अब यह पूर्णतः स्वीकार है कि सामाजिक विज्ञानों में सर्वेक्षण विधि उसी भावना और उन्हीं विधियों के अनुसार विकास करने योग्य है जैसे सांस्कृतिक मानवशास्त्र में इसका उपयोग होता है। वस्तुतः यह सुपरिचित तथ्य है कि मिडिल टाउन का सुविख्यात सर्वेक्षण आधुनिक क्षेत्रीय मानव शास्त्र की विधियों के द्वारा तथा उनकी भावना में किया गया था। यह सर्वे पाश्चात्य समुदाय का उल्लेखनीय सर्वेक्षण भविष्य के व्यवहारतः समस्त सामुदायिक सर्वेक्षणों के लिए एक आदर्श के रूप में स्वीकार किए जाने योग्य है। फिर भी इस सर्वेक्षण का आधार भी बहुत संकुचित है। लेकिन समुदाय के वैज्ञानिक व्यक्ति अध्ययन के रूप में जो कुछ भी है उसमें यह सर्वेक्षण पद्धति सर्वश्रेष्ठ उदाहरण के रूप में है।

सामाजिक विज्ञानों में जिस प्रकार से किये गये सर्वेक्षणों की आवश्यकता है वैसे क्षेत्रीय सर्वेक्षणों की तुलना में लघु समुदायों के सर्वेक्षण नहीं होते हैं। कारण यह है कि समाज वैज्ञानिकों के सर्वेक्षण क्षेत्र इतने बड़े नहीं होते हैं जितने की प्राकृतिक वैज्ञानिक या मानव शास्त्री के होते हैं। यदि ऐसा किया जाता तो बहुमूल्य वैज्ञानिक तथ्य प्राप्त हो सकते थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों की राष्ट्रीय जनसंख्या गणना के कार्यों से यह विदित हुआ है कि सर्वेक्षण पद्धति केवल राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक प्रयोग की जा सकती है। वस्तुतः सर्वेक्षण पद्धति के इस प्रकार के विकास में सांख्यिकीय परिशुद्धता पर विशेष जोर देना चाहिए। सांख्यिकीय का संकलन और तुलना करना सर्वेक्षण विधि का एक अंग हो जाता है।

5. विकासवादी पद्धति—विकासवादी पद्धति को ऐतिहासिक पद्धति भी कहते हैं। इस पद्धति के द्वारा किसी घटना के विकास का इतिहास जानने का प्रयत्न किया जाता है और इस प्रकार अनेक रूपों से अन्तर्निहित एकता का पता लगाते हैं। इस पद्धति का आधार यह है कि बहुत सी घटनाओं का प्रारम्भ साथ साथ एक ही मूल स्रोत होता है परन्तु विकास की भिन्न भिन्न परिस्थितियों में पड़कर उनमें अन्तर आ जाता है। यदि उनका इस प्रारम्भिक एकता का पता लग जाय तो उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। इस पद्धति का उपयोग सर्वप्रथम तुलनात्मक भाषा विज्ञान में 18वीं शताब्दी में किया गया। डार्विन का प्रसिद्ध विकासवादी सिद्धान्त भी इसी पद्धति पर आधारित है।

विकासवादी पद्धति का उपयोग उन्हीं तथ्यों में किया जा सकता है जो एक क्रमिक विकास के फलस्वरूप होते हैं। इसके दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं।

1 उन युगों अथवा स्तरों की खोज करना जिनसे तथ्य का विकास हुआ है।

2 एक स्तर से दूसरे स्तर पर होने वाले परिवर्तनों का कारण बतलाना तथा विकास क्रम स्थिर करना। सामाजिक रीतियों तथा परम्पराओं के विकास तथा मानव शास्त्र के अध्ययन में यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी है।

6 तुलनात्मक पद्धति–यह पद्धति विकासवादी विधि से बहुत कुछ मिलती जुलती है तथा कहीं कहीं तो दोनों का उपयोग एक दूसरे के स्थान पर भी होता रहता है। परन्तु वास्तव में दोनों प्रणालियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। विकासवादी प्रणाली में अनुसंधान कर्ता किसी तथ्य के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करता है। इस प्रकार उसमें होने वाले परिवर्तनों तथा उस पर पड़ने वाले प्रभाव का पता उसे लग जाता है। इसी आधार पर वह भविष्य में होने वाले परिवर्तनों के लिये किसी नियम का निर्माण भी कर सकता है।

तुलनात्मक विधि में विभिन्न वर्गों के साथ उसकी तुलना भी की जाती है। उदाहरण के लिए किसी जाति में पाई जाने वाली परम्पराओं के ऐतिहासिक अध्ययन से उनके मूल स्वरूप का पता लग जाता है तथा इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कोई दो जातियाँ आरम्भ में एक स्थान से शुरू हुई अथवा नहीं। परन्तु इस विकास क्रम में हमें इस बात का पता नहीं लग पाता कि विभिन्न जातियों के रीति रिवाजों में भिन्नता क्यों आ गई उन्हें प्रभावित करने वाले कौन से तत्व थे। विज्ञान के समुचित विकास तथा वैज्ञानिक नियमों की रचना के लिये इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी ही नहीं अनिवार्य भी है। अतएव वैज्ञानिक विकास की स्थिति प्राप्त करने पर प्रत्येक विज्ञान में तुलना आवश्यक होती है। इसीलिए ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में तुलनात्मक पद्धति का उपयोग होता है जैसे तुलनात्मक धर्म, तुलनात्मक मनोविज्ञान, तुलनात्मक दर्शन तुलनात्मक समाज शास्त्र आदि। यह तुलना विभिन्न वर्गों के बीच ही नहीं बल्कि विभिन्न विज्ञानों के बीच भी हो सकती है जैसे एक विज्ञान के नियमों की दूसरे विज्ञान के नियमों से तुलना।

सामाजिक विज्ञानों और प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों में भिन्नता–जहाँ तक पद्धतियों की भिन्नता का प्रश्न है तो प्रत्येक विज्ञान की पद्धति में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है। मूलतः विज्ञान का स्वभाव एक सा होता है। यहाँ सामाजिक विज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान की पद्धतियों की भिन्नता का निरूपण आवश्यक होगा।

1 तटस्थता का अभाव–सामाजिक विज्ञान में समाज वैज्ञानिक अपने अध्ययन की विषय वस्तु को संकलित करने और उसका पर्यवेक्षण करने में तटस्थता का पालन नहीं कर पाता है जबकि प्राकृतिक विज्ञान की पद्धति में तटस्थता का पालन करना अनिवार्य होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि समाज वैज्ञानिक व प्रयोग के साधन मनुष्य होते हैं। चूंकि वह स्वयं मनुष्य होता है इसलिये वह सामाजिक सम्बन्धों से निरन्तर सम्बन्धित बना रहता है। प्राकृतिक विज्ञान का सम्बन्ध समाज से न होकर निश्चित यन्त्रों की प्रक्रिया पर आधारित होता है अतः उसे तटस्थ रहना पड़ता है।

2 प्रयोगशाला का अभाव–सामाजिक विज्ञान की पद्धति में प्रयोगशाला की आवश्यकता अनिवार्य नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण मानव समाज या सम्पूर्ण प्रकृति ही इसकी प्रयोगशाला होती है लेकिन प्राकृतिक विज्ञान की पद्धति में कृत्रिम प्रयोगशाला आवश्यक है। प्रयोगशाला के अभाव में प्राकृतिक वैज्ञानिक निरस्त हो जाता है।

3 विषय सामग्री मापन की असमर्थता–सामाजिक विज्ञानों में विषय सामग्री मापने के लिये कोई निश्चित मापदण्ड नहीं होता है जबकि प्राकृतिक विज्ञान की विषय सामग्री को मापने के लिये अनेक यंत्रों का निर्माण हो चुका है जिनके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों की भी माप हो जाती है।

4 तथ्यों का अभाव–सामाजिक विज्ञानों में तथ्यों की निश्चितता सन्देहास्पद रहती है जबकि प्राकृतिक विज्ञानों के तथ्य अधिकांशतः निश्चित होते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान तथ्यात्मक एवं सामाजिक विज्ञान अतथ्यात्मक कहा जा सकता है।

5 परिणामों की अभिव्यक्ति का अन्तर–सामाजिक विज्ञान की पद्धति में परिणामों को ऐसी भाषा में प्रस्तुत किया जाता है, जिनको जनसाधारण सरलतापूर्वक समझ लेता है अर्थात सामाजिक विज्ञान व्यवहारिक अधिक होता है लेकिन प्राकृतिक विज्ञान का व्यवहारिक महत्व बहुत कम हो जाता है, क्योंकि यह अपने परिणामों को ऐसी भाषा में प्रस्तुत करता है, जिसे उस विज्ञान में निष्णात व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति के लिए बोधगम्य नहीं होता है।

समाज विज्ञान के अंतर्गत दर्शन और मनोविज्ञान भी सम्मिलित हो जाते हैं परन्तु उनके अनुसंधान की पद्धति में कुछ भिन्नता है। इसी प्रकार मार्क्सवाद की पृथक अवधारणा है और उसी क्रम में मार्क्सवादी अनुसन्धान होता है जो स्वयं में एक पद्धति है। अतः उनकी पद्धतियों का विवेचन पृथक रूप से किया गया है।

(क) मार्क्सवादी अनुसन्धान पद्धति – अनुसंधान के क्षेत्र में मार्क्सवादी चिन्तन पद्धति को भी आधुनिक युग में मान्यता प्राप्त हुई। कार्लमार्क्स द्वारा

प्रतिपादित मार्क्सवादी दर्शन एक भौतिकवादी दर्शन है जो परम्परागत भाववादी दर्शन की अमूर्त और आध्यात्मिक स्थापनाओं के विरोध में संस्थापित हुआ। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगेल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को भौतिकवादी चिन्तन के सन्दर्भ में ग्रहण कर सर्वहारा वर्ग के रक्षक के रूप में मार्क्सवादी 19वीं शताब्दी में प्रमाणित हुआ। इसके प्रवर्तन का श्रेय महान चिन्तक कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगिल्स को है। दर्शन में मार्क्सवाद द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद है राजनीति के क्षेत्र में उसे साम्यवाद की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में उसे हिन्दी में जो साहित्यिक नाम दिया गया वह प्रगतिवाद है। मार्क्सवादी कला चिन्तन के मुख्यतः तीन आधार हैं—

1. द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद
2. मूल्यवृद्धि का सिद्धान्त
3. मानव सभ्यता के विकास की व्याख्या।

भौतिक विकासवाद को परिचालित करने वाली प्रवृत्ति का नाम द्वन्द्वात्मक है। दो विरोधी शक्तियों के संघर्ष से तीसरी शक्ति का आविर्भाव होता है आगे चलकर तीसरी वस्तु को चौथी वस्तु से संघर्ष करना पड़ता है। इसी क्रम से भौतिक जगत में नई वस्तुओं, नये रूपों, नई शक्तियों और सत्ताओं का विकास होता रहता है।[38] स्टालिन के शब्दों में ये द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसलिये कहा जाता है कि प्राकृतिक घटनाओं को देखने परखने और पहचानने का इसका ढंग द्वन्द्वात्मक है और इन प्राकृतिक घटनाओं की इसकी व्याख्या धारणा एवं सिद्धान्त विवेचन भौतिकवादी है।'[39] द्वन्द्ववादी धारणा के अनुसार समस्त जड़ और चेतन प्रकृति निरन्तर विकास एवं परिवर्तन की प्रक्रिया है। परिवर्तन शीलता प्रकृति का प्रधान लक्षण है। प्रकृति की इसी गतिशीलता को ध्यान में रखते हुए एंगिल्स ने द्वन्द्ववाद की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'Dialectics is nothing more than the science of the general laws of motion and development of nature human society and thought'[40]

कार्लमार्क्स ने विश्वसभ्यता के विकास में एक नई व्याख्या प्रस्तुत की जिसने यह स्वीकार किया है कि मानव सभ्यता का समस्त इतिहास शोषक एवं शोषित वर्गों की कहानी रहा है। इसी के आधार पर विश्व सभ्यता के विकास को चार युगों में विभाजित किया दास प्रथा, सामन्ती प्रथा पूँजीवादी व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्था। इसी विचारधारा को कार्लमार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की संज्ञा से विभूषित किया है।

मूल्य वृद्धि के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कार्लमार्क्स ने उत्पत्ति के चार अंग निर्धारित किये हैं—मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य वृद्धि। इन

चार वर्गों द्वारा किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है। इस प्रकार मार्क्स की समस्त चिन्तन इन तीन तत्वों पर आधारित है।

मार्क्सवादी अनुसन्धायक ये तथ्य स्वीकार कर चलता है कि किसी साहित्यिक या कलात्मक कृति में सर्वहारा या श्रमिक वर्ग का ही चित्रण होना चाहिये। और उसी के आधार पर कृति का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। वर्गहीन कला का मापदण्ड मानव की सेवा होगा। मार्क्सवादी अनुसन्धायक ऐतिहासिक भौतिकवादी पद्धति को काव्य या साहित्य में इस रूप में ग्रहण करता है कि वह जनसामान्य के कितने अधिक निकट है और साहित्यकार ने सर्वहारा वर्ग के प्रति कितनी अधिक सहानुभूति प्रदर्शित की है। इसी आधार पर मार्क्सवादी अनुसन्धायक किसी साहित्य के मूल्यांकन के लिये सामाजिक वैषम्य को परखता है। क्योंकि भौतिकवाद उन जड़ों को उस समाज और परिस्थिति में खोजता है जिससे स्वयं प्रणेता का मन भी प्रेरित होता है। प्रख्यात मार्क्सवादी समीक्षक डा० राम वर सिंह ने इस सन्दर्भ में यह स्पष्ट किया है कि समाज ने साहित्य को उत्पन्न किया है साहित्य ने समाज को नहीं इसलिये साहित्य का इतिहास समझने के लिये समाज का ज्ञान आवश्यक है।[41]

मार्क्सवादी अनुसन्धित्सु ऐतिहासिक संदर्भों के अतिरिक्त सामयिक साहित्य के मूल्यांकन हेतु जिस पद्धति का अनुगमन करता है उसका आधार द्वन्द्वात्मक होता है। उसके अनुसार प्रत्येक चरित्र मात्र व्यक्ति ही नहीं अपितु वर्ग का प्रतिनिधि भी होता है। ऐसी स्थिति में मार्क्सवादी विचार सरणि के अन्तर्गत वर्ग की उपेक्षा करके साहित्य को व्यक्ति विशेष के जीवन से सम्बद्ध रखना अथवा काल्पनिक जगत का चित्रण करना सर्वहारा वर्ग की उपेक्षा माना जाता है। इस भाव जगत् के चित्रण की अपेक्षा यथार्थ के धरातल पर चित्रण का द्वन्द्वात्मक पद्धति का ग्रहण और उसके सन्दर्भ में सृष्टि तथा प्रकृति के आधारभूत विकास नियमों का पहचानने का प्रयास ही द्वन्द्वात्मक पद्धति का मूल आधार है।[42]

मार्क्सवादी अनुसन्धित्सु काव्य या साहित्य का मूल्यांकन करने के निमित्त द्वन्द्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद की पद्धतियों का आश्रय तो लेता है लेकिन वह यह मानकर चलता है कि साहित्य का भी सामाजिक उत्तरदायित्व है और वह दायित्व केवल श्रुति स्मृति, सदाचार की रक्षा करने का दायित्व नहीं है केवल पददलित श्रेणी विशेष द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श के अनुगमन का दायित्व नहीं है वरन समाज के ढाँचे को आमूल बदल देने का दायित्व है।[43]

समग्र विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मार्क्सवाद एक भौतिकवादी दर्शन है जो काव्य कला के मूल को भी मानव जीवन के भौतिक विकास की सापेक्षता में ही देखने और समझने में विश्वास करता है।[44] मार्क्सवादी

अनुसन्धान पद्धति को उपयुक्त विवेचित दृष्टिकोण के आधार पर समझना अधिक औचित्य पूर्ण होगा।

(ख) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धति—मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में अनुसन्धित्सु काव्य सर्जन की चार अवस्थाओं का अध्ययन करता है जो कवि और उसके काव्य से सम्बन्धित हैं। 1 काव्य सृष्टि के मूल में निहित भाव 2 सामान्यीकरण 3 कवि की अनुभूति और कल्पना का मिश्रण 4 अभिव्यंजना व्यापार (शब्द तत्व का समावेश) इन चार अवस्थाओं के माध्यम से हम कवि और उसके काव्य का अध्ययन करते हैं।[45] इन चारों तत्वों का सम्बन्ध मनोविश्लेषणवादी विचारधारा से है जो काव्य या साहित्य अनुसंधान के क्षेत्र में एक नवीन विचार धारा प्रस्तुत करता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की साहित्य में आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि हम यह मानकर चलते हैं कि साहित्य सर्जन या उसकी रचना प्रक्रिया मन व्यापार से सम्बन्धित है। कोई भी काव्य कृति सामान्य रूप से कलाकार की अचेतन अवचेतन या अर्द्ध चेतन कल्पना शक्ति का परिणाम है। इसलिये अनुसन्धान के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है।

भारतीय काव्य शास्त्र में यद्यपि काव्य और मनोविज्ञान के सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है तथापि काव्य के उद्देश्य का विवेचन करते समय इसका सम्बन्ध मनोविज्ञान से जोड़ा गया है।[46] वस्तुतः काव्य का सम्बन्ध भाव से है और भाव मानसिक व्यापार है। जब मानव मन की अनुभूतियाँ, चेष्टाएँ अथवा दैहिक गतियाँ अभिव्यक्त होकर बाह्य जगत से सम्बन्धित होती हैं तो यहीं मनोविज्ञान का जन्म होता है। इस प्रकार मनोविज्ञान मानव के अन्तः दर्शन एवं बाह्य गतिविधियों के समन्वय की चेष्टा करता है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने भी स्नायुव्यतिक्रम के कारण ही मनोविज्ञान का जन्म माना है। इस क्रम में फ्रायड ने मन को तीन भागों में विभाजित किया है 1 अचेतन 2 अवचेतन 3 चेतन। इनमें काव्य की दृष्टि से अवचेतन मन का विशेष महत्व है। प्रत्येक मानव की दमित एवं निष्क्रिय चेष्टायें अचेतन में पड़ी रहती हैं। कालान्तर में यही चेष्टाएं उदात्तीकृत होकर कला में अभिव्यक्त होती हैं।[47]

इस प्रकार काव्य कला एवं मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस दृष्टि से प्रख्यात मनोविश्लेषक युंग की मान्यतायें अधिक तर्क सगत हैं। युंग के अनुसार मनोविज्ञान कला के सम्बन्ध में जो भी तथ्य निर्दिष्ट करे वे कलात्मक प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया तक ही सीमित होंगे और उनका कला की अन्तरतम प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।[48]

काव्य एवं मनोविज्ञान के उपयुक्त अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को देखते हुए

काव्य के मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान की अनिवार्यता समीचीन प्रतीत होती है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का विकास आधुनिक काल में हुआ है, किन्तु विभिन्न मान्यताओं के आधार पर पूर्ववर्ती रचनाओं का अनुशीलन मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों के द्वारा हो सकता है। मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के विकास की दृष्टि से अभी तक निश्चित मान्यतायें नहीं बनाई जा सकी हैं, किन्तु मनोविज्ञान के क्षेत्र में जिन प्रमुख सम्प्रदायों का प्रवर्तन हुआ है उन्हीं के आधार पर मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों का निर्माण हो सकता है। मनोवैज्ञानिक चिन्तकों के चार प्रमुख सम्प्रदाय हैं—

1 मनोविश्लेषणवाद (जन्म 1900 आस्ट्रेलिया, फ्रायड)
2 प्रयोजनवाद (1908 ब्रिटेन डयूई एंजेल एवं हार्वेकार)
3 व्यवहारवाद (1912 अमरिका बी० वाटसन)
4 आकृतिवाद (1912 जर्मनी एडवर्ड ब्रेडफाड टिचनर)

इन सम्प्रदायों के आधार पर अनुसन्धान पद्धतियों का निर्माण किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का सर्वप्रथम निर्धारण हर्बर्ट इगेरेट ने किया और उसने स्टम्प इन साइन्टिफिक रिसर्च के अन्तर्गत प्रयोगात्मक निरीक्षणात्मक एवं इतिवृत्तात्मक अथवा चिकित्सकीय पद्धति का निर्माण किया। निरीक्षणात्मक पद्धति के भी कालान्तर में तीन भेद किये गये। 1 प्रक्रिया में 2 अनुमानात्मक एवं 3 साहित्यकाय।

उपर्युक्त विवेचन क्रम में यद्यपि मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का उल्लेख किया गया है किन्तु साहित्यानुसन्धान की दृष्टि से यह आनुषंगिक नहीं प्रतीत होती क्योंकि साहित्येतिहास की परिवर्तित परिस्थितियों में अनुसन्धान पद्धतियों का अवमूल्यन होता रहता है इसलिए साहित्य के विवेचन हेतु हमें मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान के शाश्वत सिद्धान्तों के आधार पर साहित्यानुसन्धायिनी तथ्य दृष्टि का निर्माण करना होगा।

समग्र विवेचन के आधार पर मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान का अद्योलिखित पद्धतियों का निर्माण किया जा सकता है—

1 सरचनात्मक पद्धति
2 प्रयोजनात्मक पद्धति
3 प्रयोगात्मक पद्धति
4 मनोविश्लेषणात्मक पद्धति।

1 संरचनात्मक पद्धति—संरचनात्मक पद्धति के अन्तर्गत व्यक्तित्व के विभिन्न अवयवों के गतिशील अन्तःसम्बन्धों उनकी संयोजनाओं एवं प्राकृतिक साहचर्य का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है। कलर गेस्टाल्ट ने यह सिद्ध किया है कि

यदि विश्लेषण के समय व्यक्ति एव समाज लोगों का अन्तसम्बन्ध स्थापित करते हुए प्रस्थापन कराया जाय तो व्यक्ति की मानसिक सकल्पनाओं का समुचित विवेचन किया जा सकता है।[48] साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में इस पद्धति का विशेष महत्व है क्योंकि साहित्य का अनुशीलन करते समय हमें व्यक्तित्व की अपेक्षा साहित्यकार तथा तद्युगीन समाज का सम वयात्मक अनुशीलन करना पडता है।

2 प्रयोजनात्मक पद्धति–प्रयोजनात्मक पद्धति का निर्माण मक्डागल की शरीर वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर किया जा सकता है। उन्होंने द इनर्जीज आफ मैन में स्पष्ट किया है कि भौतिक जगत् की सम्पूर्ण प्रकृति है और जो कुछ भी प्राकृतिक है। वह सब भौतिक है इसीलिए उन्होंने मनोविज्ञान को अन्तर निरीक्षण की एकविधि माना है। प्रयोजनात्मक पद्धति के अन्तगत यद्यपि अन्य विधियों का भी उपयोग होता है किन्तु इनमें मानव के समस्त व्यवहारों को सामाजिक एव राष्ट्रीय सबधो के परिप्रेक्ष्य में आकलित किया जाता है। वस्तुत मानव के समस्त व्यवहार किसी लक्ष्य पर आधत रहते हैं। इन निसग वृत्तिक लक्ष्यों की प्राप्त करने के निय किये गये समस्त मनोप्रयत्नों को प्रयोजनात्मक पद्धति के अन्तगत समाहित किया जाता है।[50] साहित्य में इस पद्धति का उपयोग भाव ग्रन्थियों (स्थायीभाव) के विवेचन के लिये किया जाता है।[51]

3 प्रयोगात्मक पद्धति–प्रयोगात्मक अनुसंधान पद्धति ही सर्वाधिक वैज्ञानिक पद्धति है। प्रयोगवादी पद्धति के निर्माण के मूल में लायड जाज डार्विन और थार्नडायक के व्यवहारवादी एव विकासवादी सिद्धान्त सन्निहित हैं। प्रयोगात्मक पद्धति के अन्तगत काय कारण सम्बन्ध (Cause and effect relation) की व्याख्या की जाती है। प्रख्यात समाजशास्त्री चैपिन ने इस पद्धति के विवचन क्रम में यह स्पष्ट किया है कि नियन्त्रित दशाओं में किये गये निरीक्षण ही प्रयोग है।[52] प्रयोगात्मक पद्धति के अन्तगत यान्त्रिक एव आनुभविक परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध किया जाता है कि कोई वस्तु भविष्य के लिये कितनी उपयोगी होगी साहित्य अनुसंधान के अन्तगत प्रायोगिक पद्धति द्वारा तथ्यों का सत्यापन करते हुए साहित्य का वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार प्रायोगिक पद्धति साहित्य की वश्लेषिकी एव सद्धान्तिकी का विनिश्चय कराती है।

4 मनोविश्लेषणात्मक पद्धति–मनोविश्लेषण का जन्म मानसी पचार के अन्तगत चिकित्सकीय विधि से हुआ। इसके अन्तगत मानसिक प्रक्रियाओं के अनुसन्धान द्वारा व्यक्ति के अचेतन का अध्ययन किया जाता है। इसके प्रवतक फ्रायड हैं। फ्रायड ने मनोविश्लेषण के तीन स्तरों की कल्पना की है अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं के अस्तित्व की मान्यता प्रतिरोध और दमन के सिद्धान्त का अंगीकरण तथा काम और ईडिपस ग्रन्थि के महत्व की स्वीकृति।[53] इस प्रकार मनोविश्लेषणवाद

के अन्तर्गत अचेतन मस्तिष्क का विशेष महत्व है। फ्रायड ने चेतनमन के समस्त कार्य व्यापारों के प्रेरणा स्रोत के रूप में अचेतन मन को महत्व दिया है।[84] मनोविश्लेषण के अन्तर्गत सम्मोहन एवं विरेचन की औपचारिक (Clinical) पद्धति का विवेचन करते हुए फ्रायड ने यह सिद्ध किया कि भावशक्ति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति हेतु नैसर्गिक विकास के लिये अचेतन मन स्वयं क्रियाशील हो उठता है और अन्तर्मन की पीड़ा से व्यथित को सम्मोहन के द्वारा प्राप्त कष्टों से छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार मनोविश्लेषण को चिकित्सा के क्षेत्र तक सीमित रखा गया।

कालान्तर में फ्रायड के इन्हीं मनोविश्लेषकों के आधार पर साहित्यानुसन्धान की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का विकास हुआ। इस पद्धति का संकेत फ्रायड ने 'कलक्टेड पेपर्स' में स्वयं दे दिया था। फ्रायड के अनुसार लेखक वही करता है जो बच्चा खेल में करता है, वह अतिकल्पना का जगत बनाता है और उसे गम्भीर भाव से ग्रहण करता है ... इस कल्पनात्मक काव्य जगत की अवास्तविकता का साहित्यिक प्रविधि पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है बहुत सी ऐसी बातें हैं जो वास्तविक जीवन में घटित होने पर आनन्द नहीं देतीं किन्तु अभिनय में उनसे आनन्द लाभ होता है।[85]

फ्रायडीय सिद्धान्तों का पुनरीक्षण कालान्तर में युग द्वारा किया गया। युग ने भी साहित्य के क्षेत्र में मनोविश्लेषकों का महत्व प्रतिपादित करते हुए एक नवीन विचार सरणि का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि सामाजिक उपचेतन में केवल वैयक्तिक तत्वों की ही समाहिति नहीं होती अपितु वंशानुगत तत्व भी अचेतन में सक्रमित होते रहते हैं। मनोविश्लेषण एवं काव्य कला के सम्बन्ध का पुनर्स्थापन करते हुए युग ने स्पष्ट किया है कि कृतिकार अभिव्यक्ति के क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र है। उसकी सर्जनात्मक प्रक्रिया का वस्तु में समीकरण हो जाता है और कृतिकार अपने अन्तरतम की प्रकृति को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार कृतिकार के कृतित्व के मूल्यांकन हेतु हम उसकी अन्तःप्रज्ञा एवं सम्वेदन का अनुशीलन करना पड़ता है, क्योंकि कृतिकार का कार्य चेतन दृष्टिकोण को दिशा और गुण प्रदान करना है।[86]

साहित्येतिहास के अन्तर्गत मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अध्ययन हेतु किया जाता है क्योंकि कवि व्यक्तित्व कवि की आत्माभिव्यक्ति काव्य की विभिन्न स्थितियाँ एवं काव्य प्रतीकों के विवेचन हेतु इस पद्धति का प्रयुक्त करना न केवल उपयोगी है वरन वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वथा नवीन एवं प्रभावोत्पादक है। वस्तुतः लेखक और मनोविश्लेषक परस्पर परिपूरक हैं। ऐसी स्थिति में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में अप्रतिम महत्व है।

१ दार्शनिक अनुसन्धान पद्धति

दर्शन की अवधारणा–दर्शन शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है–'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिससे देखा जाय। अब प्रश्न उठता है कि कौन पदार्थ देखा जाय ? दर्शनशास्त्र इसका उत्तर देता है कि वस्तु का सत्य स्वरूप देखा जाय। इस प्रकार अनुभूति, तर्क और युक्ति संगत व्याख्याओं के द्वारा किसी वस्तु का यथार्थ (पारमार्थिक) ज्ञान प्राप्त करना दार्शनिक चिन्तन का उद्देश्य है। अनुभूतियाँ द्विविध होती हैं–ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय। इन दोनों का अध्ययन दर्शन के अन्तर्गत आता है। परन्तु वस्तु की वास्तविक सत्ता का हस्तामलकवत् अपरोक्ष ज्ञान अतीन्द्रिय (आध्यात्मिक) अनुभूति के द्वारा ही सम्भव है। केवल ऐन्द्रिय अनुभूति भ्रमात्मक एवं यथार्थ रहित होती हैं।

दर्शन का अर्थ 'ज्ञान के प्रति प्रेम' होता है। दर्शन वह प्रयास है जिससे हम वास्तविकता के तात्त्विक चिन्तन पर पहुँचते हैं। समस्त भौतिक पदार्थ दिशायें, काल कार्य कारण सम्बन्ध इसके अन्तर्गत आते हैं। अतः दर्शन को हम वस्तुओं के सम्यक् विचारणीकरण की कला कह सकते हैं।[57] सभी वस्तुओं को तर्कपूर्ण विधि पूर्वक तथा लगातार विचारने की कला ही दर्शन है। प्लेटो के मत से दर्शन स्पष्ट प्रयत्नों पर पहुँचने का अनवरत प्रयत्न मात्र है इसमें पदार्थ, दिक् काल, कार्य कारणत्व विकास यन्त्रवाद, प्रयोजनवाद, जीवन, आत्मा, ईश्वर अथवा ब्रह्म, उचित व अनुचित, भलाई व बुराई, सौन्दर्य तथा कुरूपता इत्यादि के प्रचलित वैज्ञानिक प्रत्ययों की परीक्षा तथा व्याख्या की जाती है। प्रत्ययों का स्पष्टीकरण ही दर्शन का कार्य है प्रत्ययों का आलोचनात्मक विश्लेषण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अन्वेषण ही दर्शन है।[58]

यह प्रचलित तथा वैज्ञानिक प्रत्ययों का विश्लेषण करता है। बुद्धि के प्रकाश में उनकी मान्यता की परीक्षा करता है तथा उन सबका पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करता है। दर्शन जगत् के दिग्दर्शन का बुद्धिवादी प्रयत्न है। समग्र वास्तविकता का संक्षिप्त दर्शन इसका प्रयास है। दर्शन का लक्ष्य एकांगी न होकर बहुमुखी होता है। सामान्य रूप से अगर देखा जाय तो पता चलता है कि विभिन्न विज्ञानों का सम्बन्ध सख्याओं तथा अंकों से होता है। भौतिक विज्ञान में गर्मी प्रकाश गति शब्द, विद्युत तथा आकर्षण का अध्ययन किया जाता है। रसायन विज्ञान प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन विज्ञानों में जगत् का एक पक्षीय अध्ययन निहित होता है, लेकिन दर्शन विज्ञान सर्वपक्षीय अध्येता है, क्योंकि यह बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न है, इसमें सत्यनिष्ठ यथार्थ का ज्ञान समाहित होता है। दर्शन की अपनी अध्ययन और अनुसंधान की विशिष्ट पद्धति होती है। इसकी पद्धति में विभिन्न विज्ञानों के उच्चतम निष्कर्षों का, समाहार

के अन्तर्गत अचेतन मस्तिष्क का विशेष महत्व है। फ्रायड ने चेतनमन के समस्त कार्य व्यापारों के प्रेरणा स्रोत के रूप में अचेतन मन को महत्व दिया है।[64] मनोविश्लेषण के अन्तर्गत सम्मोहन एवं विरेचन की औपचारिक (Clinical) पद्धति का विवेचन करते हुए फ्रायड ने यह सिद्ध किया कि भावशक्ति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति हेतु नैसर्गिक विकास के लिए अचेतन मन स्वयं क्रियाशील हो उठता है और अन्तर्मन की पीड़ा से व्यथित को सम्मोहन के द्वारा प्राप्त कष्टों से छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार मनोविश्लेषण को चिकित्सा के क्षेत्र तक सीमित रखा गया।

कालान्तर में फ्रायड के इसी मनोविश्लेषिकी के आधार पर साहित्यानुसन्धान की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का विकास हुआ। इस पद्धति का संकेत फ्रायड ने कलेक्टेड पेपर्स में स्वयं दे दिया था। फ्रायड के अनुसार सर्जक वही करता है जो बच्चा खेल में करता है, वह अतिकल्पना का जगत बनाता है और उसे गम्भीर भाव से ग्रहण करता है इस कल्पनात्मक काव्य जगत की अवास्तविकता का साहित्यिक प्रविधि पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है बहुत सी ऐसी बातें हैं जो वास्तविक जीवन में घटित होने पर आनन्द नहीं देती किन्तु अभिनय में उनसे आनन्द लाभ होता है।[65]

फ्रायडीय सिद्धान्तों का पुनरीक्षण कालान्तर में युग द्वारा किया गया। युग ने भी साहित्य के क्षेत्र में मनोविश्लेषिकी का महत्व प्रतिपादित करते हुए एक नवीन विचार सरणि का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि मायाजगत उपचेतन में केवल वैयक्तिक तत्वों की ही समाहिति नहीं होती अपितु वंशानुगत तत्व भी अचेतन में सक्रमित होते रहते हैं। मनोविश्लेषण एवं काव्य कला के सम्बन्ध का पुनर्स्थापन करते हुए युग ने स्पष्ट किया है कि कृतिकार अभिव्यक्ति के क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र है। उसकी सर्जनात्मक प्रक्रिया का वस्तु से समीकरण हो जाता है और कृतिकार अपने अंतरतम की प्रकृति को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार कृतिकार के कृतित्व के मूल्यांकन हेतु हमें उसकी अन्तः प्रज्ञा एवं सम्वेदन का अनुशीलन करना पड़ता है, क्योंकि कृतिकार का कार्य चेतन दृष्टिकोण को दिशा और गुण प्रदान करना है।[66]

साहित्येतिहास के अन्तर्गत मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अध्ययन हेतु किया जाता है क्योंकि कवि व्यक्तित्व कवि की आत्माभिव्यक्ति काव्य की विभिन्न स्थितियों एवं काव्य प्रतीकों के विवेचन हेतु इस पद्धति का प्रयुक्त करना न केवल उपयोगी है वरन वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वथा नवीन एवं प्रभावोत्पादक है। वस्तुतः लेखक और मनोविश्लेषक परस्पर परिपूरक हैं। ऐसी स्थिति में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में अप्रतिम महत्व है।

१ दार्शनिक अनुसन्धान पद्धति

दर्शन की अवधारणा—दर्शन शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है–'दृश्यते अनेनेति दर्शनम्' अर्थात जिससे देखा जाय। अब प्रश्न उठता है कि कौन पदार्थ देखा जाए ? दर्शनशास्त्र इसका उत्तर देता है कि वस्तु का सत्य भूत पक्ष देखा जाय। इस प्रकार अनुभूति तर्क और युक्ति सगत व्याख्याओं के द्वारा किसी वस्तु का यथार्थ (पारमार्थिक) ज्ञान प्राप्त करना दार्शनिक चिन्तन का उद्देश्य है। अनुभूतियाँ द्विविध होती है–ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय। इन दोनों का अध्ययन दर्शन के अन्तर्गत आता है। परन्तु वस्तु की वास्तविक सत्ता का हस्तामलकवत अपरोक्ष ज्ञान अतीन्द्रिय (आध्यात्मिक) अनुभूति के द्वारा ही सम्भव है। केवल ऐन्द्रिय अनुभूति भ्रमात्मक एव यथार्थ रहित होती है।

दर्शन का अर्थ ज्ञान के लिए प्रेम' होता है। दर्शन वह प्रयास है जिससे हम वास्तविकता के तार्किक चिन्तन पर पहुँचते हैं। समस्त भौतिक पदार्थ दिशायें, काल कार्य कारण सम्बन्ध इसके अन्तर्गत आते हैं। अत दर्शन को हम वस्तुओं के सम्यक् विचारणीकरण की कला कह सकते हैं।[57] सभी वस्तुओं का तर्कपूर्ण विधिपूर्वक तथा लगातार विचारने की कला ही दर्शन है। प्लेटो के मत से दर्शन स्पष्ट प्रयत्नो पर पहुँचने का अनवरत प्रयत्न मात्र है इसमें पदार्थ, दिक् काल, कार्य कारणत्व, विकास यन्त्रवाद, प्रयोजनवाद, जीवन आत्मा, ईश्वर अथवा ब्रह्म, उचित व अनुचित, भलाई व बुराई, सौन्दर्य तथा कुरूपतर इत्यादि के प्रचलित वैज्ञानिक प्रत्ययो की परीक्षा तथा व्याख्या की जाती है। प्रत्ययो का स्पष्टीकरण ही दर्शन का कार्य है प्रत्ययो का आलोचनात्मक विश्लेषण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अन्वेषण ही दर्शन है।[58]

यह प्रचलित तथा वैज्ञानिक प्रत्ययो का विश्लेषण करता है। बुद्धि के प्रकाश में उनकी मान्यता की परीक्षा करता है तथा उन सबका पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करता है। दर्शन जगत् के दिग्दर्शन का बुद्धिवादी प्रयत्न है। समग्र वास्तविकता का संक्षिप्त दर्शन इसका प्रयास है। दर्शन का लक्ष्य एकांगी न होकर बहुमुखी होता है। सामान्य रूप से अगर देखा जाय तो पता चलता है कि विभिन्न विज्ञानों का सम्बन्ध संख्याओं तथा अंकों से होता है। भौतिक विज्ञान में गर्मी प्रकाश गति शब्द विद्युत तथा आकर्षण का अध्ययन किया जाता है। रसायन विज्ञान प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन विज्ञानो में जगत् का एक पक्षीय अध्ययन निहित होता है लेकिन दर्शन विज्ञान सर्वपक्षीय अध्येता है, क्योंकि यह बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न है, इसमे सत्यनिष्ठ यथार्थ का ज्ञान समाहित होता है। दर्शन की अपनी अध्ययन और अनुसन्धान की विशिष्ट पद्धति होती है। इसकी पद्धति में विभिन्न विज्ञानों के उच्चतम निष्कर्षों का, समाहार

करता है तथा उनके नाम तथ्य स्थापित करता है।

दार्शनिक अनुसन्धान पद्धतियाँ

दर्शन की प्रणाली बौद्धिक चिन्तन है। इसकी पद्धति तर्कपूर्ण तथा नियमों में आबद्ध है। तर्क इसका प्रधान साधन है। दर्शन की प्रणाली तथ्यों घटनाओं तथा प्रक्रियाओं पर बौद्धिक चिन्तन करके सुनिश्चित निष्कर्षों की खोज करती है। दार्शनिक अनुसन्धान की पद्धति चिन्तन पर आधारित होती है। इसमें विज्ञानों की भांति विश्लेषण तथा संश्लेषण की तार्किक प्रणाली का आश्रय लिया जाता है, किन्तु विज्ञानों की भांति निरीक्षण तथा परीक्षण का यह अधिक उपयोग नहीं करता। दार्शनिक अनुसन्धान की केवल एक ही पद्धति है और वह बौद्धिक मनन व तथ्यों का निरीक्षण एवं उत्पत्ति के द्वारा उनकी व्याख्या करती है। विज्ञान की भांति यह भी अपने प्रयोजनों का तर्क, विश्लेषण तथा संश्लेषण की कठिन रीति द्वारा प्राप्त करती है। दार्शनिक अनुसन्धान पद्धति अनुभव तथा तर्क पर आधारित है। यह मुख्यतया विचारात्मक है।

यद्यपि विज्ञान की भांति दर्शन की प्रणाली भी बौद्धिक चिन्तन ही है फिर भी दर्शन तथा विज्ञान में एक दूसरे से बहुत अन्तर है। दर्शन का सम्बन्ध चरम तत्व से है जबकि विज्ञानों का सम्बन्ध उसके विशेष पहलुओं से ब्रह्माण्ड के विशेष विभागों से है तथा वे चरम प्रश्नों को अलग ही छोड़ देते हैं। उनका सम्बन्ध पदार्थ जीवन तथा मन की प्रक्रियाओं से है तथा वे इनकी व्याख्या प्रकृति के नियमों के अनुसार करते हैं। वे चरम तत्व के स्वभाव का अनुसन्धान नहीं करते। गणित तथा परीक्षण सम्बन्धी विज्ञान परिमाणात्मक तथा संख्यात्मक रीतियों का उपयोग करते हैं पर दर्शन चरम तत्व के स्वभाव का अनुसन्धान करता है तथा जीवन की चरम समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। यह बौद्धिक मनन का तथा प्रचलित और वैज्ञानिक धारणाओं के बौद्धिक संश्लेषणों का प्रयोग करता है। गणित पर आधारित विज्ञानों की भांति परिमाणात्मक तथा संख्यात्मक रीतियों का उपयोग दर्शन नहीं करता। तथ्यों अथवा घटनाओं का ज्ञान बढ़ाने के लिये यह निरीक्षण तथा परीक्षण का प्रयोग नहीं करता वरन केवल उस प्रकार का ही वर्णन करता है जिसके द्वारा उनकी व्याख्या की जाती है तथा उनकी पारस्परिक संगति बढ़ाई जाती है। यह उन सामान्य दशाओं का अनुसन्धान करता है जिसके अनुसार सभी तत्व कार्य करते हैं।[69]

बुद्धिवादियों का कहना है कि बुद्धि ही वह तत्व है जिसके द्वारा हम तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तत्व को समझने के लिये दर्शन को बुद्धि का ही आश्रय लेना पड़ता है। इसकी प्रणाली बौद्धिक चिन्तन, तार्किक विश्लेषण तथा संश्लेषण और एक मात्र उपपत्ति को बनाती है। तत्व इस योग्य हो कि बुद्धि के

द्वारा वह समझा जा सके, वह बुद्धि की समझ से बाहर नहीं है। तत्व को समझने के लिए बुद्धि की क्षमता न मानने से दर्शन असम्भव हो जाता है।

सुप्रसिद्ध प्रतिभावादी (Intutionist) बर्गसों यह मानते हैं कि दर्शन की प्रणाली बौद्धिक समझ व तार्किक चिन्तन नहीं है वरन सहज ज्ञान ही है। सहज ज्ञान बौद्धिक नहीं वरन अबौद्धिक है। यह बुद्धि से परे की वस्तु है, यह बुद्धि की समझ से आगे की वस्तु है। वस्तुतः बर्गसाँ का यह विचार सर्वथा अनुचित है क्योंकि यह ज्ञान दार्शनिक अनुसन्धान पद्धति का आधार नहीं हो सकता क्योंकि दर्शन सर्वमान्य की ही माँग करता है। दूसरे बर्गसाँ का विचार विज्ञान तथा दर्शन के बीच एक खाई भी डाल देता है जिससे दोनों का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। इनके अनुसार दार्शनिक प्रगति के लिए वैज्ञानिक ज्ञान की प्रगति व्यर्थ होगी। अतः इनके विचारों को दार्शनिक अनुसन्धान की पर्याप्त प्रणाली नहीं माना जा सकता है।

हेगेल तक शास्त्र को दर्शन के समरूप मानते हैं। उनका कथन है कि तर्कशास्त्र विचार का विज्ञान है तथा दर्शन तत्व का विज्ञान है। हेगेल के अनुसार विचार तथा तत्व चरम रूप में समान हैं। जो वास्तविक है वही विचारात्मक है तथा जो विचारात्मक है वही वास्तविक है।[60] पूर्वोल्लिखित समस्त दार्शनिक पद्धतियों के अनुशीलन से दो प्रकार की दार्शनिक सम्प्रदायों का वशिष्ट्य परिलक्षित होता है। जिन्हें हम मूलभूत नियम कह सकते हैं इनमें प्रथम पक्ष को सैद्धान्तिक अथवा प्रकृति दर्शन कहा जा सकता है तथा दूसरे पक्ष को व्यावहारिक अथवा आचार दर्शन कहा जाता है। प्रकृति दर्शन मूलतः आनुभाविक है तथा आचार दर्शन बौद्धिक। इसके आधार पर मानव की तीन सनातन शक्तियों की परिकल्पना की जा सकती है—बुद्धि, निर्णय एवं तर्कना। जिनका विनियोग क्रमशः प्रकृति कला एवं स्वातन्त्र्य में होता है।[61]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर दार्शनिक अनुसन्धान की तीन पद्धतियों का निर्माण किया जा सकता है—

1. बौद्धिक अनुसन्धान पद्धति
2. आनुभविक अनुसन्धान पद्धति
3. तार्किक अनुसन्धान पद्धति

1. **बौद्धिक अनुसन्धान पद्धति**—मानव बुद्धि का सर्वप्रथम विवेचन जान लाक ने किया। लाक के अनुसार मानव मन जन्म के समय ज्ञान शून्य होता है और धीरे धीरे संवेदना एवं चिन्तन के गवाक्षों द्वारा ज्ञान का प्रकाश मन के अन्धकारमय कक्ष में प्रविष्ट कराता है। मानवीय ज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय प्रत्यय है (Idea) होता है।[62] इन प्रत्ययों का प्रभाव इन्द्रियानुभूत तथा मानसिक व्यापारों के चिन्तन द्वारा उद्भूत होता है। ऐसी स्थिति में ऐन्द्रिक ज्ञान को बुद्धगमीय

अथवा भौतिक माना जाता है तथा मानसिक व्यापारों द्वारा प्राप्त ज्ञान को दार्शनिक कहा जाता है। बौद्धिक ज्ञान के वैचारिक स्तर पर तीन भेद होते हैं-प्रत्यक्षात्मक कल्पनात्मक एवं प्रत्ययात्मक। प्रत्यक्षात्मक विचार स्थूल ज्ञान पर आधारित है तथा कल्पनात्मक विचार अनुमानाश्रित होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण होता है किन्तु प्रत्ययात्मक सन्तुलित बुद्धि द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण आधार भूमि से भिन्न नहीं होता, इसीलिए बौद्धिक अनुसंधान पद्धति के अन्तर्गत प्रत्ययात्मक दृष्टि को सर्वाधिक उपयोगी माना गया है। प्रत्यय के लिए प्रमाण हेतु तथ्यों की अपेक्षा होती है। इन प्रमाणों का अनुभव एवं तर्क के द्वारा पुष्ट किया जाना है। इस प्रकार बौद्धिक पद्धति के अन्तर्गत आनुभविक एवं तार्किक पद्धतियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इस दृष्टि से बौद्धिक अनुसंधान की पद्धति अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

2 आनुभविक अनुसंधान पद्धति-आनुभविक अनुसंधान पद्धति के विकास की दृष्टि से बेकन के नोवम आरगनम (NO Vum orgnum) का उल्लेख सर्वप्रथम किया जा सकता है। बेकन ने समस्त मिथ्याग्रहों से मुक्त होकर निष्पक्ष एवं परिष्कृत मन द्वारा अनुभवों के स्वतंत्र समीक्षात्मक परीक्षण को ही विशुद्ध वैज्ञानिक प्रणाली माना है। उनके अनुसार अनुभव पर प्रतिष्ठित ज्ञान ही सत्य और वैज्ञानिक है और रिक्त शाब्दिक तर्क प्रक्रियाओं तथा रूढ़िवादी सिद्धान्तों से सचेत रहना इस प्रकार के ज्ञान के विकास के लिये परमावश्यक है।[68] इसी सिद्धान्त को विकसित करते हुए प्रख्यात दार्शनिक बरकले ने यह सिद्ध किया कि प्रत्यय जन्य ज्ञान भी आनुभविक है क्योंकि ईश्वरीय मस्तिष्क का गोचर रूप में देख कर ही हमें जगत जीव एवं ब्रह्म के अस्तित्व का बोध होता है। यदि ईश्वर मस्तिष्क जगत को इन्द्रियानुभव के द्वारा प्रत्ययीकृत नहीं करते तो मात्र तर्कना के द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों के द्वारा असम्भव है। कालान्तर में काण्ट ने आनुभविक पद्धति के दो रूपों का निर्धारण किया। प्रथम प्रागनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान और दूसरा स्वानुभव सम्पन्न सज्ञान। काण्ट के अनुसार दर्शन का प्रयोग ही प्रागनुभव संकल्पनाओं की प्रयोज्यता की सहविस्तारी है।

अनुभव की दृष्टि से दर्शन की प्रणाली को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- (1) पदार्थानुभूति (2) अनुभूति के आधार पर पदार्थों का गुणात्मक विश्लेषण। इस प्रकार इस विभाजन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आनुभविक पद्धति के द्वारा ही हम पदार्थ के उद्भव विकास एवं स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मात्र तर्कना एवं बौद्धिक चिन्तन द्वारा दार्शनिक तथ्यों का प्रतिपादन असंगत हो जाता है, क्योंकि दर्शन का मूल सिद्धान्त सत्य केवल सत्य का प्रतिपादन है। यह सत्य प्रत्यक्षीकृत अनुभव जन्य ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इस

प्रकार आनुभविक पद्धति के द्वारा अनुसन्धित्सु ज्ञान को संवेदनात्मक एवं कल्पनात्मक तत्वों से मुक्त करके प्रत्यक्ष बोधात्मक तत्वों को सैद्धान्तिक आधार प्रदान करता है।

3 तार्किक अनुसन्धान पद्धति–अनुसन्धान की तार्किक पद्धति का मूल आधार बौद्धिक है। तत्व दर्शन के प्रसिद्ध मीमांसक रेने दकार्ते ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिस्कोर्स आन मथड' तथा 'मेडीटेशन्स' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि जिस बात के लिये पर्याप्त यौक्तिक आधार न हो उसे स्वीकार न किया जाय।[65] इसीलिये सत्य के स्वीकरण हेतु तर्कना को आवश्यक माना गया है। देकार्ते ने किसी भी तथ्य का विकास संशय से माना है। प्राक्कल्पना ॥, प्रागनुभवों अथवा प्रत्यक्षीकृत ऐन्द्रिक ज्ञान को भी तब तक सत्य नहीं मानना चाहिए जब तब तार्किक आधार पर पुष्ट न कर लिया जाय। तार्किक पद्धति के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं को भी तभी सत्य मानता है जब वह प्रकृति के विभिन्न पारिदृश्यों का परख लेता है।

तार्किक प्रणाली की कतिपय विचारकों ने बौद्धिक प्रक्रिया से सम्भूत माना है किन्तु काण्ट ने दोनो के पृथक क्षेत्र एवं मौलिक अस्तित्व की कल्पना करते हुए यह सिद्ध किया है कि ये दोनों प्रणालियाँ एक दूसरे को अन्तर्बाधित नहीं करती। तर्क बुद्धि स्वातंत्र्य संकल्पना की उपज है इसलिए अनुभव एवं बौद्धिक चिन्तन में सत्य के प्रति जो एकनिष्ठता परिलक्षित होती है वह तर्क बुद्धि में परिलक्षित नहीं होती है।

तार्किक प्रणाली का मुख्य उद्देश्य दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थों के सत्यासत्य का निर्माण एवं उनका सहजीकरण है। इसीलिए इस पद्धति के द्वारा ज्ञान की अन्तःसत्ता की अपेक्षा उसकी वाह्य पद्धति पर अधिक प्रकाश डाला जाता है। इस दृष्टि से तार्किक पद्धति के दो भेद किये गये हैं।

1 आगमनात्मक पद्धति
2 निगमनात्मक पद्धति।[66]

1 आगमनात्मक पद्धति–आगमनात्मक पद्धति के अन्तर्गत अनुसन्धित्सु को नवीन सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना करनी पड़ती है। इन सिद्धान्तों की स्थापना के लिये चार प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है– (1) स्थापना हेतु आधारभूत तथ्यों का संकलन (2) तथ्याधारित अनुमान या परिकल्पना का प्रस्तुतीकरण (3) तर्काश्रित प्रमाणों की प्रस्तुति (4) इन तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन।[67] इस प्रकार तार्किक पद्धति द्वारा प्रमाण एवं तर्कों के आधार पर आगमनात्मक पद्धति के विशिष्ट तथ्यों को सामान्य सिद्धान्तों के रूप में परिणत किया जाता है।

2 निगमनात्मक पद्धति–निगमनात्मक पद्धति के द्वारा किसी विशिष्ट तथ्य

घटना या समस्या के समाधान के लिये किसी पूर्व निर्धारित सिद्धान्त या नियम का आश्रय ग्रहण किया जाता है।[68] इस प्रकार आगमनात्मक पद्धति द्वारा जहाँ हम सिद्धान्त का रूप धारण करते हैं वहीं निगमनात्मक पद्धति द्वारा सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है किन्तु यदि कोई सिद्धान्त तथ्यों अथवा अनुभवों के परिसीमन में असफल सिद्ध होता है तो सिद्धान्त के औचित्य की पुनःपरीक्षा की जाती है। पुनरीक्षण का यह कार्य आगमनात्मक पद्धति द्वारा ही सम्भव है।

समग्र विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दार्शनिक क्षेत्र की बौद्धिक आनुभविक एवं तार्किक पद्धतियाँ दर्शनेतर विषयों के लिये भी उपयोगी हैं किन्तु जहाँ दार्शनिक प्रणाली में अभिव्यक्ति का आधार बौद्धिक होता है वहीं साहित्य का उद्देश्य विचारों का अनुभावन मात्र है। इसीलिए इन्हीं पद्धतियों के आधार पर साहित्यकार सामान्य का विशेषीकरण और अप्रत्यक्ष का प्रत्यक्षीकरण करता है। पर भी मानदण्डों और नियमों पर आधृत होने पर भी साहित्य दर्शन का रसात्मक रूप बन जाता है और दर्शन साहित्य का बौद्धिक स्वरूप मात्र रह जाता है।

दार्शनिक पद्धति की विशेषताएँ—

1. दार्शनिक पद्धति सश्लेषक होती है।[69]
2. दार्शनिक पद्धति में नैतिक मूल्यों पर विचार किया जाता है।
3. दार्शनिक पद्धति में गुणात्मक विधियों का प्रचुर प्रयोग होता है।
4. दार्शनिक पद्धति में तार्किक तर्कना का उपयोग किया जाता है।
5. दार्शनिक विधि में प्राकल्पना को विशेष ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।
6. दार्शनिक पद्धति में अवधारणाओं, विधियों और सिद्धान्तों की आलोचना की जाती है।

अनुसन्धान पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन

अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धतियों के वर्गीकरण एवं विश्लेषण के उपरान्त तुलनात्मक दृष्टि से इन पद्धतियों के तात्विक अन्तर को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः अनुसन्धान स्वयं एक पद्धति है। सृष्टि के उद्भव से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक युग तक की गाथा अनुसन्धान सम्पन्न है। सृष्टि के समस्त प्राणी किसी न किसी रूप में अनुसन्धान में संलग्न हैं किन्तु आधुनिक युग में अनुसन्धान की इस अतिव्याप्ति को सीमित करते हुए इसका क्षेत्र मानवीय ज्ञान विज्ञान के अनुसन्धान तक रखा गया है। आधुनिक काल में अनुसन्धान को एक वैज्ञानिक प्रक्रिया माना गया जिसके आधार पर अप्राप्य को सुलभ और उपयोगी बनाया गया है। प्राचीन भारत की योगक्षेम की विचारधारा इसी सिद्धान्त पर आधृत है।

अनुसन्धान की इस महत्ता को दृष्टि में रखते हुए वैज्ञानिकों ने इसे भिन्न भिन्न रूपों में विवेचित किया है तथा ज्ञान विज्ञान, दर्शन, इतिहास साहित्य इत्यादि विविध क्षेत्रों के लिये अनुसन्धान की विविध प्रणालियों का विकसित किया गया है। प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसन्धान प्रवृत्तियों का सविशेष उनकी प्रयोगशीलता के कारण हुआ है जबकि सामाजिक विज्ञानों में सामाजिक जीवन को विविध रूपों में देखने के कारण क्षेत्रीय राष्ट्रीय एवं सार्वभौमिक आधार पर समाजशास्त्रियों ने पृथक पृथक पद्धतियों का निर्माण किया है। मनोविज्ञान एवं ज्ञान मानव के अन्तर्मन एवं प्रज्ञा के विषय हैं। प्रारम्भ में मनोविज्ञान को समाज विज्ञानों की भाँति विवेचित किया जाता था किन्तु मानसिक सत्ता को श्रेष्ठ मानते हुए जब फ्रायड एवं जंग ने मनोविश्लेषण की प्रक्रिया को रूपायित किया तो मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों का स्वतन्त्र अस्तित्व निर्मित हुआ। इसी प्रकार दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में भी पाश्चात्य प्रभाव के कारण अनुसन्धान पद्धतियों के उपयोग की आवश्यकता बढ़ी।

साहित्यानुसन्धान सर्वाधिक आनुषंगिक अनुसन्धान प्रणाली है। वस्तुतः साहित्य का सम्बन्ध भाव जगत से होता है जबकि अनुसन्धान पद्धतियाँ वैज्ञानिक चिन्तन से प्रभावित होती हैं। साहित्य की भावमयता के कारण इसका विश्लेषण समीक्षा द्वारा किया जाता था। इसीलिए साहित्य में अनुसन्धायिनी दृष्टि की अपेक्षा साहित्य सृजन के लिए की जाती थी न कि प्रवृत्यानुशीलन के लिए। साहित्य का विश्व विद्यालयीय अध्ययन के लिए समीक्षित कृतियों का पुनर्व्याख्यायित करने की आवश्यकता पड़ी क्योंकि विश्वविद्यालयीय शैक्षिक गतिविधियों के अन्तर्गत साहित्य को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ कर परखा गया। साहित्यानुसन्धान इसी परख का प्रतिफलन है। इसीलिए साहित्य के क्षेत्र में अनुसन्धान की समस्त पद्धतियों का न्यूनाधिक प्रयोग होता है। साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में प्रयुक्त इन पद्धतियों को सामान्य विवेचन क्रम के अन्तर्गत विभाजित करने पर इनके चार प्रभेद किये जा सकते हैं—विचारात्मक विवरणात्मक, प्रयोगात्मक एवं प्रक्रियात्मक। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस वर्गीकरण को अत्यन्त संकीर्ण एवं अव्यावहारिक बताया क्योंकि इन पद्धतियों के द्वारा विषयगत पार्थक्य नहीं हो पाता था। इसलिए अनुसन्धान पद्धतियों का वर्गीकरण करने से पूर्व अनुसन्धान के क्षेत्र का विभाजन किया गया और प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग होने वाली अनुसन्धान पद्धतियों को उसी क्रम में विश्लेषित किया गया। इस प्रकार ये पद्धतियाँ प्रवृत्त्याश्रित न रहकर क्षेत्राश्रित अथवा विषयाश्रित हो गया तथा इन्हें भौतिक अनुसन्धान पद्धति, समाज वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति, मनोवैज्ञानिक-अनुसन्धान पद्धति दार्शनिक अनुसन्धान पद्धति, ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति तथा मार्क्सवादी अनुसन्धान पद्धति के रूप में

वर्गीकृत किया गया तथा प्रत्येक पद्धति के भिन्न भिन्न प्राम्वों की परिकल्पना की गयी।

अनुसन्धान पद्धतियो क विषयगत वर्गीकरण के परिणाम स्वरूप अनुसन्धान की तकनीक इन पद्धतियों को प्रभावित करती रही। फलत विषय की दृष्टि स वषम्य होने पर भी शोध की दृष्टि से इनमें पर्याप्त साम्य लक्षित होता है। इसका स्पष्टीकरण इनके तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है।

दार्शनिक एव ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियाँ सामाजिक एव प्राकृतिक विज्ञानो स विवेचन प्रणाली तथ्य सकलन एव निष्कष प्रतिपादन की दृष्टि से सवथा भिन्न है किन्तु इनमे पद्धतिया के प्रयोग का दृष्टि स साम्य भी है। उदाहरण क लिय ऐतिहासिक अनुसन्धान का जन्म प्राकृतिक विज्ञानो की प्रमुख पद्धति विकास वाद स हुआ है। जीव विज्ञान में गत्यात्मकता का निर्धारण करत हुए डार्विन ने जिन विकासशील प्रवृत्तियो का उल्लेख किया उन्ही के आधार पर ऐतिहासिक अनुस धान पद्धति का विकास हुआ। कि तु एक स्वतन्त्र पद्धति के रूप में ऐतिहासिक पद्धति न विज्ञान एव दशन दोनो को समान रूप स प्रभावित किया है। ऐतिहासिक अनुसन्धान द्वारा भूत वतमान एव भविष्य म सम्बन्ध स्थापित कराया जाता है। *सम्बन्ध स्थापन की यह प्रक्रिया वज्ञानिक एव साहित्यिक क्षत्रो को समान* रूप से प्रभावित करती है। आँकडो के सकलन एव विश्लेषण के द्वारा ऐतिहासिक पद्धति क अ तगत गणितीय तत्वा को भी समाविष्ट कर लिया गया है किन्तु ऐतिहासिकता के अ तगत अन्वेषणा का पूण सत्यापन नही होता। इतिहास अनुमानाश्रित होता है जबकि विज्ञान म चरम सत्य की उपलब्धि होती है। इस दृष्टि से भी वज्ञानिक एव ऐतिहासिक पद्धति म पर्याप्त वषम्य है। इसी प्रकार दार्शनिक पद्धतियाँ भी प्राकृतिक विज्ञानो स पर्याप्त भिन्न हैं। दार्शनिक पद्धति तत्व मीमासा क लिए प्रयुक्त होती है। दशन की सश्लिष्ट सकल्पनाएँ स्थूल स सूक्ष्म की ओर उन्मुख होती हुयी चरम तत्व को तकना द्वारा स्पष्ट कराती हैं जबकि विज्ञान में पदाथ के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा उनका मूल रूप आविष्कृत किया जाता है। इस प्रकार दशन म तथ्य द्वारा तत्व की व्याख्या होती है और विज्ञान मे तत्व द्वारा तथ्य की। अनुसन्धान की इसी प्रक्रिया क परिणाम स्वरूप दशन एव विज्ञान की पद्धतिया मे भी वषम्य दिखाई पडता है।

सत्रहवी सदी क उत्तराद्ध म अनुमान एव तक की अपक्षा आनुभविक ज्ञान प्राप्ति की एक नई विधा का ज म हुआ जिसे फ्रांसिस बेकन ने विकसित किया। उसने प्राप्त तथ्यो के आधार पर नियत्रित निष्कर्षों का प्रतिपादन किया तथा इस व्यावहारिक विधि कहा। कालान्तर में इसे ही वज्ञानिक प्रविधि माना गया तथा न्यूटन, गलीलियो आदि क आविष्कार इसी पद्धति के आधार पर सफल हुए। इस

प्रकार आगमनात्मक तथा निगमनात्मक पद्धतियों का सामंजस्य इसी युग में स्थापित हुआ। इस काल की प्रमुख उपलब्धियाँ प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण प्रयोगों के सीमांकन एवं विमर्शी अध्ययन के पुनरीक्षण में निहित हैं। कालान्तर में अध्ययन की इस वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के दो क्षेत्र निर्मित हुए, जिन्हें प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञानों के रूप में विभाजित किया गया। यद्यपि इन दोनों की विवेचन प्रणाली तथा तथ्यानुसन्धान की पद्धति समान है किन्तु सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर इनके अध्ययन की उपयोगिता को पृथक पृथक रूपों में स्वीकार किया गया। इसीलिए अनुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धति के प्रभेद मिलते हैं। प्राकृतिक विज्ञानों में अनुसन्धान को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है, क्योंकि प्राकृतिक विज्ञान मानवीय जीवन को विकसित कराने में सहायक होते हैं इसके विपरीत सामाजिक विज्ञान अभी विकासशील अवस्था में हैं। प्राकृतिक विज्ञानों की अनुसन्धान पद्धतियाँ समाज विज्ञानों से जटिल भी हैं क्योंकि समाज विज्ञानों में सृष्टि के सर्वाधिक प्रबुद्ध प्राणी एवं उसके द्वारा निर्मित समाज का अध्ययन होता है, जबकि प्राकृतिक विज्ञानों में जड़ एवं चेतन पदार्थों तथा जीव जन्तुओं का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार प्राकृतिक विज्ञान प्रयोगशाला में निर्दिष्ट सिद्धान्तों के द्वारा नियन्त्रित पद्धति के अन्तर्गत आविष्कृत होते हैं तथा इन प्रयोगशालाओं द्वारा निसृत आविष्कार सार्वभौमिक एवं अपरिवर्तनशील होते हैं इसके विपरीत समाज विज्ञानों की अनुसन्धान-पद्धतियाँ व्यावहारिक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान हेतु प्रयुक्त होती हैं। सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र इत्यादि आते हैं। यद्यपि इन विमर्शी विषयों की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न है तथापि विषय के क्रमबद्ध ज्ञान का नियोजित प्रक्रिया का वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों द्वारा ही समझा जा सकता है।

सामाजिक विज्ञानों तथा प्राकृतिक विज्ञानों में दूसरा अन्तर उनके कार्य कारण सम्बन्धों द्वारा निर्धारित होता है। प्राकृतिक विज्ञानों में सार्वभौमिकता के सिद्धान्त को सदैव पूर्ण सत्य के रूप में मान्यता दी जाती है, क्योंकि प्राक्कल्पनाओं प्रयोगों एवं सांख्यिकीय सिद्धान्तों के आधार पर सिद्धान्त की वैज्ञानिकता का पहले ही विश्लेषण कर लिया जाता है इसके विपरीत सामाजिक विज्ञानों में यदि किसी व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता का आकलन किया जाता है तो उसके मन्द बुद्धि अथवा कुशाग्र बुद्धि होने के अनेक कारण हो सकते हैं इसलिए सामाजिक विज्ञानों की अनुसन्धान-पद्धतियाँ प्रायोगिकी एवं सांख्यिकीय के द्वारा परिपुष्ट ज्ञान पर भी परिवर्तनशील हो सकती हैं। प्राकृतिक विज्ञानों एवं सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति में पार्थक्य होने पर भी अनुसन्धान-पद्धतियों में भी पर्याप्त साम्य है। इन दोनों पद्धतियों में प्राक्कल्पनाओं, प्रयोगशालाओं, आगनुभवों एवं आँकड़ों का महत्त्व समान

रूप में है तथा दोनों पद्धतियों का संयोग सबकुछ में अभावि हैं। इन दोनों के द्वारा उत्तरोत्तर आविष्कार मानव जीवन के भौतिक कल्याण के लिए प्रयुक्त होते हैं, जबकि दार्शनिक अनुसंधान तत्व मीमांसा के माध्यम से व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना के अभ्युत्थान में सहायक होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सामाजिक विज्ञान एवं प्राकृतिक विज्ञान दोनों आधुनिक युग की व्यवहारवादी विचारधारा से सम्बंधित हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक युग में प्रयुक्त होने वाली समस्त पद्धतियाँ परस्पर पृथक होते हुए भी सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से समवेत हैं। चूंकि अनुसंधान आधुनिक युग की देन है इसलिए ऐतिहासिक एवं दार्शनिक-पद्धतियों को भी भौतिकवादी दृष्टि से विश्लेषित किया जाता है। इसी प्रकार प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों की अनुसंधान पद्धतियों की उपयोगिता भी उनकी सार्वभौमिकता में है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु होने वाली गवेषणाओं के कारण अद्यतन प्रयुक्त समस्त अनुसंधान-पद्धतियों को वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धति कहना ही समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि अनुसंधान स्वयं विज्ञान है इसलिए इस क्षेत्र में व्यवहृत समस्त पद्धतियाँ पूर्व वैज्ञानिक कही जायेंगी।

८— निष्कर्ष

अनुसंधान पद्धतियों के उद्भव और विकास की दृष्टि से मानवीय मस्तिष्क का विकास क्रम जानना आवश्यक है, क्योंकि मानव के पृथ्वी पर आगमन से ही अनुसंधान के द्वार खुल गये हैं। आदिम युग से लेकर आधुनिक काल तक होने वाले मानव के विकास में सहायक सभी कार्य उसकी अनुसंधान प्रियता के परिचायक हैं। प्रारम्भ में मानवीय अनुसंधान का अनुशीलन नहीं किया गया तथा उसके द्वारा आविष्कृत सिद्धान्तों को सृष्टि के ऐतिहासिक प्रवाह ने आप्लावित कर दिया। कालान्तर में वैज्ञानिक विवेचन प्रणाली के आगमन से प्रत्येक विषय को सूक्ष्म अनुसंधायिनी दृष्टि द्वारा व्याख्यायित किया गया तथा उसकी उपयोगिता के निश्चय के उपरान्त उस अनुसंधान के विविध क्षेत्रों में महत्व दिया गया।

ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों के विकास के साथ ही साहित्यानुसंधान की प्रवृत्ति भी अंकुरित हुयी क्योंकि साहित्य में समाज और दर्शन का सश्लिष्ट समन्वय मिलता है, इसलिए अनुसंधान की सार्वदेशिक व्याप्ति को देखते हुए इसकी पद्धतियों के वर्गीकरण का प्रयत्न किया गया तथा ऐतिहासिक दार्शनिक मनोवैज्ञानिक समाज वैज्ञानिक, प्राकृतिक वैज्ञानिक, एवं विचारशील मार्क्सवादी अध्ययन के क्षेत्रों के लिए अनुसंधान पद्धतियों के विविध रूपों की निर्मिति हुई। इसके लिए अनुसंधान की व्याख्या भिन्न भिन्न रूपों में की गयी।

अनुसंधान-पद्धतियों के सर्वमान्य वैज्ञानिक वर्गीकरण के उपरान्त उनकी

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 हिन्दी अनुशीलन (शोध विशेषांक) वर्ष 15 अंक 3 4 डॉ० भगीरथ मिश्र पृ० 109
2 वही, प्रभाकर माचवे पृ० 74
3 वही डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० 11
4 वही डॉ० भगीरथ मिश्र पृ० 107
5 'The history we read though based on facts is strictly speaking not factnal at all but a series of accepted judgements Edward Hallet carr–what is History Page 8
6 The function of the historian is neither to leve the past nor to imancipate himself from the past but to master and understand it as the key to the understanding of the present –Edward Hallet carr–what is History Page 20
7 डॉ० नामवर सिंह इतिहास और आलोचना पृ० 173
8 H A L Fisher– A History of Europe Vol I Page 7
9 K Munshi– The Vedic age –Introduction Page 8
10 डा० बुद्ध प्रकाश इतिहास दर्शन–पृ० 155
11 नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 6
12 डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–पृ० 36
13 डा० गणपति चन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ० 37
14 Historical research deals with past experience in a similar manner Its aim is to apply the method of reflective thinking to social problems still unsolved by means of discovery of past trends of event, fact and attitude It traces linces of development in human thought and action in order to reach some basis for social activity F L whitney The elements of Research Page 192
15 The classification of facts the recognition of their sequence and relative significance is the function of science
By Carl Pearson The Grammer of Science'
Page 6
16 जार्ज बरकले प्रिंसिपल्स आफ ह्यूमन नालेज पृ० 31 (अनु० भगवान बख्श सिंह)

17 डॉ० विक्रमादित्यराय काव्य समीक्षा पृ० 183

18 वही पृ० 182

19 डॉ० विक्रमादित्यराय काव्य समीक्षा पृ० 184

20 डॉ० सावित्री सि हा पाश्चात्य का यशास्त्र की परम्परा पृ० 153

21 The method must be such that the ultimate conclusion of every man shall be the same Such is the method of science Its fundamental hypothesis ss this there are real things whos' characters are entirely independent of our opinions about them ' By F N Kerlinger Foundations of Behavioural Research ' P 7

22 The centrifugal and the centripentas powers are like the opp osit poles of the magnet we might say that the like of the magnet subsists in the r union but that it lives in their stri fe D A Stauffer Selected poetry and prose of Coleridge Page 578

23 Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge the impassioned expression which is the countenance of all scie nce (wordsworth–ode to Duty)

Dr Vikramaditya Rai–Kavya Samiksha Page 177

24 A hypothesis is a shreud guess or inference that is formula ted and provisionally adopted to explain observed facts, or conditions and to guide in further investigation

C V Good and D E Scates Methods of Research Page–90

25 A hypothesis is a congectural statement of the relation bet ween two or more variable

F N Kerlinger Foundations of behevioral research' Page 20

26 An experiment usually consists in making an event occur under known conditions were as many extraneous influences as for as possible are eliminated and close observation is po ssible so that relationship between phenomena can be revealed william I B Beveridge 'The art of scientific Investigation Page 13

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 हिन्दी अनुशीलन (शोध विशेषांक) वर्ष 15 अंक 3 4 डॉ॰ भगीरथ मिश्र पृ॰ 109
2 वही प्रभाकर माचवे पृ॰ 74
3 वही डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त पृ॰ 11
4 वही डॉ॰ भगीरथ मिश्र पृ॰ 107
5 'The history we read though based on facts is strictly speaking not factnal at all but a series of accepted judgements Edward Hallet carr-what is History Page 8
6 The function of the historian is neither to leve the past nor to imancipate himself from the past but to master and understand it as the key to the understanding of the present -Fdward Hallet carr-what is History Page 20
7 डॉ॰ नामवर सिंह 'इतिहास और आलोचना' पृ॰ 173
8 H A L Fisher-'A History of Furope Vol I Page 7
9 K Munshi-'The Vedic age'-Introduction Page 2
10 डॉ॰ बुद्ध प्रकाश इतिहास दर्शन-पृ॰ 155
11 नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ॰ 6
12 डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-पृ॰ 36
13 डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ॰ 37
14 Historical research deals with past experience in a similar *manner Its aim is to apply the method of reflective thinking* to social problems, still unsolved by means of discovery of past trends of event, fact and attitude It traces linces of development in human thought and action in order to reach some basis *for social activity F L whitney The element of* Research Page 192
15 The classification of facts the recognition of their sequence and relative significance is the function of science "
By Carl Pearson The Grammer of Science '
Page 6
16 जार्ज बरक्ले प्रिंसिपल्स आफ ह्यूमन नालेज पृ॰ 31 (अनु॰ भगवान बख्श सिंह)

17 डॉ० विक्रमादित्यराय काव्य समीक्षा पृ० 183

18 वही पृ० 182

19 डॉ० विक्रमादित्यराय काव्य समीक्षा, पृ० 184

20 डॉ० सावित्री सिन्हा पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, पृ० 153

21 The method must be such that the ultimate conclusion of every man shall be the same Such is the method of science Its fundamental hypothesis ss this there are real things, whos' characters are entirely independent of our opinions about them" By F N Kerlinger Foundations of Behavioural Reseaich' P 7

22 The centrifugal and the centripentas powers are like the opposit poles of the magnet we might say that the like of the magnet subsists in the r union, but that it lives in their strife D A Stauffer 'Selected poetry and prose of Coleridge' Page 578

23 Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge, the impassioned expression which is the countenance of all science (wordsworth–ode to Duty)

Dr Vikramaditya Rai–Kavya Samiksha Page 177

24 A hypothesis is a shreud guess or inference that is formulated and provisionally adopted to explain observed facts, or conditions and to guide in further investigation

C V Good and D E Scates 'Methods of Research' Page–90

25 A hypothesis is a congectural statement of the relation between two or more variable

F N Kerlinger Foundations of behevioral research' Page 20

26 An experiment usually consists in making an event occur under known conditions were as many extraneous influences as for as possible are eliminated and close observation is possible so that relationship between phenomena can be revealed william I B Beveridge 'The art of scientific Investigation' Page 13

27 Experiment is the proof of a hypothesis which seeks to take up two factors into a causal relationship through the stndy of contrasting situations which have been controlled on all factors except the one of interest the latter being either hypothetical cause or the hypothertical effct

Ernest Green wood Experimental Sociology Page-28

28 An experiment is an observation undcr controlld conditions F S chapin Expetimental Designs in Sociological Research Page 206

29 If two situation are similar in every respect and one element is added to or suqstracted from one but not the other any diffexence that developes is the result of the operation of that element added or substracted John stuart mill Methods of experimental inquiry Page 42

30 बर्ट्रेण्ड रसेल साइंटिफिक आउट लुक (अनु० डॉ० गंगा रतन पाण्डेय) पेज 36

31 D B Vandalen (Understanding Educational Research) P 240

32 तस्यागवरमादयमागम प्रत्यक्षानुमानो प्रमानविशद्ध मुच्यमा समुपधारय सश्रुत संहिता सूक्त 1 श्लोक-13

33 Controled objective Methods by which group trends are obstracted from observation on many separate individuals are called statistical methods

H M Wolker and J Lev Elementary Stati tical Methods ' P 12

34 प्रो० होवार्ड बकर-सिस्टेमटिक सोसियालाजी प० 9

35 प्रो० चार्ल्स ए० इलउड-मेथडस इन सोसियालाजी प० 97 (अनु० शम्भूरत्न त्रिपाठी)

36 चार्ल्स ए० एलउड-मेथडस इन सोसियोलाजी (अनु० शम्भूरत्न त्रिपाठी) प० 88

37 वही 88

38 डा० गणपति चन्द्र गुप्त-हिन्दी साहित्य का विकास प० 99

39 J Stalin- Problems of Leninism Page 569

40 F Engels–'Anti Duhring' Page 160
41 डा० नामवर सिंह–इतिहास और आलोचना पृ० 183
42 डॉ० शिवकुमार मिश्र–मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्त पृ० 27
43 महेशचन्द्र राय–मार्क्सवाद और साहित्य पृ० 197–98
44 डा० जनेश्वर वर्मा–हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना पृ० 155
45 डा० उमेशचन्द्र मिश्र–हिन्दी के छायावादी कवियों के साहित्य चिन्तन और समीक्षा कार्य का अनुशीलन पृ० 175 (हस्तलिखित शोध प्रबन्ध सागर विश्वविद्यालय 1967)
46 काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मित तयोपदेश युजे॥
आ० मम्मट–काव्य प्रकाश' प्रथम उल्लास श्लोक 2
47 The successful and normal defenses against objectionable instinctual wishes are called snblimation by Wolman– Contemporary theories and systems in psychotogy Page 256
48 डा० सावित्री सिन्हा सपादिका पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा' पृ० 342
49 डॉ० गगाधर झा–आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य पृ० 58
50 डॉ० गगाधर झा–आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य पृ० 60
51 वुडवथ–कन्टेम्पोरेरी स्कूल्स आफ साइकोलाजी पृ० 221
52 An experiment is an observation under control conditions F S Chapin– Experimental Designs in Sociologscal Research Page 206
53 डॉ० गगाधर झा–आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य पृ० 64
54 The unconscious as Freud sees it, is through and though dynamic, the whole psychic structure where conscious or unconscious is fundamentally tissue of striving and desire ' by Heidbreder– Seven psychologies ' page 388
55 डॉ० सावित्री सिन्हा–पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा पृ० 331
56 डॉ० यात्रोवी–दि साइकालाजी आफ सी० जी० युग पृ० 9
57 Pattick Introduction to Philosophy' P 5
58 Patrick 'Introduction to Philosophy P 5
59 Taylar, 'Elements of Metaphy sics P 5 6
60 Taylar–'Elements of Metaphysics ' Page–15

61 इमनुअल काण्ट–सौन्दय मीमासा, प० 36 (अनु० रामकेवल सिह)
62 George Werkle– Principles' of Human Knowledge , Introduction Page 33 (Tr Bhagwan Bux Singh)
63 जाज बरक्ले–प्रिसिपल्स आफ ह्य मन नालेज, प० 31 (अनु० भगवान बख्श सिह)
64 इमनुअल काण्ट सौन्दय मीमासा, प० 10 (अनु० रामकवल सिह)
65 जाज बकले–प्रिसिपल्स आफ ह्यूमन नालेज प० 29 (अनु० भगवान सिह)
66 डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त–साहित्य विज्ञान प० 163
67 डा० गुलाबराय–तकशास्त्र, प० 90
68 डा० गणपति चन्द्र गुप्त–साहित्य विज्ञान, पृ० 163
69 डा० चाल्स ए० इलउड मैथडस इन सोसियोलाजी' (अनुवादक–शम्भूरत्न त्रिपाठी) प० 35

O

3

साहित्यानुसन्धान की वैज्ञानिक पद्धतियाँ

अनुस धान की प्रयोजनीयता साहित्य एव विज्ञान साधना के दोनो परिसरो में समप्रभावी है। साहित्य एव विज्ञान की प्रवृत्तियो के परिशीलन प्रसग के अ त गत यह स्पष्ट हो गया है कि साहित्य मानव की अ तश्चेतना का साकार सोद्देश्य स्वरूप है। अनादिकाल स प्राकृतिक रहस्यों के प्रति मानव की जिज्ञासा एव उसकी साहचय लिप्सा ने उस भावुक बना दिया। इसी भावना की कलात्मक अभि यक्ति के अनुभावन का काम साहित्यानुसन्धित्सुओ ने किया। इस प्रकार सृष्टि की सर चना से लेकर जैविक परिकल्पना प्रसूत समस्त कार्यों मे किसी न किसी उद्देश्य की अनिवायता मानी गयी। एसी स्थिति में अनुसन्धान जस विशिष्ट कार्य की सोद्देश्यता पर प्रश्न चिह्न लगाया ही नही जा सकता। अनुसन्धान का श्रीगणेश मानव ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया है। यह उद्देश्य सामान्य भी हो सकता है और विशिष्ट भी। जीवन को सुचारु रूप से गतिशील बनाये रखने के लिये किय जाने वाले निद्रादि स्वाभाविक कार्यो स लेकर अद्यतन वैज्ञानिक आविष्कारो में कोई न कोई उद्देश्य निहित है। एतदथ अनुसन्धान की दो रूपो मे व्याख्या सगत प्रतीत होती है—

1 अनुसन्धान का सामान्य उद्देश्य
2 अनुसन्धान का विशिष्ट उद्देश्य।

1 अनुसन्धान का सामान्य उद्देश्य—अनुसन्धान का सामान्य उद्देश्य ज्ञान का विस्तार करना है। यहाँ सामान्य शब्द स आशय अनुस धान क बहुप्रचलित एव बहुचर्चित उद्देश्य पर ही प्रकाश डाला है। वस्तुत अनुस धान का उद्देश्य ज्ञान का विस्तार है लेकिन केवल ज्ञान का विस्तार करना ही अनुस धान का उद्देश्य नही है। यह अशत ही सत्य माना जा सकता है। अनुसन्धित्सु जब कोई अनुसन्धान करता है तो किसी एसे विषय पर ही करता है जिस पर पूर्णरूपेण कोई काय नहा होता है। जब उसका काय पूण हो जाता है और अनक विद्वानो द्वारा सस्तुत हो जाता है तो सचमुच म वह ज्ञानराशि की श्रीवृद्धि करता है। इस प्रकार प्रत्येक अनुसन्धान काय ज्ञान का विस्तार तो करता ही ह, साथ ही उसके कुछ अन्य उद्देश्य भी होते हैं, जिनकी पूर्ति होन पर ही अनुसन्धान का उद्देश्य पूण होता ह।

अनुसन्धान के सामान्य उद्देश्य को समझने के लिए उसके सामान्य रूप पर

विचार करना नितान्त आवश्यक है। अनुसन्धान मूलत विश्वविद्यालयों का सायास प्रयास है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान के जिस स्वरूप को अपनाया गया है उसमें से आगरा विश्वविद्यालय का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। आगरा विश्वविद्यालय की पी एच० डी० नियमावली में लिखा है कि—

1 इसमें (अनुपलब्ध) तथ्यों का अन्वेषण अथवा (उपलब्ध) तथ्यों या सिद्धान्तों का नवीन रूप म आख्यान होना चाहिए। प्रत्येक स्थिति में यह ग्रन्थ इस बात का द्योतक होना चाहिए कि अभ्यर्थी म आलोचनात्मक परीक्षण तथा सम्यक निर्णय करने की क्षमता है। अभ्यर्थी को यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि उसका अनुसन्धान किन अंशों में उसके अपने प्रयत्न का परिणाम है तथा वह विषय विशेष के अध्ययन को कहाँ तक और आगे बढ़ाता है।[1]

2 निरूपण शैली आदि की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का रूप आकार सन्तोषप्रद होना चाहिए, जिससे इसे यथावत प्रकाशित किया जा सके।[2]

आगे चलकर डाक्टर आफ लेटर्स के प्रसग में भी प्राय इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख है केवल एक बात नयी है। वहाँ विषय के अध्ययन को और आगे बढ़ाने के स्थान पर 'ज्ञान क्षेत्र का सीमा विस्तार अपेक्षित माना गया है। डी० लिट० की उपाधि की गुरुता को देखते हुए यह उपबन्ध उसपत ही है। अन्य विश्व विद्यालय के नियमों में भी लगभग ये ही शब्द हैं।[3]

अनुसन्धान के सामान्य उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए काटर गुड और हग लस स्केट्स ने भी अपनी पुस्तक अनुसन्धान की पद्धतियाँ (मेथडस आफ रिसर्च) में लिखा है कि ज्ञान के प्रति मनुष्य की आकाक्षा की पूर्ति उसकी विवेक शक्ति का विकास और क्षमता की वृद्धि उसके श्रम भार को कम करना कष्टों को दूर करना और अनेक प्रकार से जीवन की सुख सुविधाओं का विस्तार म ही अनुसन्धान के प्रमुख और मौलिक उद्देश्य हैं।'[4]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अनुसन्धान का उद्देश्य ज्ञान का विस्तार है। ज्ञान शब्द की निष्पत्ति ज्ञा ज्ञाने धातु से ल्युट प्रत्यय करने से होती है। *अर्थात् न ल्युट अन=ज्ञान। ज्ञान का अर्थ जानना परिचित होना सम* झना या प्रवीणता होता है। लेकिन यहाँ ज्ञान शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है। पारिभाषिक रूप में कहा जा सकता है कि उपलब्ध ज्ञान राशि में मौलिक योगदान करके उसकी अभिवृद्धि करना ही ज्ञान है। अथवा ज्ञान के क्षेत्र म किसी शाश्वत सिद्धान्त का निरूपण करना या कोई क्रम बद्ध व्यवस्थित कार्य करना ही ज्ञान कहलाता है।

यह शब्द अंग्रेजी के नालज (knowledge) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। मानविकी पारिभाषिक कोष म ज्ञान (नालज) का अर्थ इस प्रकार बताया गया

है 'वस्तुओं तथ्यों भावों या विचारों की प्रकृति के विषय में, और उनके सम्बन्धों के विषय में ऐसी परिचय प्राप्ति जो किसी हद तक व्यवस्थित और स्थायी हो को ज्ञान कहते हैं।'[5] डॉ० उदयभानुसिंह ने लिखा है कि 'सत्याथ दशन ही ज्ञान है।'[6]

वस्तुत दशन के क्षेत्र में जिसे विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) की संज्ञा दी गयी है उसे अनुसन्धान के क्षेत्र में ज्ञान माना गया है। क्योंकि ज्ञान के भी सामान्य ज्ञान और विशिष्ट ज्ञान ये दो भेद होते हैं। अनुसन्धान में सामान्य ज्ञान का उपयोग तो आंशिक रूप से ही होता है, विशिष्ट ज्ञान ही अनुसंधान में पूर्णत प्रयुक्त होता है। सामान्य ज्ञान के तथ्य एक दूसरे से निरपेक्ष तथा असम्बद्ध रहते हैं। सामान्य ज्ञान सामान्य बुद्धि पर आधारित होता है इसलिये अव्यवस्थित एव अविचारशील भी हो सकता है जब कि विशिष्ट ज्ञान इन सबका सम्बन्ध स्थापित करता है इसलिए विशिष्ट ज्ञान सामान्य अनुभवों का संघटित रूप है। सामान्य ज्ञान अनिश्चित, अयथार्थ एव अव्यवस्थित होता है जबकि विशिष्ट ज्ञान निश्चित होता है उसमें भ्रम एव संदेह का कोई स्थान नहीं होता है। दूसरे विशिष्ट ज्ञान शुद्ध एव यथार्थ परक होता है। वह अनुमान पर आधारित न होकर नियमित निरीक्षण परीक्षण तथा परिमाणात्मक मापों पर आधारित होता है। तीसरे विशिष्ट ज्ञान सुव्यवस्थित होता है। वह सामान्य अनुभव की असम्बद्ध घटनाओं का संघटित कर उनको एक शृंखला में बाँधता है।

ज्ञान जीवन में प्रेरणा प्रदान करता है तथा जीवित मनुष्यों को निर्देशित करता है कि वह अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल बना सके। अनुसन्धान के क्षेत्र में इसी ज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) का सम्यक रूप में प्रयोग किया जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ज्ञान मनुष्य को प्रेरणा प्रदान कर उसे निर्देशित करता है। अनुसन्धान कार्य पूर्ण रूपेण ज्ञान विज्ञान का विषय है। अनुसंधित्सु अपने शोध कार्य में इसी ज्ञान का विस्तार करता है। ज्ञान का सम्बन्ध मौलिकता से होता है जिसे शोध में जितनी मौलिक उद्भावनाएँ होंगी वह उतना ही ज्ञान की सीमा का विस्तार करेगा। ज्ञान के क्षेत्र में उठी हुई शंकाओं का समाधान करना अनुसन्धान का उद्देश्य है लेकिन यह उद्देश्य सामान्य माना जायेगा। जब अध्ययन अन्वेषण निरीक्षण एव परीक्षण के द्वारा शोधार्थी सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होते हैं तो अनुसन्धान के विशिष्ट उद्देश्य प्रकट होते हैं। ज्ञान सर्व प्रथम एव अग्रणी है इसलिए सामान्य है। इस ज्ञान के द्वारा जिन विशिष्ट लक्ष्यों पर पहुँचा जाता है वही अनुसन्धान के विशिष्ट उद्देश्य होते हैं।

2 **अनुसन्धान का विशिष्ट उद्देश्य**—अनुसन्धान के उद्देश्यों का वैज्ञानिक के अन्तर्गत सामान्य प्रयोजनों की परिचर्चा की गयी है। इसी प्रकार अनुसन्धान के कतिपय विशिष्ट उद्देश्य भी उल्लेख हैं। अपने विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति करके ही

अनुसन्धान वास्तविक अनुसन्धान कहलाता है। अनुस धान के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1 गुप्त सामग्री का अन्वेषण--अनुसन्धान का उद्देश्य गुप्त सामग्री की खोज करना है। अनुस धित्सुओं के विषय प्राय ऐसे ही होते हैं जिनकी अधिकाश सामग्री विलुप्त होती है और वाछित सामग्री का उपयोग न होने से शोध काय अपूर्ण रह जाता है, इसलिए उस गुप्त सामग्री की खोज निकालना अनुस धित्सु का प्रथम कर्तव्य होता है। इस सन्दर्भ में डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल कृत 'अकबरी दरबार म हिन्दी कवि शीर्षक शोध प्रबन्ध उल्लेखनीय है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अनुस धित्सु ने जहाँ एक ओर अकबरी दरबार के प्रतिष्ठित हि दी कवि सूरदास गग तथा अब्दुर्रहीम खानखाना आदि के काव्य का उल्लेख किया है वहाँ अनेक अनुलब्ध कवियों एव उनकी दुष्प्राय रचनाओ की गवेषणा भी की है। इन कवियों में मदन मोहन बीरबल (ब्रह्म) तानसेन राजा आसकरण तथा राजा टोडरमल आदि हैं। इसी परम्परा में हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (दि निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री) शीर्षक शोध प्रबन्ध डॉ० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल द्वारा लिखित है जो सन 1933 मे काशी हि दू विश्वविद्यालय से डी० लिट० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। अनुस धित्सु ने प्रस्तुत प्रबन्ध में ज्ञात और अज्ञात स तो की परम्परा को एक सूत्र में ग्रथित करके एक धारा विशेष के अ तर्गत समाविष्ट करन का प्रयास किया है। अनुसन्धान की व्यापकता क सस्पर्श के साथ अनुस धित्सु न निर्गुण कवियों की अज्ञात सामग्री एव काव्य उभव का अनुस धान किया है बडथ्वाल जी का यह प्रब ध निर्गु ण सन्त सम्प्रदाय के गवेषणात्मक अध्ययन का प्रथम प्रयास है। इस प्रकार 'गुप्त सामग्री की खोज अनुसन्धान क उद्देश्य निर्धारण की इकाई है।

2 भ्रमों का निरसन--अनुस धान करते समय अनुसन्धित्सु के सामने अनेकानेक भ्रम एव विवाद खड़े हो जाते हैं वह अपनी सूक्ष्मक्षण शक्ति स अन्वेषण करके यथाशक्ति इन भ्रमो क निरसन का प्रयास करता है भले ही यह आंशिक क्यों न हो ? यह भ्रम जन्म स्थान रचनाओं एव ज म तिथि के विषय में होता है इन्हीं भ्रमों का निवारण करके अनुसन्धित्सु अनुसन्धान के उद्देश्य में एक और कड़ी जोडता है। यथा डॉ० दीनदयाल गुप्त का शोध प्रबन्ध 'बल्लभ सम्प्रदाय के अष्ट छाप कवियों (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन' है। सन 1944 में प्रयाग विश्वविद्यालय से यह शोध प्रबन्ध डी० लिट क लिए स्वीकृत हुआ था। अपने इस शोध प्रबन्ध म गुप्त जी ने अष्टछाप कवियों के ग्रथों का निर्धारण किया है। इन कवियों के नाम से अनेक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। इनमें से बहुत सी रच नाए तो ऐसी हैं जो इन कवियों के द्वारा लिखी ही नहीं गई हैं और कुछ अनुप

लब्ध हैं। गुप्त जी ने इन रचनाओं की प्रामाणिक परीक्षा करके निर्णय किया है और इनसे सम्बन्धित भ्रमों को दूर करने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार का एक अन्य शोध प्रबन्ध 'कविवर परमानन्द दास और उनका साहित्य' डॉ॰ गोवर्धन लाल शुक्ल का है। यह प्रबन्ध सन् 1956 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से पी एच॰ डी॰ की उपाधि के लिये स्वीकृत हो चुका है डॉ॰ शुक्ल ने अपने शोध प्रबन्ध मे परमानन्ददास की जन्म तिथि, जाति, स्थान, नाम, शिक्षा दीक्षा विवाह, गृह त्याग आदि के विषय मे प्रचलित भ्रमों एवं विवादों का निरसन करके प्रामाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त परमानन्द दास के नाम से प्रचलित अन्य अनेक कृतियों को अप्रामाणिक सिद्ध करके 'परमानन्द सागर' को ही प्रामाणिक कृति माना है। इस प्रकार से डा॰ शुक्ल ने परमानन्द दास के विषय में प्रचलित अनेक भ्रमों का निरसन करके गवेषणा पूर्ण शुद्ध प्रामाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है।

3 जटिल तथ्यों की सम्यक व्याख्या—अनुसन्धान कार्य स्वयं में जटिल है। इसमें पद पद पर उलझाव आते हैं, अनेक गुत्थियों को सुलझाना पड़ता है। कभी कभी तो यह स्थिति हो जाती है कि 'ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों त्यों उरझत जात' अर्थात जिस जटिल तथ्य को हम थोड़े में सुलझाना चाहते हैं उसमें न जाने कितनी शाखायें एवं प्रशाखायें फूटती जाती हैं। इस प्रकार अनुसन्धान कार्य जटिल से जटिलतम होता जाता है। कुछ तथ्य ऐसे आ जाते हैं जिनके निराकरण में महीनों एवं वर्षों का समय लग जाता है। वस्तुत इन जटिल तथ्यों की सम्यक् रूप से व्याख्या करके ही अनुसन्धान अपने मौलिक उद्देश्य की सपूर्ति करता है। उदाहरणार्थ — डॉ॰ रामधन शर्मा का शोध प्रबन्ध 'सूरदास के (कूट पदों के विशिष्ट सन्दर्भ में) कूट काव्य का अध्ययन' सन 1954 मे पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच॰ डी॰ के लिये स्वीकृत हो चुका है। श्री शर्मा ने अपने प्रबन्ध में कूट का अर्थ लक्षण कूट काव्य में रस की परिकल्पना, कूट काव्य का प्रायोजन, वैदिक साहित्य से लेकर सूरदास तक कूट पदों (जटिल तथ्यों) की सम्यक् व्याख्या की गयी है और अन्त में कूट पदों को चुनकर उन्हें एक स्थान पर सग्रथित कर दिया है। इसी प्रकार का एक अन्य शोध प्रबन्ध डॉ॰ चन्द्रकला द्वारा प्रस्तुत तथा राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् *1954* में पी एच॰डी॰ के लिये स्वीकृत (आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद) है। इसमें भी प्रतीक जैसे जटिल तथ्यों को समझाया गया है। पंजाब विश्वविद्यालय में सन 1958 मे पी एच॰डी॰ के लिये स्वीकृति डॉ॰ संसार चन्द्र मेहरोत्रा का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी काव्य में अन्योक्ति' भी इसी प्रकार का शोध प्रबन्ध है इसमें भी अन्योक्ति की जटिलता पर सम्यक प्रकाश डाला गया है।

4 विकीर्ण तथ्यों की व्यवस्थित प्रस्तुति—अनुसन्धान के क्षेत्र मे अनेक ऐसे

विषय हैं जिनकी सामग्री यत्र तत्र बिखरी होती है। अनुसंधित्सु इस सामग्री को संकलित करके उसे व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। विकीर्ण सामग्री का समायोजन करना ही एक महान शोध है। अनेक ऐसे मन कवि हुए हैं जो कभी भी एक स्थान पर नहीं रहे। वे जिस स्थान पर रहे उसी स्थान पर कुछ न कुछ लिखते थे और छोड़ देते थे। *साहित्यिक मूल्यांकन करते समय या शोध करते समय* इस विकीर्ण सामग्री का समायोजन एक बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। अनुसंधान विकीर्ण तथ्यों को एकत्रित करता है तदुपरान्त काल क्रमानुसार उन्हें व्यवस्थित करके प्रस्तुत करता है। इस प्रस्ततीकरण के द्वारा भी अनुसंधान के उद्देश्य की पूर्ति होती है। उदाहरणार्थ सन 1958 में डॉ० तारकनाथ अग्रवाल को उनके शोध प्रबन्ध बीसल देव रास का सम्पादन पर कलकत्ता विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त हुई। उन्होंने अपने शोध प्रबन्ध में 'बीसलदेव रास का सम्पादन' में विकीर्ण तथ्यों को समायोजित किया है। डॉ० पारसनाथ तिवारी का शोध प्रबन्ध कबीर की कृतियों के पाठ और समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन' सन 1957 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डी० फिल के लिए स्वीकृत हो चुका है। प्रस्तुत प्रबन्ध में कबीर की जितनी भी रचनायें (मुद्रित व हस्तलिखित) जहाँ भी प्राप्त हुई हैं उन्हें एकत्रित करके उनके आधार पर कबीर की वाणी का प्रामाणिक व वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित किया गया है। अनुसंधित्सु ने अन्य विकीर्ण टीका टिप्पणियों को पूर्ण रूप से खोज कर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त अनेक प्राप्त प्रतियों के पाठों में जो विषमता थी उसे भी विभिन्न प्रतियों से मिला कर पाठ सम्बन्ध स्थिर किया गया है। इस कार्य को करके अनुसंधित्सु ने अनुसंधान के बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति की है।

5 पूर्व तथ्यों की नवीन व्याख्या–अनुसंधान में बहुत से तथ्य ऐसे होते हैं जिनका पिष्ट पेषण मात्र होता रहता है। प्राचीन तथ्यों की व्याख्या प्राचीनता के आधार पर ही होती रहती है, जिससे अनुसंधान में नवीनता नहीं आने पाती है। कभी कभी अनुसंधित्सु अपनी कुशाग्र बुद्धि से उन पुराने तथ्यों में भी नया चमत्कार खोज निकालता है। *उस समय वह नवीनता स्वयं में एक शोध का रूप* धारण कर लेती है और इससे अनुसंधान के बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति होती है। इसके अन्तर्गत उन शोध प्रबन्धों को लिया जा सकता है जिनमें पुराने तथ्यों की नवीन दृष्टि से व्याख्या की गयी है। यथा – डॉ० मुंशीराम शर्मा का शोध प्रबन्ध 'भारतीय साधना एवं सूर साहित्य' सन् 1951 में आगरा विश्वविद्यालय की पी एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। अपने अपने शोध प्रबन्ध में सूर काव्य में वर्णित हरि लीला की आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या प्रस्तुत की है। डॉ० शर्मा के अनुसार रास लीला में भगवान श्री कृष्ण के दृश्य सूर्य हैं तथा अन्य

गोरियाँ ग्रह तथा उपग्रह के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। इसी प्रकार से सन 1957 में आगरा विश्व विद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का शोध प्रब ध 'कामायनी में काव्य सस्कृति और दर्शन' है। डॉ० सक्सेना ने अपने इस शोध प्रब ध में कामायनी की दार्शनिक सांस्कृतिक एव वैज्ञानिक ढग से व्याख्या प्रस्तुत की है। अनेक स्थलो पर भौतिक विज्ञान के इलेक्ट्रान तथा न्यूट्रान के आधार पर नितान्त नव्य दृष्टिकोण खोज निकाले हैं जो सर्वथा पुराने तथ्यो की नवीन व्याख्या के समर्थक हैं। अत यह तथ्य भी अनुसन्धान के उद्देश्य में सहायक है।

6 नव्य सिद्धान्त प्रतिस्थापन—अनुसन्धान में कतिपय नवीन सिद्धान्तो की स्थापना से अनुस धान क वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति होती है। ऐसे अनुस धानो की सख्या अत्यल्प है, जिनमे नवीन सिद्धान्तो का प्रतिपादन हुआ है। सामान्य रूप से सभी शोध प्रब धो म कुछ न कुछ नवीनता का समावेश होता है परन्त उस नवीनता को सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है। सिद्धान्त की स्थापना करने वाले सस्कृत आचार्यों म पडितराज जगन्नाथ, विश्वनाथ कुन्तक, क्षेमेन्द्र मम्मट राज शेखर भामह दण्डी रुद्रट आन द वद्धन आदि की गणना की जाती है। पाश्चात्य विद्वानो म अरस्तू क्रोचे इलियट, रिचर्ड्स पोप प्लेटो आदि की प्रसिद्धि है। हिन्दी मे रीतिकालीन कवियो ने सिद्धान्तो की स्थापना म काफी योगदान दिया है इन आचार्यों में केशव देव भिखारी दूलह कुलपति तथा सोमनाथ आदि प्रमुख हैं। आधुनिक काल में अनेक कवियो एव लखकों ने युग विशेष का निर्धारण करके एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना की है इनमे भारतेन्दु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद निराला पन्त महादेवी तथा प्रगतिवाद प्रयोगवाद नई कविता एव अकविता का स्थापना करने वालो की गणना की जाती है। उदाहरणार्थ सन् 1937 म प्रयाग विश्व विद्यालय स डी० लिट की उपाधि के लिये स्वीकृत डा० रमाशकर शुक्ल रसाल' का शोध प्रब ध 'हिन्दी काव्य शास्त्र का विकास' है। डॉ० रसाल न अपन शोध प्रबन्ध मे काव्य शास्त्र के विकास को चार कालों मे विभक्त किया है— चारण काल धार्मिक काल कला काल (रीतिकाल) और गद्य काल (आधुनिक काल)। सस्कृत काव्य शास्त्र स लेकर रीतिकालीन कवियो की काव्य शास्त्र विषयक नवीनताओं का मूल्याकन किया है। इसके अतिरिक्त अनुसधित्सु ने काव्य शास्त्र विषयक कुछ अपने स्वतन्त्र मन्तव्य भी प्रस्तुत किये हैं। दूसरा शोध प्रबन्ध ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—शब्द शक्ति डॉ० भोला शकर व्यास का है। यह राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् 1952 में पी एच०डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत है। शोध प्रब ध में शब्द शक्ति पर नव्यतम सिद्धान्तों की स्थापना की गयी है। शब्दार्थ सम्बन्ध में उत्पत्तिवाद, व्यक्तिवाद तथा शक्तिवाद का पर

विचार किया गया है। अभिधा लक्षणा और व्यजना पर सस्कृत आचार्यों से लेकर हि दी आचार्यों तक के विभिन्न मतो की समीक्षा की गई है। अनुसधित्सु ने व्यजना को ही काव्य की कसौटी' माना है साथ ही नये सिद्धा त के रूप म अपना मत भी प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार विशिष्ट ज्ञान के अनुशीलन की परम्परा में अधिकाश शोध प्रब धकारों ने अनुसन्धान की विशिष्ट प्रवत्तियों का उपयोग किया है। अनसन्धान के सामान्य एव विशिष्ट उद्देश्यों में यही विशिष्ट ज्ञान ही अनुस धान की वास्त विक प्रक्रिया है जिसका प्रतिपालन प्रारम्भिक प्रब धो में भी हुआ है। उपय क्त विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विशिष्ट ज्ञान के आधार पर ही अनु सन्धान की प्रवत्तियो का भी विकास होता है। इसलिए विशिष्ट ज्ञान को ही इस क्षेत्र में महत्वपूण माना जायेगा।

साहित्यिक अनुसन्धान पद्धति के सम्बन्ध में भ्रम और विवाद

हिन्दी साहित्य के अदयतन उपलब्ध ग्रन्थ ही अनुसन्धायिनक प्रणाली के आधार रहे हैं। लेकिन इन शोध कार्यो में पद्धति सम्बन्धी एक रूपता नही है। साहित्यिक अनुस धान के क्षेत्र में विद्वानों ने जिन पद्धतियो को अपनाया है उनमें से वैज्ञानिक पद्धति पर बल देने वाले विद्वानो की सख्या अधिक है। अत अनुस धान की पद्धतियों को लेकर अनेक भ्रम और विवाद उत्पन्न हो गये हैं। यद्यपि इस बीच अनसन्धान की पद्धतियों पर अन्यान्य लेखों निबन्धों एव पस्तकों के माध्यम से पर्याप्त प्रकाश डाला गया है तथापि पद्धति सम्ब धी भ्रम और विवाद ज्यो के त्यो बने हुए हैं। किसी भी विद्वान ने इन पद्धतियो के स्पष्टीकरण का प्रयास नही किया है। जिस वज्ञानिक' शब्द का प्रयोग अधिकाश विद्वानो ने किया है वह स्वय में भ्रामक एव विवादास्पद है। क्योंकि साहित्यिक अनुस धानो में वज्ञानिक पद्धति के अपनाने का आग्रह तो बहुत से विद्वानो ने किया है, लेकिन वज्ञानिक पद्धति की निर्मित की दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। अनुसन्धान के क्षेत्र में उसके उपयोग का सकेत भी कतिपय विद्वानो ने ही किया है– डा० उदयभानु सिंह के अनुसार अनुसन्धान स्वरूपत: विज्ञान प्रधान है बुद्धि प्रधान है चिन्तन स ओत प्रोत है। उसकी सम्पूण प्रविधि प्रक्रिया वज्ञानिक है।[7] डा० सिंह ने साहितिक अनुसन्धान की पद्धति को वज्ञानिक पद्धति माना है। विज्ञान मख्यत भौतिक रसायन एव गणितीय विज्ञान के लिये प्रयुक्त होता है। जबकि साहित्यिक अनुसन्धान में भौतिक, रसायन एव गणित की पद्धित का सम्यक उपयोग नही हो पाता है। डॉ० सिंह ने वज्ञानिक पद्धति के सम्ब ध में अधिक दृष्टिपात नहीं किया है।

आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी अनुसन्धान की वज्ञानिकता का समथन करते हुए कहा है शोध काय केवल तथ्यों का निर्जीव पुलिन्दा नहीं होना

चाहिए। उसमें रचनात्मक प्रतिभा का स्पर्श होना बहुत आवश्यक है। निःसन्देह वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण होना चाहिए और वैज्ञानिक पद्धति का मूलमन्त्र है परिणामों के प्रति अनासक्ति।[8]

आचार्य द्विवेदी जी ने भी प्रथम तो वैज्ञानिक पद्धति के अनुसरण पर जोर दिया है लेकिन वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण कैसे किया जाय इस बात पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। इसके उपरान्त परिणामों के प्रति अनासक्ति को वैज्ञानिक पद्धति का मूलमन्त्र माना है सामान्य रूप से अनासक्ति को तटस्थता या वस्तु निष्ठता माना जाता है। यह वस्तु निष्ठता वैज्ञानिक पद्धति का अन्तिम बिन्दु माना जा सकता है। यदि अनुसन्धाता के मन में पहले से ही तटस्थता या वस्तु निष्ठता का भाव होगा तो अनुसन्धान की पद्धति में निष्पक्षता का भाव आ ही नहीं सकता है। अनुसन्धाता अपना कार्य करता रहता है लेकिन परिणामों के प्रति तटस्थता का भाव पहले से नहीं रखता है। अन्त में जो भी परिणाम निकलता है वही मान्य होता है। उदाहरणार्थ–यदि हम कबीर को पहले से ही ज्ञानाश्रयी शाखा का सन्त मान लेते हैं तो यह साहित्यिक अनुसन्धान की पद्धति नहीं होगी। इसके लिए हम उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनुशीलन करेंगे और इस अध्ययन के आधार पर वे जिस शाखा के सन्त सिद्ध होंगे वही मान्य होगा।

डॉ० गुलाबराय के अनुसार–अनुसन्धान वैज्ञानिक विषयों का होता है और साहित्यिक विषयों का भी किन्तु दोनों की पद्धति और उसके स्वरूप में विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर यदि है तो विषय की आवश्यकताओं और प्रयोग पद्धति का। दोनों में ही सूक्ष्म और सोद्देश्य निरीक्षण के साथ परीक्षण और प्रयोग के पश्चात गम्भीर विवेचन रहता है जिसमें विश्लेषण घटनाओं उदाहरणों और विचार बिन्दुओं का। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुसन्धान की भाँति ही साहित्यिक अनुसन्धान में नवार्जित ज्ञान को पूर्वार्जित ज्ञान के आलोक में व्याख्या करके संगति बिठाई जाती है। विषय चाहे जो कुछ हो उसका विवेचन में निष्पक्ष वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग उसको स्वरूपता प्रदान कर उसके नाम को सार्थक करता है।[9]

बाबू गुलाबराय ने वैज्ञानिक विषयों और साहित्यिक विषयों की अनुसन्धान पद्धतियों में विशेष अन्तर नहीं माना है। जबकि वैज्ञानिक विषयों के शोध कार्य की पद्धति निश्चित तथा साहित्यिक शोध कार्य की पद्धति अनिश्चित होती है। विज्ञान की पद्धति में दो दो चार ही होगा जबकि साहित्यिक अनुसन्धान में यह आवश्यक नहीं है, वह चार भी मान सकता है और बाइस भी। विज्ञान की पद्धति किसी वस्तु को देखकर उसका ठीक-ठीक विवेचन करती है जबकि साहित्यिक अनुसन्धान की पद्धति में कल्पना का आश्रय सदैव लिया जाता है। विज्ञान की पद्धति में तुलसीदास का जन्म एक निश्चित् स्थान पर निश्चित् समय (घण्टा, मिनट,

सेकेण्ड सहित) में बताया जायेगा जबकि साहित्यिक अनुसंधान की पद्धति में चार छै घण्टे एवं चार छै मील का अंतर कोई महत्व नही रखता है। डा० गुलाबराय ने अपने मत में प्रत्येक विषय के अनुसन्धान म निष्पक्ष वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग बताया है। लेकिन वैज्ञानिक पद्धति क्या होती है और उसका उपयोग किस प्रकार से किया जाना चाहिये इसका विवेचन कहीं नहीं किया है। वैज्ञानिक पद्धतियों एवं उनका उपयोग जाने बिना साहित्यिक अनुसन्धान हेतु प्रयुक्त करना असमीचीन प्रतीत होता है।

डॉ० हरवंश लाल शर्मा का तर्क है कि–'अनुसंधान का काय वैज्ञानिक काय है और इसमे विज्ञान के ढंग के ही विधि विधान और दृष्टिकोण अपेक्षित हैं।

हिन्दी में जो अनुसंधान काय हो रहा है उसकी कोई निश्चित परम्परा और प्रणाली नही है।'

सबसे बड़ी बात जो हमारे अनुसन्धान काय में खटकने वाली है वह टेकनीक की है जो इस प्रसाद की नीव कही जा सकती है। हमारा विषय बडा रोचक और महत्वपूर्ण हो सकता है। सामग्री भी हम पर्याप्त जुटा लेते हैं, लेकिन कला में भी हम प्रवीण हैं परन्तु व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से हम इन सबका उपयोग नही कर सकते।[10]

एक अन्यत्र स्थान पर डा० शर्मा ने लिखा है कि इसमें उच्चकोटि की वैज्ञानिकता लाघव और पूर्णता होनी है।[11]

डॉ० शर्मा का कथन आज भी विवादास्पद बना हुआ है। क्योंकि न तो आपने विज्ञान के विधि विधानो पर ही प्रकाश डाला है और न वैज्ञानिक प्रणाली ही निश्चित की है। यदि अनुसन्धान काय वैज्ञानिक है तो विज्ञान की समस्त पद्धतियाँ यथा–(भौतिक विज्ञान रसायन विज्ञान एवं गणित आदि की समस्त पद्धतियाँ प्रयुक्त होनी चाहिए, लेकिन ऐसा होता नही है। अपने दूसरे कथन मे वे स्वयं विवादग्रस्त हैं, क्योंकि उन्होंने कहा है कि हिन्दी मे जो भी अनुसंधान काय हो रहा है उसकी कोई निश्चित् परम्परा और प्रणाली नहीं है। टेकनीक को उन्होंने अनुसन्धान रूपी प्रासाद की नीव माना है लेकिन इस नीव को स्थिरता नही प्राप्त हुई है जब तक नींव स्थिर नही होगी तब तक प्रासाद का निर्माण काय प्रारम्भ ही नही हो सकता अत टेक्नीक पर प्रकाश डालना नितांत आवश्यक है। डा० शर्मा के कथन में एक और भ्रम यह है कि अनुसंधान के क्षेत्र में व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से सामग्री का उपयोग करना। कतिपय विद्वानों ने व्यवस्थित को ही वैज्ञानिक माना है लेकिन डा० शर्मा ने "व्यवस्थित और वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग तो किया है परन्तु इन शब्दो का स्पष्टीकरण नहीं किया है।

डा० शर्मा के अनुसार साहित्यिक अनुसन्धान में लाघव और पूर्णता की

बात तो उपयुक्त है पर उच्चकोटि की वैज्ञानिकता पुनः विवादग्रस्त कर दी है।

डा० नगेन्द्र के अनुसार वैज्ञानिक तटस्थता और उसकी वैज्ञानिक प्रविधि एवं प्रक्रिया का महत्व अनुसंधान के लिए अनिवार्य है।'[12]

डॉ० नगेन्द्र ने भी साहित्यिक अनुसन्धान के लिए वैज्ञानिक तटस्थता एवं प्रविधि प्रक्रिया को अनिवार्य माना है। इससे प्रतीत होता है कि अनुसंधान में वैज्ञानिक प्रणाली का होना नितान्त आवश्यक है। लेकिन सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान में वैज्ञानिक तटस्थता (वस्तु निष्ठता) का होना आवश्यक नहीं है। और न ही वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग भी सर्वथा आवश्यक होता है। डॉ० नगेन्द्र ने भी वैज्ञानिक तटस्थता प्रविधि एवं प्रक्रिया के उपयोग की चर्चा तो की है पर तु न तो वैज्ञानिकता का आशय ही स्पष्ट किया है और न वैज्ञानिक प्रणाली पर ही सम्यक रूप से प्रकाश डाला है। ऐसी भ्रमात्मक स्थिति के कारण अनुसंधान के क्षेत्र में भ्रम एवं विवादों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। अन्यान्य विद्वानों एवं मनीषियों ने जहाँ वैज्ञानिक प्रणाली के उपयोग पर बल दिया है वहीं वैज्ञानिक प्रणाली के स्पष्टीकरण में उतनी ही कृपणता दिखलाई है। इसी से अनुसंधान की पद्धतियों में भ्रम है।

डा० सत्येन्द्र ने भी वैज्ञानिकता का समर्थन करते हुए स्पष्ट किया है 'किसी ग्रन्थ का वैज्ञानिक संशोधन पूर्वक सम्पादन भी एक महत्वपूर्ण विषय माना जाना चाहिए। अनुसन्धित्सु वैज्ञानिक शोध की विधियों से अपरिचित है। अनुसंधान में वैज्ञानिक सिद्धान्तों की चर्चा हो।'[13] इसी क्रम में डॉ० सत्येन्द्र ने लिखा है कि सबसे पहली तो अनुसंधान प्रणाली की स्थिर प्रक्रिया विषयक अभाव की है। यह बड़े खेद की बात है कि हम इतने विशद अनुसन्धान कार्य के उपरान्त भी अनुसंधान की एक सामान्य प्रणाली स्थिर नहीं कर पाये हैं। तटस्थता तो दीख पड़ती है पर वैज्ञानिक प्रामाणिकता का अभाव मिलता है। सामान्य ग्रंथों और थीसिस ग्रंथों में यह अन्तर है कि थीसिस ग्रंथों में तटस्थता और वैज्ञानिकता आवश्यक होती है।[14]

डा० सत्येन्द्र ने वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों के सम्बन्ध में तीन मत प्रस्तुत किये हैं—

1 किसी ग्रंथ का वैज्ञानिक विधि से संशोधन एवं सम्पादन होना चाहिए
2 वैज्ञानिक शोध की विधियों से सुपरिचित होना चाहिए।
3 वैज्ञानिक सिद्धान्तों की चर्चा करनी चाहिए।

डा० सत्येन्द्र ने उपर्युक्त तीनों मतों में वैज्ञानिक विधि 'शब्द' का प्रयोग किया है। लेकिन वैज्ञानिक विधि क्या होती है किसी ग्रंथ का वैज्ञानिक विधि से संशोधन एवं सम्पादन कैसे किया जाय? शोध की वैज्ञानिक विधियाँ क्या होती

सेकेण्ड सहित) में बताया जायेगा जबकि साहित्यिक अनुसन्धान की पद्धति में चार छै घण्टे एव चार छै मील का अन्तर कोई महत्व नहीं रखता है। डा० गुलाबराय ने अपने मत में प्रत्येक विषय के अनुसन्धान म निष्पक्ष वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग बताया है। लेकिन वैज्ञानिक पद्धति क्या होती है और उसका उपयोग किस प्रकार से किया जाना चाहिये इसका विवेचन कहीं नहीं किया है। वैज्ञानिक पद्धतियों एव उनका उपयोग जाने बिना साहित्यिक अनुसन्धान हेतु प्रयुक्त करना असमीचीन प्रतीत होता है।

डॉ० हरवंश लाल शर्मा का तर्क है कि—'अनुसन्धान का कार्य वैज्ञानिक कार्य है और इसमे विज्ञान के ढग के ही विधि विधान और दृष्टिकोण अपेक्षित है।

हिन्दी में जो अनुसन्धान कार्य हो रहा है उसकी कोई निश्चित परम्परा और प्रणाली नहीं है।'

सबसे बडी बात जो हमारे अनुसन्धान कार्य में खटकने वाली है वह टेक्नीक की है जो इस प्रसाद की नींव कही जा सकती है। हमारा विषय बडा रोचक और महत्वपूर्ण हो सकता है। सामग्री भी हम पर्याप्त जुटा लेते हैं लेखन कला में भी हम प्रवीण हैं परन्तु व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढग से हम इन सबका उपयोग नहीं कर सकते।[10]

एक अन्यत्र स्थान पर डा० शर्मा ने लिखा है कि इसमे उच्चकोटि की वैज्ञानिकता लाघव और पूर्णता होती है।'[11]

डॉ० शर्मा का कथन आज भी विवादास्पद बना हुआ है। क्योंकि न तो आपने विज्ञान के विधि विधानो पर ही प्रकाश डाला है और न वैज्ञानिक प्रणाली ही निश्चित का है। यदि अनुसन्धान कार्य वैज्ञानिक है तो विज्ञान की समस्त पद्धतियाँ यथा—(भौतिक विज्ञान रसायन विज्ञान एव गणित आदि की समस्त पद्धतियाँ प्रयुक्त होनी चाहिए लेकिन ऐसा होता नहीं है। अपने दूसरे कथन में व स्वय विवादग्रस्त हैं, क्योंकि उ होने कहा है कि हिन्दी म जो भी अनुसन्धान कार्य हो रहा है उसकी कोई निश्चित् परम्परा और प्रणाली नहीं है। टक्नीक को उन्होंने अनुसन्धान रूपी प्रासाद की नींव माना है लेकिन इस नींव को स्थिरता नहीं प्राप्त हुई है जब तक नींव स्थिर नहीं होगी तब तक प्रासाद का निर्माण कार्य प्रारम्भ ही नहीं हो सकता अत टेक्नीक पर प्रकाश डालना नितात आवश्यक है। डा० शर्मा के कथन में एक और भ्रम यह है कि अनुसन्धान के क्षेत्र में 'व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढग से सामग्री का उपयोग करना।' कतिपय विद्वानों ने व्यवस्थित को ही वैज्ञानिक माना है लेकिन डा० शर्मा ने 'व्यवस्थित और वैज्ञानिक' शब्दों का प्रयोग तो किया है परन्तु इन शब्दो का स्पष्टीकरण नहीं किया है।

डा० शर्मा के अनुसार साहित्यिक अनुसन्धान में लाघव और पूर्णता की

बात तो उपयुक्त है पर उच्चकोटि की वैज्ञानिकता' पुन विवादग्रस्त कर दी है।

डा० नगेन्द्र क अनुसार 'वनानिक तटस्थता और उसकी वैज्ञानिक प्रविधि एव प्रक्रिया का महत्व अनुसन्धान के लिए अनिवाय है।'[12]

डॉ० नगेन्द्र ने भी साहित्यक अनुसन्धान के लिय वनानिक तटस्थता एव पविधि प्रक्रिया को अनिवाय माना है। इससे प्रतीत होता है कि अनुसन्धान म वज्ञानिक प्रणालो का होना नितान्त आवश्यक है। लेकिन सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि अनुसन्धान म वैज्ञानिक तटस्थता (वस्तु निष्ठता) का होना आवश्यक नही है। और न ही वनानिक प्रणाली का उपयोग भी सवथा आवश्यक होता है। डा० नगेन्द्र ने भी वनानिक तटस्थता प्रविधि एव प्रक्रिया क उपयोग की चर्चा तो की है परन्तु न तो वैज्ञानिकता का आशय ही स्पष्ट किया है और न वैज्ञानिक प्रणाली पर ही सम्यक रूप स प्रकाश डाला है। ऐसी भ्रमात्मक स्थिति मे कारण अनुसन्धान के क्षेत्र म भ्रम एव विवादो का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। अन्य विद्वानो एव मनीषियो न जहाँ वज्ञानिक प्रणाली क उपयोग पर बल दिया है वहाँ वज्ञानिक प्रणाली के स्पष्टीकरण में उतनी ही कृपणता दिखलाई है। इसी से अनुसन्धान की पद्धतियो म भ्रम है।

डा० सत्येन्द्र ने भी वनानिकता का समयन करते हुए स्पष्ट किया है 'किसी ग्रन्थ का वैनानिक सशोधन पूवक सम्पादन भी एक महत्वपूण विषय माना जाना चाहिए। 'अनुसंधित्सु वज्ञानिक शोध की विधियो स अपरिचित है। अनुसन्धान में वनानिक सिद्धान्तो की चर्चा हो।'[13] इसी क्रम म डॉ० सत्येन्द्र न लिखा है कि सबस पहली तो अनुसन्धान प्रणालो की स्थिर प्रक्रिया विषयक अभाव की है। यह बडे खेद की बात है कि हम इतने विशद अनुसन्धान काय के उपरान्त भी अनुसन्धान की एक सामान्य प्रणाली स्थिर नही कर पाये हैं। तटस्थता तो दीख पडती है पर वनानिक प्रामाणिकता का अभाव मिलता है। सामान्य ग्रथो और थीसिस ग्रंथो म यह अन्तर है कि थीसिस ग्रथो म तटस्थता और वनानिकता आवश्यक होती है।[14]

डा० सत्येन्द्र न वनानिक अनुसन्धान पद्धतियो मे सम्बन्ध में तीन मत प्रस्तुत किय हैं—

1 किसी ग्रंथ का वनानिक विधि से सशोधन एव सम्पादन होना चाहिए
2 वज्ञानिक शोध की विधियों स सुपरिचित होना चाहिए।
3 वनानिक सिद्धान्तो की चर्चा करनी चाहिए।

डॉ० सत्येन्द्र न उपयुक्त तीनो मतो म वज्ञानिक विधि शब्द का प्रयोग किया है। लकिन वज्ञानिक विधि क्या होती है किसी ग्रंथ का वज्ञानिक विधि से सशोधन एव सम्पादन कसे किया जाय ? शोध की वज्ञानिक विधियाँ क्या होती

हैं ? जिनसे अनुसंधित्सु को सुपरिचित होना चाहिए तथा अनुसन्धान के वज्ञानिक सिद्धा त क्या क्या हो सकते हैं इत्यादि बातो पर सुधी लेखक ने स्वय कोई चर्चा ही नही की है। अत अनुस धान पद्धति के सम्ब ध म उत्पन्न भ्रमों एव विवादो का सम्यक रूप स निरसन न ी हो सका है। इन लेखो के अध्ययन से पाठक यह निश्चित् ही नही कर पाते हैं कि साहित्यिक अनुसन्धान की पद्धतियाँ क्या होनी चाहिए ? और न उनके भ्रमो का निराकरण ही हो पाता है।

अपने दूसरे मत में डा० सत्ये द्र ने अनुसन्धान की प्रणाली स्थिर न होने पर खेद भी प्रकट किया है। उनका कहना है कि एक ओर तो अनुस धान कायदुत गति से आगे बढ रहा है और दूसरी ओर उसकी प्रविधि एव प्रक्रिया का सवथा अभाव है। इतनी विशद प्रगति के उपरा त अनुस धान की पद्धतियो का निश्चित होना नितान्त आवश्यक है।

अनस धान की पद्धतियो के सम्ब ध में अधिकाश विद्वानो क विचारो में एकरूपता नही है। प्राय सभी ने वज्ञानिक पद्धति को सवश्रेष्ठ स्वीकार किया है, लेकिन साहित्यिक अनुस धान में विज्ञान की किन पद्धतियो का उपयोग किया जाय यह बात अब तक अस्पष्ट है। विज्ञान के क्षेत्र में भौतिक विज्ञा रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान साख्यिकीय एव गणितीय पद्धतियो का आकलन किया जाता है लेकिन इन पद्धतियो का सम्यक उपयोग साहित्यिक अनुस धान में नही हो पाता है, क्योकि विज्ञान की पद्धतियो म परिणाम निश्चित होते हैं वस्तुनिष्ठता का भाव होता है जबकि साहित्यिक अनुस धान मे परिणामो क प्रति अनिश्चितता ही रहती है। बहुत कुछ काय तो कल्पना के सहारे चलता है। अत साहित्यिक अनुस धान म वज्ञानिक पद्धतियो का उपयोग आशिक ही होता है। सामाजिक विज्ञानो की पद्ध तियो का उपयोग साहित्यिक अनुस धान में किया जाता है क्योकि सामाजिक विज्ञानो का अध्ययन क्षेत्र मनुष्य है और इसकी पद्धतियाँ किसी एक विचारधारा क अ तगत सीमित नही रहती है।

सामाजिक विज्ञान की गुणात्मक पद्धति का अधिकतम उपयोग साहित्यिक अनुस धान में किया जा सकता है। गुणात्मक पद्धति में तीन तत्व (विवरणात्मक साक्षात्कार वयक्तिक अध्ययन एव अवलोकन विधि) प्रमुख होते हैं। इ ही तत्वो की आधारशिला पर साहित्यिक अनुसन्धान टिका रहता है। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय तथा काय स्थल अध्ययन पद्धति प्रायोगिक तथा सर्वेक्षण पद्धति विकास वादी पद्धति (ऐतिहासिक पद्धति) तुलनात्मक पद्धति तथा दाशनिक पद्धति का उपयोग साहित्यिक अनुस धान में पूणरूपेण किया जाता है। लेकिन वज्ञानिक पद्धतियो का उपयोग ज्यों का त्यो नही किया जा सकता। वस्तुत वज्ञानिक पद्धति बौद्धिक परिविस्तार क कारण निर तर परिवतनशील बनी रहती है। इसलिए

साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में इसके विनियोग के पूर्व साहित्य के शाश्वत मूल्यों के रक्षण हेतु वैज्ञानिक तत्वों में यत्किंचित परिवर्तन आवश्यक है।

साहित्यिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों का उपयोग और उसकी सीमाएँ

वैज्ञानिक अनुसंधान का विकास—मानव जीवन में विज्ञान ने अभी हाल ही में एक तात्विक स्थान ग्रहण किया है। वस्तुतः विज्ञान की कहानी अति प्राचीन है। यदि हम अतीत पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य सृष्टि के आदि काल से ही कुछ न कुछ वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करता रहा है भले ही वह सिद्धान्तों के रूप में अपने को व्यक्त न कर पाता हो। अस्त्र शस्त्रों का उपयोग धातु के प्रयोग खेती करने नाव चलाने आदि में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का व्यवहार तो होता ही था। भारत में वैज्ञानिक चिन्तन भी बहुत प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गया था। योरोप का सम्पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान गणित पर आधारित है किन्तु गणित में शून्य की खोज प्राचीन भारतीय विद्वानों ने ही की थी। पाश्चात्य विद्वान ए० एल० बाशम ने लिखा है कि अंक प्रणाली के विषय में पश्चिमी जगत भारत का चिर ऋणी है। जिन आविष्कारों एवं नवानुसंधानों पर पश्चिमी संसार इतना गर्व करता है उनमें से अधिकांश गणित के किसी विकसित सिद्धान्त के अभाव में असम्भव थे और यदि योरोप रोमन संख्याओं के असंगत सिद्धान्त से बंध जाता तो यह भी सम्भव न होता। वह अज्ञात व्यक्ति जो इस नवीन सिद्धान्त का जन्मदाता था, संसार के विचारानुसार महात्मा बुद्ध के पश्चात् हुआ था और वह भारत माँ का सबसे महत्वपूर्ण पुत्र था। इसी प्रकार भौतिक शास्त्र का परमाणु सिद्धान्त भारत में ई० पू० सातवीं शताब्दी में कणाद ऋषि ने प्रस्तुत कर दिया था। रसायन शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र में अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हो चुकी थीं किन्तु परतन्त्रता की दीर्घ अवधि ने वैज्ञानिक चिन्तन को अवरुद्ध कर दिया। इसके विपरीत योरोप की परिस्थितियाँ ऐसी अनुकूल हो गईं कि वहाँ के निवासी वैज्ञानिक ज्ञान में अग्रगण्य हो गये। आज संसार जिस विज्ञान के प्रकाश से आलोकित है, उसके लिए हम योरोपीय मेधा के ऋणी हैं लेकिन इसके साथ यह कहना अनुचित न होगा कि आज का वैज्ञानिक दृष्टिकोण उस पुरातन ज्ञान की अनावरित धूल हटायी हुई तथा समय और परिस्थितियों के अनुभव से चमकायी हुई वह स्वर्ण मूर्ति ही है जिसे समय समय पर अनेक मानव मस्तिष्क और महान आत्माओं ने सँवारा सुधारा और दृष्टि भरने के लिये सामने उठाकर रखा।'

विश्व विख्यात वैज्ञानिक डा० बर्ट्रेण्ड रसल ने लिखा है कि मानव जीवन में विज्ञान ने अभी हाल ही में एक तात्विक स्थान ग्रहण किया है। कला का बहुत अधिक विकास जैसा कि हम गुफाओं के प्रशंसनीय चित्रों से मालूम होता है, अति-

हिम युग के पहले ही हो चुका था। धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में इतने विश्वास पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता फिर भी बहुत सम्भव है कि धर्म का विकास भी कला के साथ साथ ही हुआ हो। अनुमानतः कला और धर्म दोनों लगभग 80 हजार वर्षों से मौजूद हैं। किन्तु एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में विज्ञान का प्रारम्भ गलीलियो के समय से हुआ और इसीलिए विज्ञान का अस्तित्व लगभग 300 वर्ष पुराना है।[15]

वस्तुतः वैज्ञानिक चिन्तन का विकास यूरोप के पुनर्जागरण काल से प्रारम्भ हो गया था। यह काल 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के बीच का माना जाता है। तब से अब तक अबाध गति से वैज्ञानिक प्रगति हो रही है। इसी अवधि में कापर निकस ने यह सिद्धान्त संसार के समक्ष रक्खा कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है। ब्राहे ने यह बताया कि ग्रह और उपग्रह एक वृत्त में घूमते हैं। गिलबर्ट ने चुम्बक की आकर्षण शक्ति का पता लगाया। गलीलियो ने कॉपर निकस के मत को सिद्ध करके वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति की एक नवीन प्रणाली प्रतिष्ठित की। इसके पश्चात् न्यूटन ने पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का आविष्कार किया। विसेलिस ने 1543 में शल्य क्रिया (सर्जरी) का खोज पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया। हार्वे ने शरीर में रक्त संचालन की क्रिया का पता लगाया। लीवेनहॉक ने जीवाणुओं के रहस्य का उद्घाटन किया। चार्ल्सवल और मेगेण्डी ने स्नायुओं के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण खोज की। थामसयंग और हेल्म होल्ज ने दृष्टि और श्रवण क्षेत्र सम्बन्धी अनुसन्धान किये। लैप्लेस ने सृष्टि के विकास के सम्बन्ध में यह मत प्रतिपादित किया कि सृष्टि के प्रारम्भ में पहले केवल गैस थी। लवोशियर ने प्राणियों की श्वास क्रिया के सम्बन्ध में तथ्य प्रस्तुत किये। प्रीस्टले ने आक्सीजन गैस के अस्तित्व का ज्ञान कराया। बाद में डार्विन ने विकासवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत करके संसार को विस्मित कर दिया। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, फ्रायड के मनोविश्लेषण वाद, आइन्सटीन के सापेक्षवाद ने संसार की सम्पूर्ण व्यवस्था को झकझोर दिया है। अब तो विज्ञान की प्रगति बहुत तीव्र हो गई है। ब्रिटेन के प्रख्यात वैज्ञानिक सर बर्नार्ड लावेल ने लिखा है कि विज्ञान के विकास के प्रत्येक क्षेत्र में गत 20 वर्षों की उपलब्धियाँ सभी तर्क संगत आशाओं से कहीं आगे बढ़ गई हैं। ब्रह्माण्ड के सुदूर भाग, द्रव्य के मूल अवयव, जीवन के विकास का नियन्त्रण करने वाली जैविक प्रक्रिया, वैज्ञानिक तकनीकों की वृद्धि किसी भी क्षेत्र के अध्ययन की बात की जाय तो प्रगति की विशालता हमें झकझोर डालती है। विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य के जीवन को आमूल परिवर्तित कर दिया है। बर्टेण्ड रसल ने लिखा है कि 'पिछले डेढ़ सौ वर्षों के दौरान ही विज्ञान ने सामान्य जनता के दैनिक जीवन का नियमन निर्धारण करने वाले एक महत्वपूर्ण

तत्व का रूप धारण किया है। इस छोटी सी अवधि मे विज्ञान ने जो महान परिवर्तन किए हैं, वे प्राचीन मिश्र युग से अब तक होने वाले परिवर्तनो से कहीं बड़े और महत्वपूर्ण हैं। विज्ञान पूर्व संस्कृति के पाँच हजार वर्षों की अपेक्षा विज्ञान के ये डेढ़ सौ वर्ष अधिक क्रांतिकारी सिद्ध हुए हैं।' वह आगे कहते हैं कि आधुनिक काल में महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हमारे विचारों पर हमारी आशाओं पर, हमारी इच्छाओं पर और हमारी आदतो पर विज्ञान का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है और कम से कम आने वाली कई शताब्दियो तक उसके बढ़ते जाने की सम्भावना है।'[16]

विज्ञान की प्रमुख पद्धतियाँ--विज्ञान ने जिन पद्धतियो को जन्म दिया है वे अपने क्षेत्र मे एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। इन्ही पद्धतियों की विशिष्टता के कारण ही विज्ञान प्रत्येक विषय मे समाहित में समाहित है तथा प्रत्येक विषय मे इन पद्धतियो का कुछ न कुछ उपयोग अवश्य होता है। इसीलिए विज्ञान सर्वोत्कृष्ट है। यहाँ विज्ञान की कुछ प्रमुख पद्धतियो का निरूपण किया गया है जो इस प्रकार है--

1 **प्रायोगिक पद्धति**--इस पद्धति को जन्म देने वाले प्रथम वैज्ञानिक गलीलियो गलिली हैं। गैलीलियो को केवल इस पद्धति का ही नही बल्कि सम्पूर्ण विज्ञान का जनक माना जाता है। भौतिक शास्त्र गलीलियो की ही देन है गैलीलियो ने प्रायोगिक पद्धति का अपना कर सत्य की खोज की ओर अपने पूर्ववर्ती विद्वान अरस्तू के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो का खण्डन किया। उनके पूर्व अरस्तू ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है दस पौण्ड तथा एक पौण्ड वजन के दो गोले यदि एक ही ऊँचाई से नीचे गिराये जाँय तो एक पौण्ड वाले गोले की तुलना में दस पौण्ड वाले गोले को नीचे आने में दशमांश समय ही लगेगा। अरस्तू का यह सिद्धान्त दो हजार वर्षों से मान्य चला आ रहा था। अरस्तू पर अखण्ड विश्वास एवं श्रद्धा के कारण किसी ने इसकी सत्यता का पता लगाने का प्रयास ही नही किया। गलीलियो ने बड़े साहस के साथ एक मीनार पर चढकर इसका परीक्षण किया और दोनो गोलो को एक साथ जमीन पर गिरा देखकर अरस्तू के सिद्धान्त को अप्रावहारिक सिद्ध कर दिया।

इसी प्रकार गलीलियो ने कापर निकस के मत की पुष्टि की। कापर निकस ने गलीलियो के पूर्व यह घोषित किया था कि पृथ्वी एक ग्रह है। पृथ्वी तथा ७ व ग्रह सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करते रहते हैं। लेकिन उस समय कापर निकस की इस बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया था। गलीलियो ने अनवरत परिश्रम करके एक दूरबीन बनायी और बार बार प्रयोग करके ग्रहो की गति विधि का अध्ययन किया तथा प्रत्यक्ष प्रमाणों के द्वारा कापर निकस के सिद्धान्त को पुष्ट

किया। गलीलियो ने अपनी इस पद्धति के द्वारा अब तक चले आ रहे धर्म ग्रन्थो के अनेक अंध विश्वासो का खण्डन किया क्योंकि मध्ययुगीन काल का सारा ज्ञान अनुमान पर आधारित था उसका प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण से कोई सम्बन्ध नही था। गलीलियो ने इस प्रयोग पद्धति के द्वारा वैज्ञानिक अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की।

इसी प्रकार से गलीलियो ने अनेक वैज्ञानिक खोजें प्रस्तुत की। सर्वप्रथम उसने ग्रह विज्ञान मे कापर निकस के मत को प्रायोगिक विधि से पुष्ट किया तथा यान्त्रिकी के अध्ययन मे गणितीय प्रायोगिक विधि का पहली बार प्रयोग किया। तापक्रम की माप के लिए पहला तापमापी बनाया समय की माप के लिये पेण्डलम वाली घडी का आविष्कार किया ग्रहों को देखने के लिये विशेष प्रकार की दूरबीन बनायी गणित के क्षेत्र मे गति विज्ञान के महत्वपूर्ण नियम खोजे तथा ज्वार भाटे के सम्बन्ध में नये सिद्धान्त प्रतिष्ठित किये। इस पद्धति के द्वारा की गई समस्त खोजें निश्चितता की ओर थी। गैलीलियो की इस नवीन पद्धति ने सम्पूर्ण चिन्तन को एक नय धरातल पर खडा होने के लिये विवश किया है। आज प्रयोग और पर्यवेक्षण की पद्धति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र तथा ज्ञान की प्रत्येक शाखा में प्रचलित हो गई है। अत प्रायोगिक पद्धति विज्ञान की एक निर्भ्रान्त पद्धति है यह पद्धति अनुसन्धान के क्षेत्र म सत्यता तक पहुचने का प्रथम सोपान है।

साहित्यिक अनुसन्धान मे प्रायोगिक पद्धति का उपयोग—प्रायोगिक पद्धति मुख्य रूप से भौतिक विज्ञान की पद्धति है। वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र मे इसका प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है लेकिन साहित्यिक अनुसन्धान मे सम्यक रूप से इसका उपयोग नही किया जा सकता है क्योंकि यह पद्धति प्रयोगो पर आधारित है। साहित्यिक अनुसन्धान म प्रयोगो की कोई आवश्यकता नही होती है इसके स्थान पर पर्यवेक्षण पद्धति का उपयोग किया जाता है। प्रायोगिक पद्धति का दूसरा नाम प्रयोगशाला पद्धति भी माना है। इसमें वैज्ञानिक प्रयोगशाला म बैठकर यन्त्रो की सहायता से कृत्रिम रूप से प्रस्तुत परिस्थितियो का अध्ययन करता है। साहित्यिक अनुसन्धान म ऐसी कोई खोज नहीं है जिसे टेस्ट ट्यूब म डालकर परीक्षित किया जाय। अत अधिकाश साहित्यिक एव सामाजिक घटनायें प्रायोगिक अध्ययन के अनुपयुक्त होती हैं।

प्रायोगिक पद्धति के लिये एक विशाल प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक अनुसन्धान प्रयोग और प्रयोगशालाओ पर आधारित होते हैं क्योंकि वैज्ञानिक का सम्पूर्ण कार्य प्रयोगशाला के अन्दर ही सम्पादित हो जाता है। वह समाज से बहुत दूर रहता है जब कि साहित्यिक अनुसन्धान कर्ता को समाज से ही सम्बन्ध रखना पडता है प्रयोगशाला से नही। उदाहरणार्थ—यदि कोई साहित्यिक

अनुसन्धान कर्ता किसी कवि या लेखक के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर शोध करता है तो प्रयोगशाला मे प्रयोग करके वह अपने शोध काय को पूण नही कर सकेगा बल्कि इसके लिए उसे कवि एव लेखक की जन्मभूमि तक जाना पडेगा, उसके परिवार के सदस्यों एव सम्बन्धियो से सम्पक करना पडेगा तभी उनका काय पूण हो सकेगा।

2 गणितीय पद्धति —इस पद्धति के प्रवतक सर आइजक न्यूटन माने जाते है। न्यूटन के अनुसार वैज्ञानिक नियम वह है जो प्रकृति में चलने वाली अनेक घटनाओ पर समान रूप से लागू होता हो। इस प्रकार न्यूटन ने गणितीय पद्धति के आधार पर गुरुत्वाकषण एव गति के तीन नियमो का अविष्कार किया। बाद में इन्ही नियमो के आधार पर सारे ज्ञान का विस्तार हुआ। न्यूटन के सिद्धान्तो के आधार पर ही समस्त सौर मण्डल में शृखला एव सामजस्य का सधान हुआ तथा सारी सष्टि व्यवस्थित सिद्ध की गई। न्यूटन का सबसे महत्त्वपूण ग्रथ प्रिंसिपिया मथमेटिका फिलोसाफी नचुरालिस है जिसका अथ है—'प्राकृतिक दशन के गणितीय सिद्धान्त। न्यूटन का यह ग्रथ विश्व के प्रमुख वैज्ञानिक ग्रथों में गिना जाता है और इसी ग्रथ ने निश्चित वैज्ञानिक विधि की नींव डाली। इसमे न्यूटन के प्रसिद्ध गुरुत्वाकषण के सिद्धान्त का विशद विवेचन है।

अभी तक ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में अत्यन्त अस्पष्ट कल्पनाएँ की जाती थीं तथा नक्षत्रो को रहस्यात्मक वस्तु समझा जाता था एव धूमकेतु तारे राजाओं की मृत्यु के अपशकुन माने जाते थे, पथ्वी को नरक और आकाश मे स्वग की स्थिति मानी जाती थी। न्यूटन के गुरुत्वाकषण के सिद्धान्त (प्रत्येक द्रव्य दूसरे द्रव्य को अपनी ओर खीचता है) ने इस अव्यवस्था को दूर कर दिया तथा यह सिद्ध कर दिया कि ग्रह और उपग्रह एक निश्चित नियम से परिचालित होते हैं किसी रहस्यात्मक चमत्कार से नहीं। उसने गणित के सूत्रों के आधार पर सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया। इसी गणितीय पद्धति के आधार पर ही जेम्सवाट भाप का इजन बनाने म सफल हुआ तथा पानी के जहाजो का आविष्कार हुआ। इसके अतिरिक्त परमाणु सिद्धान्त राकेट चन्द्र लोक की यात्रा आदि अनेक बातें भी इसी नियम से सिद्ध हो सकी। इस प्रकार न्यूटन की सबसे बडी उपलब्धि आदश वैज्ञानिक पद्धति का आविष्कार है। इसमे विशिष्ट तथ्यो के पयवेक्षण या प्रेक्षण के आधार पर आगमनात्मक पद्धति से वह एक सामान्य नियम की स्थापना करती है और इस सामान्य नियम से निगमनात्मक पद्धति द्वारा विशिष्ट तथ्यो का अनुमान किया जाता है। भौतिक विज्ञान की पद्धति का यही आदश है।

साहित्यिक अनुसन्धान में गणितीय पद्धति का उपयोग—गणितीय पद्धति को ही संख्यात्मक या सांख्यिकीय पद्धति कहा जाता है। साहित्यिक अनुसधान में

अब इस पद्धति का प्रयोग प्रचुरता से होने लगा है प्रारम्भ में साहित्यिक अनुसन्धान में इसका उपयोग अत्यन्त सीमित मात्रा में होता था लेकिन अब छन्दशास्त्र के गहन अध्ययन एवं किसी साहित्यकार के जीवन परिचय के लिए इस पद्धति का उपयोग अपरिहार्य हो गया है। कविता के क्षेत्र में तो गणितीय सूत्रों का प्रयोग भी होने लगा है। इसीलिए फो तनल ने यह कहा कि साहित्य की समीचीन व्याख्या के लिए गणित अनिवार्य है।[17] गणितीय पद्धति में विभिन्न तथ्यों की एक निश्चित माप होती है। साहित्यकार के परिवार के आकार को या उसके जीवन को कुछ घटनाओं तथा आय व्यय आँकड़ों की माप के लिए इस पद्धति का उपयोग आवश्यक है। इसके अतिरिक्त किसी साहित्यकार के सम्बन्ध का पता लगाने प्रवृत्तियों की खोज करने तथा नियमों का अनुसन्धान करने के लिये सांख्यिकीय पद्धति की क्रियाओं (माध्य सह सम्बन्ध विचलन सह विचलन तथा कारक विवेचन) का आश्रय लेना पड़ता है। ये क्रियायें गणितीय हैं तथा गणित के नियमों पर आधारित हैं। साहित्यकार के रचनात्मक कार्यों की निश्चित माप के लिए, कृतियों की सम्यक् जानकारी के लिए छन्द शास्त्र तथा भाषा विज्ञान में वर्ण तथा मात्राओं के आकलन के लिये भी यही पद्धति प्रमुख है। अतः भौतिक विज्ञान की इस पद्धति का उपयोग साहित्यिक अनुसन्धान में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

गणित तथा सांख्यिकीय पद्धतियाँ उपयोगी होते हुए भी अत्यन्त क्लिष्ट होती हैं अतः साहित्यिक अनुसन्धाता कर्ता इस पद्धति से सदैव बचने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त साहित्यिक अनुसन्धान में इन पद्धतियों के उपयोग के अवसर ही बहुत कम मिलते हैं। दूसरे भौतिक विज्ञान की यह पद्धति वास्तव में जिस बात की स्थापना करती है उसको व्यक्त करने के लिए सामान्य भाषा नितान्त अनुपयुक्त है क्योंकि दैनिक जीवन के शब्द पर्याप्त रूप में भाव सूक्ष्म नहीं होते। साहित्यकार की अभिव्यक्ति के लिये गणित एवं गणितीय पद्धति की भाषा शैली पर्याप्त नहीं है। अनेक लोगों की गणितीय पद्धति को भाव सूक्ष्मता से तीव्र घृणा है मुख्यतः इसका कारण इसकी बौद्धिक कठिनाई है। वैज्ञानिक पद्धति शक्ति मूलक तो हो सकती है लेकिन भावमूलक नहीं। अतः साहित्यिक अनुसन्धान में भौतिक विज्ञान की गणितीय पद्धति का उपयोग एक सीमा तक ही होता है क्योंकि साहित्यिक अनुसन्धान में कुछ एक स्थानों पर ही इसका उपयोग हो पाता है।

3 विकासवादी पद्धति–इस पद्धति के प्रवर्तक चार्ल्स डार्विन माने जाते हैं। डार्विन की वैज्ञानिक पद्धति गैलीलियो और न्यूटन से भिन्न है क्योंकि गैलीलियो और न्यूटन की वैज्ञानिक पद्धतियाँ भौतिक विज्ञान की गणितीय पद्धति पर आधारित थी किन्तु डार्विन की पद्धति को अगणितीय वैज्ञानिक पद्धति कहा जा सकता है। डार्विन ने विकास के पक्ष में अनेक प्रमाण व साक्ष्य एकत्र किये और विकास सिद्धान्त समझने के लिए उसकी प्रक्रिया का आविष्कार किया। डार्विन ने

विकास की कोई प्राक्कल्पना नहीं की थी बल्कि उसने अनेक जल जन्तुओं एवं पशु पक्षियों पर दृष्टि डाली और उनके पूर्वजों पर विचार किया और अन्त में यह सिद्ध कर दिया कि वनस्पति जीव जन्तु आदि किसी का भी सृजन उसके वर्तमान रूप में नहीं हुआ अपितु उसका आदि रूप सर्वथा भिन्न रहा और समय परिस्थिति एवं अन्य अनेक प्रभावों से परिवर्तित होते होते उसने यह वर्तमान रूप धारण किया है। डार्विन ने यह भी बताया कि इन परिवर्तनों और विकासों के निश्चित नियम रहे हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी वृद्धि वंशगत विशेषताओं और जीवन की स्थितियों के प्रभावों तथा उपयोगों एवं अनुपयोगों में परिवर्तन तथा परिष्कार होते रहे हैं। नई पीढ़ी में उत्तरोत्तर अप्रत्याशित वृद्धि होने से जीवित रहने के लिए संघर्ष पैदा होता है तथा प्रकृति के नियमानुसार योग्य का जीवन तथा अयोग्य का मरण होता है। विकसित शरीर वाले बचे रह जाते हैं तथा अविकसित तिरोहित हो जाते हैं। प्रकृति के इस विकास को प्राकृतिक चुनाव भी कहा जाता है। पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त अनेक प्रमाणों के आधार पर डार्विन ने यह निर्धारित किया कि एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन अकस्मात नहीं हुए अपितु शनै शनै परिवर्तन को ही विकास क्रम कहा गया है। डार्विन की यह वैज्ञानिक पद्धति साक्ष्य पर आधारित सामान्य नियमों की प्रतिष्ठा करती है।

साहित्यिक अनुसन्धान में विकासवादी पद्धति का उपयोग—साहित्यिक अनुसन्धान में इस पद्धति का उपयोग अनिवार्यतः होता है। इस पद्धति के द्वारा किसी घटना के इतिहास को जानने का प्रयत्न किया जाता है। इसीलिए इसे ऐतिहासिक पद्धति भी कहा जाता है। किसी साहित्यिक परम्परा का विकास जानने के लिए किसी युग का प्रारम्भ ज्ञात करने के लिए किसी साहित्यकार के जन्म एवं वंशानुक्रम का पता लगाने के लिए अथवा किसी अन्य घटना के सम्बन्ध में निहित तथ्यों का ज्ञान इसी पद्धति से सम्भव हो सकता है। किसी घटना के इतिहास का ज्ञान बिना उसके विकास क्रम को बताना निराधार सा प्रतीत होता है। साहित्यिक अनुसन्धान की अनेक विधाओं का ज्ञान भी इसी पद्धति के द्वारा हुआ है। यहाँ तक कि हिन्दी साहित्य के इतिहास का इतिहास भी इसी पद्धति के द्वारा विकसित एवं पल्लवित हुआ है। अतः इस पद्धति के अभाव में साहित्यिक अनुसन्धान अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकता है। वैज्ञानिक पद्धतियों में डार्विन की यह विकासवादी पद्धति साहित्यिक अनुसन्धान के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं समीचीन है।

साहित्यिक अनुसन्धान में जहाँ इस विकासवादी पद्धति का उपयोग होता है वहाँ कभी कभी इस पद्धति को अपनाकर अनुसन्धानकर्ता सत्यापन से दूर हो जाता है। क्योंकि किसी घटना के सम्बन्ध में जिन तथ्यों का पता चलता है, वे

अत्यल्प होते हैं अनुसन्धानकर्ता उन्हीं तथ्यों को अपने अनुमान के द्वारा बढ़ा चढ़ा कर निरूपित करता है। इसमें कुछ तथ्यों का विवेचन गम्भीरता के साथ होता है और कुछ का अनुमान के द्वारा होता है। फलतः अनुसन्धान में जिस निश्चितता की आशा की जाती है उसमें अत्युक्ति की मात्रा अधिक होती है।

4 प्रतिवर्तन पद्धति–इस पद्धति के प्रवर्तक रूसी विज्ञान वेत्ता पवलाव को माना जाता है। किसी भी नये क्षेत्र में की गयी विज्ञान की प्रत्येक नई प्रगति के विरुद्ध कुछ न कुछ प्रतिरोध अवश्य उत्पन्न होता रहा है लेकिन यह प्रतिरोध धीरे धीरे कमजोर होता गया। परम्परावादी सदा से ही यह आशा करते रहे हैं कि कभी ऐसा अवसर अवश्य मिलेगा, जब वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करना असम्भव हो जायगा लेकिन यह विचार आज तक सम्भव न हो सका। पवलाव ने अपने सक्रिय जीवन का अधिकांश भाग कुत्तों के व्यवहार की जाँच परख में बिताया और इस बात का प्रेक्षण किया कि कुत्ते के मुँह में पानी कब और कितना आता है। उसका यह प्रयोग वैज्ञानिक पद्धति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। पवलाव की यह पद्धति यद्यपि तत्व मीमांसा की और धर्म शास्त्रियों के विरुद्ध है तथापि उसने इस पद्धति के आधार पर जिन सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना की है वह पशुओं और मनुष्यों के व्यवहार का समान रूप से नियमन करते हैं।

यह तो हम सभी जानते हैं कि रसील पदार्थ को देखकर कुत्ते के मुँह में पानी आ जाता है। पवलाव ने कुत्ते के मुँह में एक नली रख दी जिससे यह नापा जा सके कि इस प्रकार के पदार्थ को देखकर कुत्ते के मुँह में आने वाली लार की मात्रा कितनी होती है। जब मुँह में खाना होता है तब लार का प्रवाह एक प्रतिवर्ती क्रिया होती है अर्थात ऐसी स्थिति में लार का प्रवाह शरीर द्वारा स्वतः स्फूर्ति क्रियाओं में से एक है। इस क्रिया पर अनुभव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रतिवर्ती क्रियायें अनेक होती हैं। इनमें से कुछ का अध्ययन नवजात शिशुओं की क्रियाओं से किया जा सकता है। जैसे बच्चा छीकता है जम्हाई लेता है, हाथ पैर चलाता है दूध चूसता है प्रकाश को देखकर उछलता है तथा अन्य अनेक क्रियायें उपयुक्त अवसरों पर करता है और इन सबके लिये उसे ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार की सभी क्रियाओं को प्रतिवर्ती कियायें कहा जाता है अथवा पैवलाव की भाषा में इन्हें निरुपाधिक प्रतिवर्तन कहा जाता है। ऐसी क्रियाओं में वे सभी क्रिया क्षेत्र आ जाते हैं जिन्हें पहले सहज प्रवृत्ति कहा जाता था। निम्न स्तर के जीवों में अनुभव द्वारा प्रतिवर्तनों का संशोधन बहुत कम होता है। पतंगा अपने पंख जल जाने के अनुभव के बाद भी लौ में कूदने की चेष्टा करता रहता है किन्तु उच्चकोटि के जीवों में अनुभव का बहुत बड़ा प्रभाव प्रतिवर्तनों पर पड़ता है और यह बात मनुष्य पर बहुत अधिक लागू होती है। पैवलाव ने कुत्तों के लार

सम्बन्धी प्रतिवर्तनों पर अनुभव के प्रभाव का अध्ययन किया। इस विषय में आधार भूत नियम है सोपाधिक प्रतिवर्तनों का नियम। जब किसी निरुपाधिक प्रतिवर्तन के उद्दीपक के साथ अथवा उससे तुरत पहले बार बार कोई दूसरा उद्दीपक आता है तब कुछ समय बाद यह दूसरा उद्दीपक ही अकेला उस अनुक्रिया को उत्पन्न करने में समान रूप से सक्षम हो जाता है जो मूलतः निरुपाधिक प्रतिवर्तन के उद्दीपक द्वारा उत्पन्न हुई थी। मूलतः लार का प्रवाह तभी उत्पन्न होता है जब मुँह में भोजन मौजूद हो, बाद में केवल भोजन के देखने पर और उसकी सुगंध मिलने पर ही मुँह में लार पैदा हो जाती है अथवा किसी ऐसे संकेत से भी मुँह में लार पैदा हो जाती है जो नियमित रूप से खाना दिये जाने का सूचक बन गया हो। इसको हम सोपाधिक प्रतिवर्तन कहेंगे। अनुक्रिया तो वही होती है जो निरुपाधिक प्रतिवर्तनों में होती है। किन्तु उसका उद्दीपक बिलकुल नया होता है जो अनुभव द्वारा मूल उद्दीपक से सम्बन्धित हो चुका होता है। यह सोपाधिक प्रतिवर्तन का नियम उस ज्ञान का आधार है जो अनुभव के द्वारा सीखा जाता है।[18] यह भी निश्चित है कि पवलाव की पद्धतियां मानव व्यवहार के बहुत बड़े क्षेत्र पर लागू होती हैं और इस क्षेत्र में इन पद्धतियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मात्रामूलक शुद्धता के साथ वैज्ञानिक पद्धतियों को कैसे प्रयोग में लाया जाना चाहिए। पैवलाव ने जिस समस्या का समाधान किया है वह यह है–जिसे अभी तक स्वेच्छाजन्य व्यवहार माना जाता था उसे वैज्ञानिक नियम के अधीन कैसे लाया जाय। एक ही जाति के दो प्राणियों की अथवा दो भिन्न अवसरों पर एक ही प्राणी की एक ही उद्दीपक से उत्पन्न अनुक्रियायें भिन्न भिन्न हो सकती हैं। इस प्रकार सोपाधिक प्रतिवर्तन का अध्ययन करके पवलाव ने यह स्पष्ट कर दिया कि जो व्यवहार किसी प्राणी की सहज प्रकृति द्वारा निर्धारित नहीं है उसके भी अपने नियम हो सकते हैं और उसका भी उतना ही वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण किया जा सकता है जितना निरुपाधिक प्रतिवर्तनों द्वारा शासित व्यवहार का किया जाता है।

साहित्यिक अनुसन्धान में प्रतिवर्तन पद्धति का उपयोग–पैवलाव ने जिन निरुपाधिक और सोपाधिक दो प्रकार की प्रतिवर्तन पद्धतियों का आविष्कार किया उनमें निरुपाधिक प्रतिवर्तन का सम्बन्ध सहज प्रवृत्ति से होता है और सोपाधिक प्रतिवर्तन का सम्बन्ध अनुभव जन्य तथ्यों से होता है। अनुभव सदा चिन्तन से ओत प्रोत होता है इसलिए साहित्यिक अनुसन्धान में आंशिक रूप से इस सोपाधिक प्रतिवर्तन पद्धति का उपयोग किया जा सकता है। साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्र में विभिन्न रसों पर किये गये शोध कार्यों में इस पद्धति का उपयोग अनिवार्य है क्योंकि रस के अध्ययन एवं विवेचन में अनुभूति का आश्रय महत्वपूर्ण होता है। श्रोता के द्वारा पढ़े या सुने गये रस का प्रभाव उसकी अनुक्रियाओं के द्वारा

प्रतिपादित होता है। यह क्रियायें तभी उत्पन्न होती हैं, जब वह किसी रस के उद्दीपक का अनुभव करता है।

सोपाधिक प्रतिवर्तन सहज एवं स्वाभाविक होते हुए भी दुरूह है, क्योंकि साहित्यिक अनुसंधान में हर जगह प्रतिवर्तन की अनुक्रियायें उपयोगी नहीं होती हैं। इस पद्धति का अधिकांश सम्बन्ध प्रयोग पर आधारित होता है। प्रयोग के पश्चात् ही अनुभव किया जाता है। साहित्यिक अनुसंधान में प्रयोग करना असंभव होता है मात्र अनुभव ही काम आता है इसीलिये प्रतिवर्तन पद्धति साहित्यिक अनुसंधान के लिए उतनी उपयोगी नहीं हो सकती जितनी अन्य वैज्ञानिक पद्धतियाँ हो सकती हैं। विज्ञान के क्षेत्र में इस पद्धति का प्रयोग अपरिहार्य है अतः ये पद्धति भी एक सीमित मात्रा में ही प्रयुक्त हो सकती है।

5. अचेतन की पद्धति—इस वैज्ञानिक पद्धति के प्रवर्तक फ्रायड माने जाते हैं। फ्रायड उपचार गृह (क्लीनिक) से निकल कर दर्शन की ओर बढ़े। रोगियों का उपचार करते करते उन्होंने व्याधियों के मूल उद्‌गम तक पहुँचकर अचेतन के विज्ञान की उद्भावना की। संक्षेप में फ्रायड की पद्धति इस प्रकार है—हमारे मन के दो भाग हैं, चेतन और अचेतन। अवचेतन इनके बीच का एक तीसरा भाग है जिसकी स्थिति चेतन से कुछ पहले है। चेतन की अपेक्षा अचेतन कहीं प्रबलतर है। फ्रायड ने इसके स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—एक पत्थर का तीन चौथाई भाग जल में है और एक चौथाई जल से ऊपर यह तीन चौथाई अचेतन है और एक चौथाई चेतन। चेतन वह भाग है जो सामाजिक जीवन में सक्रिय रहता है जिसकी प्रत्यक्ष क्रियाओं का ज्ञान हमें रहता है। अचेतन वह भाग है, जिसकी क्रियाओं का ज्ञान हमें नहीं होता परन्तु जो निरंतर क्रियाशील रहकर हमारी प्रत्येक गतिविधि को अज्ञात रूप से प्रेरित और प्रभावित करता रहता है वह अचेतन हमारी उन इच्छाओं और चेष्टाओं का पुञ्ज है जो अनेक सामाजिक कारणों से चेतन मन से मुँह छिपाकर नीचे पड़ जाती हैं और वहाँ से अभिव्यक्ति के लिये संघर्ष करती रहती हैं। इस अवस्था में उन्हें अधीक्षक (सेंसर) का सामना करना पड़ता है जो हमारी सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक रूप है। वह इन असामाजिक इच्छाओं के दमन करने का प्रयत्न करता है परन्तु यह दमन एक छल मात्र होता है दमित इच्छायें अनेक छद्म रूप रखकर अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग ढूँढ ही लेती हैं। ये मार्ग हैं स्वप्न, दिवा स्वप्न, स्वप्न चित्र और कला साहित्य आदि। एक प्रकार से ये सभी स्वप्न के विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार के स्वप्न की व्याख्या फ्रायड के शास्त्रीय विधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

हमारा अचेतन जिन दमित इच्छाओं का पुञ्ज है वे मूलतः काम के चारों ओर केन्द्रित हैं। इस प्रकार जीवन की मूल वृत्ति फ्रायड के अनुसार काम है।

उनके अनुसार जीवन में दो वृत्तियाँ प्रधान हैं– एक प्रेम करने की प्रवृत्ति इरास अर्थात काम और दूसरा नाश करने की प्रवृत्ति अर्थात थ"टास। इनमें से पहली काम की प्रवृत्ति मुख्य है, दूसरी उसकी विपयय मात्र है। इसी काम को फ्रायड ने लिबिडो कहा है। हमारी सभी व्यक्तिगत क्रियाओं तथा चेष्टाओं में यहाँ तक कि समाष्टिगत क्रियाओं तथा चेष्टाओं मे भी काम के सूक्ष्म अन्तसूत्र विद्यमान रहते हैं। यह वृत्ति अनेक रूप धारण करती है। रोग का निदान कर लेने के बाद फ्रायड उपचार के लिए अग्रसर होते हैं। यह तो निश्चित हो गया कि रोग का मूल कारण मन की ग्रन्थियाँ हैं पर उनको खोला कैसे जाय? इसके लिए फ्रायड ने व्यवहारिक प्रयोगों द्वारा 'मुक्त सम्बन्ध' शैली का अविष्कार किया, जिसके द्वारा मन के अतल गहवरों में पड़े हुए विकारों को बाहर निकाल लाने का दावा करते थे। अचेतन से चेतन मे आ जाने पर गाँठ चेष्टा पूर्वक खोली जा सकती है विकारों का 'उन्नयन किया जा सकता है। इस उपचार प्रक्रिया मे वे 'काय कारण वाद' तक पहुँच गये। 'काय कारण वाद के अनुसार प्रत्येक काय का एक निश्चित कारण है जो ज्ञात और अज्ञात दोनों प्रकार का हो सकता है। अचानक अथवा दैवात होने वाले काय भी सवथा सकारण हैं उनके कारण हमारे अचेतन या अवचेतन मन में मिलते हैं। इस प्रकार फ्रायड ने काय कारण वाद को अपनी चिन्ता धारा का आधार बनाया।

इस पद्धति के आलोक में फ्रायड ने धीरे धीरे जीवन के प्रमुख तत्वों का व्याख्यान प्रारम्भ कर दिया। समाज विधान, राजनीति राष्ट्रीयता, संस्कृति सभ्यता, धर्म कला आदि पर फ्रायड की ममभेदी दृष्टि पड़ी। इसका प्रभाव बड़ा व्यापक हुआ और जीवन के पुनर्मूल्यांकन मे उन्होंने बड़ा योग दिया। फ्रायड के अनुसार जीवन की मूल शक्ति है काम अथवा राग, जिनकी माध्यम हैं सहज वृत्तियाँ इन सहज वृत्तियों के उचित परितोष मे ही जीवन की सिद्धि है। समाज का विधान ऐसा होना चाहिये जिसमें जीवन की मूल प्रवृत्तियों के परितोष की व्यवस्था हो अथवा समाज का विधान स्थिर नहीं रह सकता वह विद्रोह अशान्ति दुख एवं कुण्ठा का शिकार बन जायेगा। मानव जीवन की इच्छा सहज आवश्यकताओं की पूर्ति समाज और शासन व्यवस्था का मूल उद्देश्य है। यह परितोष ऐन्द्रिय स्तर पर ही नहीं होना– बौद्धिक रागात्मक उन्नयन भी इसकी एक सफल विधि है। वास्तव में राग को प्रधान मानते हुए भी फ्रायड को बुद्धि की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी। राग के अनिचार से त्राण पाने के लिये बुद्धि की शरण लेनी अनिवाय हो गई। फ्रायड को यह तथ्य स्वीकार करना पड़ा कि रागमय जीवन और विवेकमय जीवन में सतत संघर्ष ही सभ्यता का मूल आधार है। आज के सभ्य जीवन की विकृतियाँ और कुण्ठाएँ राग और विवेक के असामञ्जस्य का ही परिणाम है।

फ्रायड ने नैतिक विधि निषेध की निन्दा की और मनोवैज्ञानिक उन्नयन (सह

जिस समय प्रगतिवाद के प्रचारक जीवन की स्थूल आवश्यकताओं के साथ कला का सम्बन्ध जोड़ते हुए उसे बहिर्मुखी करने के लिये नारे लगा रहे थे फ्रायड की इस पद्धति के प्रभाव से उसके अन्तर्मुखी रूप को यथेष्ट बल मिला और वह इश्तिहारा पर आने से बच गई। हिन्दी साहित्य के लिए यह पद्धति वरदान सिद्ध हुई। इस पद्धति के द्वारा साहित्यिक अनुसन्धान के विचार क्षेत्र में भौतिक बौद्धिक मूल्यों की अधिक विश्वसनीय तथा रोचक ढंग से स्थापना की गयी और साहित्य के पुनर्मूल्यांकन में सहायता मिली। इस प्रकार इस पद्धति के द्वारा प्रगति की परम्परा भी आगे बढ़ी साहित्यकार के व्यक्तित्व तथा साहित्य की प्रवृत्तियों के विश्लेषण व्याख्यान के लिए एक नवीन मार्ग खुल गया जिससे कर्ता तथा कृति का मूल सम्बन्ध स्पष्ट करने में बड़ी सुविधा हुई और साहित्य के अध्ययन आलोचन के क्षेत्र में एक नया अध्याय जुड़ा।

वस्तुत साहित्यिक अनुसन्धान अन्तर्मन की पद्धति का प्रयोग आवश्यक है विशेषत मनुष्य के मनोविकारों उसकी चेष्टाओं तथा अन्य हाव भाव एवं विलासों को समझने के लिए यह पद्धति सहायक सिद्ध हो सकती है। साहित्य के क्षेत्र में कहानी, उपन्यास नाटक, काव्य एवं विभिन्न वादों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन एव विश्लेषण इसी पद्धति की सहायता से सम्भव हो सका है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि समस्त वैज्ञानिक पद्धतियों में अन्तर्मन की पद्धति सर्वाधिक उपयोगी एव महत्वपूर्ण है।

यद्यपि फ्रायड द्वारा प्रवर्तित अन्तर्मन की पद्धति का साहित्यिक अनुसन्धान में महत्वपूर्ण स्थान है तथापि उस पर यह पद्धति वैज्ञानिक न होकर आनुमानिक है। इसकी व्याख्या कहीं कहीं पर दुरूह एव अविश्वसनीय हो जाती है। दूसरा यह कि इस पद्धति के निष्कर्ष स्वस्थ व्यक्तियों की मन स्थिति पर आधृत नहीं है। विकृतियों के आधार पर प्रतिपादित जीवन दर्शन स्वस्थ मानव की जीवन दर्शन कैसे हो सकता है? तीसरा यह है कि यह एकांगी है। काम जीवन की मूल प्रवृत्ति तो अवश्य है परन्तु वह अंग ही है सर्वांग नहीं। फ्रायड ने उसी को सर्वस्व मानकर अपने जीवन दर्शन को एकांगी बना दिया है। चौथा यह है कि फ्रायड का जीवन दर्शन अभावात्मक है उसमें समाधान नहीं है। साथ ही वह व्यष्टि तक के लिए ही सीमित है, समष्टि के लिए नहीं। इसलिए इस पद्धति में आशा एव गति के स्थान पर अवसाद एव अगति है।

5 साहित्यिक अनुसन्धान में विभिन्न वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों के समन्वय की आधार भूमि—साहित्यिक अनुसन्धान में भौतिक विज्ञान की विभिन्न पद्धतियों के प्रयोग का प्रावधान है लेकिन विज्ञान की ये पद्धतियाँ साहित्यिक अनुसन्धान में पूर्णत लागू नहीं होती हैं। वस्तुत विज्ञान की पद्धतियों में निश्चित

तता या गुण समाहित होना है और वे अपने प्रयोग पर आधारित होती हैं। साहित्यिक अनुसन्धान में जिन तथ्यों की खोज होती है उनके लिये ये पद्धतियाँ आंशिक रूप से ही उपयोगी होती हैं।

साहित्य समाज का विषय है और समाज मनुष्यों के समुदाय का नाम है। अतः साहित्य के अनुसन्धान में साहित्य और समाज का अध्ययन अपेक्षित होता है। साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इस दृष्टि से साहित्यिक अनुसन्धान समाजशास्त्र के अधिक सन्निकट है और समाज विज्ञान का समस्त पद्धतियाँ इस पर विशेष रूप से अपना प्रभाव डालती हैं। सामाजिक विज्ञानों में समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र राजनीति, दर्शन तथा इतिहास आदि का आकलन होता है। समाज शास्त्र की सर्वेक्षण पद्धति दर्शन की दार्शनिक पद्धति ऐतिहासिक पद्धति तर्क शास्त्र की गुणात्मक पद्धति निगमन तथा आगमन पद्धतियाँ साहित्यिक अनुसन्धान के लिए विशेष उपयोगी हैं। साहित्यिक अनुसन्धान में बहुत से ऐसे स्थल आ जाते हैं जहाँ तर्क के द्वारा सर्वेक्षण के द्वारा, अनुमान के द्वारा कल्पना के द्वारा तथा विवरणात्मक साक्षात्कार के द्वारा समस्या का समाधान करके निष्कर्ष निकाला जाता है। विज्ञान की पद्धतियों में वैज्ञानिक अत्यन्त धैर्य से काम लेता है। अपने प्रयोग में कई बार असफल हो जाने पर भी सतत कार्यरत रहता है और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है। इसमें अनुमान तर्क एवं कल्पना का कोई स्थान नहीं होता है, जबकि साहित्यिक अनुसंधान में अनुमान तर्क एवं कल्पना मुख्य होती है। विज्ञान की पद्धतियाँ अपने सीमित परिवेश में रहकर भी साहित्यिक अनुसन्धान में सहयोग करती हैं। अतः विज्ञान की गणितीय या संख्यात्मक विकास वादी प्रतिवर्तन तथा अतिक्रमण की पद्धति के उपयोग के अभाव में साहित्यिक अनुसन्धान अभावग्रस्त ही रहेगा। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक अनुसंधान के लिए भौतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों का समन्वित रूप ही अपेक्षित है।

साहित्यिक अनुसन्धान न केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा पूर्ण हो जाता है और न सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों के द्वारा ही अपितु समस्त प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों के समन्वय से ही इस दिशा में प्रगति एवं पूर्णता आ सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (स०) अनुसन्धान की प्रक्रिया पृ० 2

2 वही पृ० 2

3 डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (सम्पादक) अनुसन्धान की प्रक्रिया, पृ० 2

4 डा० देवराज उपाध्याय तथा डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' (सम्पादक) –साहित्यिक अनुसंधान के प्रतिमान' पृ० 4
5 डॉ० नगेन्द्र सम्पादक मानविकी पारिभाषिक कोश' दशम खण्ड, पृ० 95
6 डा० उदयभान सिंह अनुसन्धान विवेचन' पृ० 30
7 डा० उदयभानु सिंह अनुसन्धान विवेचन' पृ० 24
8 डा० सावित्री सिन्हा (सम्पादक) अनुसंधान का स्वरूप' पृ 18
9 डा० सावित्री सिन्हा अनुसंधान का स्वरूप' पृ 20
10 डा० सावित्री सिन्हा (सम्पादक) अनुसन्धान का स्वरूप पृ 91
11 डा० सावित्री सिन्हा तथा डा० विजयेन्द्र स्नातक 'अनुसन्धान की प्रक्रिया पृ० 152
12 डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डा० विजयेन्द्र स्नातक (स०) अनुसंधान की प्रक्रिया पृ० 10
13 डा० सावित्री सिन्हा (स०) अनुसंधान का स्वरूप पृ० 86
14 डा० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (स०) अनुसन्धान की प्रक्रिया' पृ० 169
15 बर्ट्रेण्ड रसल साइन्टिफिक आउट लुक [illegible] (अनु० गंगारतन पाण्डेय) प्रस्तावना, पृ० 1
16 बर्ट्रेण्ड रसेल साइंटफिक आउट लुक' (अनु० गंगारतन पाण्डेय) प्रस्तावना पृ० 1
17 बर्ट्रेण्ड रसल साइन्टिफिक आउट लुक' (अनु० गंगारतन पाण्डेय) पृ० 48
18 ईवान पट्रोविच पवलाव लेक्चर्स आन कण्डीशण्ड रिफलेक्सेज पृ० 342.

तता या गुण समाहित होता है और वे अपने प्रयोग पर आधारित होती हैं। साहित्यिक अनुसन्धान में, जिन तथ्यों की खोज होनी है उनके लिये ये पद्धतियाँ आंशिक रूप मे ही उपयोगी होती हैं।

साहित्य, समाज का विषय है और समाज मनुष्यों के समुदाय का नाम है। अतः साहित्य के अनुसन्धान में साहित्य और समाज का अध्ययन अपेक्षित होता है। साहित्य और समाज का अन्यो याश्रित सम्बन्ध है। इस दृष्टि से साहित्यिक अनुसन्धान समाजशास्त्र के अधिक सन्निकट है और समाज विज्ञान का समस्त पद्धतियाँ इस पर विशेष रूप से अपना प्रभाव डालती हैं। सामाजिक विज्ञानों म समाज शास्त्र अर्थ शास्त्र राजनीति, दर्शन तथा इतिहास आदि का आकलन होता है। समाज शास्त्र की सर्वेक्षण पद्धति दर्शन की दार्शनिक पद्धति ऐतिहासिक पद्धति तर्क शास्त्र की गुणात्मक पद्धति निगमन तथा आगमन पद्धतियाँ साहित्यिक अनुसन्धान के लिए विशेष उपयोगी हैं। साहित्यिक अनुसन्धान मे बहुत से ऐसे स्थल आ जाते हैं जहाँ तर्क के द्वारा सर्वेक्षण के द्वारा, अनुमान के द्वारा कल्पना के द्वारा तथा विवरणात्मक साक्षात्कार के द्वारा समस्या का समाधान करके निष्कर्ष निकाला जाता है। विज्ञान की पद्धतियों म वैज्ञानिक अत्यन्त धैर्य से काम लेता है। अपने प्रयोग म कई बार असफल हो जाने पर भी सतत कार्यरत रहता है और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। इसमें अनुमान तर्क एवं कल्पना का कोई स्थान नहीं होता है, जबकि साहित्यिक अनुसन्धान में अनुमान तर्क एवं कल्पना मुख्य होती है। विज्ञान की पद्धतियाँ अपने सीमित परिवेश में रहकर भी साहित्यिक अनुसन्धान में सहयोग करती हैं। अतः विज्ञान की गणितीय या सख्यात्मक विकास वादी प्रतिवर्तन तथा अन्तर्मन की पद्धति के उपयोग के अभाव मे साहित्यिक अनुसन्धान अभावग्रस्त ही रहेगा। निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक अनुसन्धान के लिए भौतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों का समन्वित रूप ही अपेक्षित है।

साहित्यिक अनुसन्धान न केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा पूर्ण हो जाता है और न सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों के द्वारा ही अपितु समस्त प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों मे समन्वय से ही इस दिशा मे प्रगति एवं पूर्णता आ सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डा० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (स०) अनुसन्धान की प्रक्रिया पृ० 2
2 वही पृ० 2
3 डा० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (सम्पादक) अनुसन्धान की प्रक्रिया पृ० 2

4 डा० देवराज उपाध्याय तथा डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' (सम्पादक) –साहित्यिक अनुसंधान के प्रतिमान' पृ० 4
5 डा० नगेन्द्र सम्पादक मानविकी पारिभाषिक कोश, दर्शन खण्ड, पृ० 95
6 डा० उदयभान सिंह अनुसंधान विवेचन' पृ० 30
7 डा० उदयभानु सिंह अनुसन्धान विवेचन' पृ० 24
8 डा० सावित्री सिन्हा (सम्पादक) अनुसन्धान का स्वरूप' पृ 18
9 डा० सावित्री सिन्हा अनुसंधान का स्वरूप' पृ 20
10 डा० सावित्री सिन्हा (सम्पादक) अनुसंधान का स्वरूप पृ 91
11 डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक 'अनुसन्धान की प्रक्रिया' पृ० 152
12 डा० सावित्री सिन्हा तथा डा० विजयेन्द्र स्नातक (स०) 'अनुसंधान की प्रक्रिया' पृ० 10
13 डॉ० सावित्री सिन्हा (स०) अनुसंधान का स्वरूप पृ० 86
14 डॉ० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (स०) अनुसन्धान की प्रक्रिया' पृ० 169
15 बर्टेण्ड रसल साइण्टिफिक आउटलुक [illegible] (अनु० गंगारतन पाण्डेय) प्रस्तावना पृ० 1
16 बर्ट्रेण्ड रसेल साइंटिफिक आउटलुक (अनु० गंगारतन पाण्डेय) प्रस्तावना, पृ० 1
17 बर्ट्रेण्ड रसल साइन्टिफिक आउटलुक (अनु० गंगारतन पाण्डेय) पृ० 48
18 ईवान पैट्रोविच पवलाव लेक्चर्स आन कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेज पृ० 342

4

हिन्दी अनुसन्धान का विकास

अनुसन्धान के स्वरूप एव क्षेत्र का निर्धारण करते समय यह विवेचित किया जा चुका है कि अनुसन्धान विज्ञान एव कला के क्षेत्र में तथ्यो के सूक्ष्मानुशीलन हेतु इनके उद्भव काल से ही प्रभावित करता रहा है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में तो जितने प्रयोग हुए उन्हें अनुसन्धान माना गया किन्तु ललित कलाओ विशेषत काव्य कला के स दर्भ में मानव के प्रातिभ ज्ञान को दो भागों में विभाजित करके शोधीय परम्परा का विकास किया गया। काव्य कला के क्षेत्र में साहित्यकार की भावयित्री एव कारयित्री प्रतिभा का प्रयोग होता है। साहित्यकार का सम्वेदन शील व्यक्तित्व भावयित्री प्रतिभा के माध्यम से साहित्य सजना करता है जबकि कारयित्री प्रतिभा से उसका समीक्षक व्यक्तित्व मुखर हो उठता है। साहित्यानु सन्धान के क्षेत्र में इसी कारयित्री प्रतिभा का उपयोग होता है। साहित्य के उद भव काल से ही उसकी समीक्षा के बीज वपित हो जाते हैं। सामान्य पाठक साहित्य का अनुभावन करता है, किन्तु कुशाग्र बुद्धि वाला ममण साहित्य के अनु भावित रस को अ य सहृदयो के लिये अपनी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा प्रवहमान बनाकर साहित्य की उपयोगिता म वद्धि करता है। इसी रचनात्मक प्रक्रिया को प्रारम्भ मे समीक्षा माना गया किन्तु कालान्तर में जब उपाधियो से अभिमण्डित करने की पाश्चात्य प्रवृत्ति भारत में पल्लवित हुई तो इसे अनुसन्धान कहा गया।

हिन्दी के औपचारिक शोध ग्रथो का विकास योरोपीय प्रभाव से हुआ। अनुस धान का क्षेत्र योरोप में विश्वविद्यालयो एव शोध सस्थानो के माध्यम से स्पष्ट हुआ तथा उन्ही विद्वानो ने शोध प्रविधि एव शोध ग्रन्थों के निर्माण म योग दान किया। आंग्ल शासको के भारत में आगमन क पाश्चात् भारतीय विश्वविद्या लयों की स्थापना हुई तथा सवप्रथम कलकत्ता, मद्रास इलाहाबाद और बम्बई में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर भारतीय विश्वविद्यालयो का गठन किया गया, किन्तु इन विश्वविद्यालयों में हिन्दी का पठन पाठन बीसवी शताब्दी मे प्रार म्भ हुआ। इसलिए हिन्दी के औपचारिक शोधो का शुभारम्भ पाश्चात्य विद्यालयो में हुआ तथा 1' 10 ई० में हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित प्रथम शोध प्रब ध इटा लिवी विद्वान एल० पी० टसीटरी ने फ्लोरे स विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर पेवो लिनी के निर्देशन मे रामचरित मानस' और रामायण' (1l Ramacarita ma nas e1l Ramayana) प्रस्तुत किया।[1] 1910 में प्रस्तुत इस शोध प्रब ध से

लेकर अद्यतन शोधों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। काल एवं प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इस अन्तराल को कई वर्गों में विभाजित करने का प्रयत्न भी विद्वानों द्वारा किया गया। इस दृष्टि से सर्वप्रथम वर्गीकरण डॉ० उदयभानु सिंह ने प्रस्तुत किया और उन्होंने 1918 ई० से हिन्दी शोध का विकास माना है। डॉ० सिंह ने इटालियन भाषा में लिखे टेसीटरी के शोध ग्रन्थ की अपेक्षा 1918 ई० में डाक्टर आफ डिविनिटी की उपाधि के लिए लन्दन विश्वविद्यालय में जे० एन० कारपेण्टर द्वारा प्रस्तुत 'थियोलाजी आफ तुलसीदास' नामक शोध प्रबन्ध को प्रथम शोध ग्रन्थ माना है।[3] इसी विश्वविद्यालय में पी० एच० डी० उपाधि हेतु 1930 ई० में मोहिउद्दीन कादरी ने 'हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स'[4] विषय पर तथा 1931 ई० में एम० ई० के० ने कबीर एण्ड हिज फालोवर्स[4] विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया तथा 1931 ई० में ही डॉ० बाबूराम सक्सेना ने प्रयाग विश्वविद्यालय में 'एवोल्यूशन आफ अवधी' विषय पर डी० लिट० उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया।[5] इसी के आधार पर डा० उदयभानु सिंह ने हिन्दी में व्यवस्थित अनुसन्धान काल को चार भागों में विभाजित किया है[6]—

1 प्रस्तावना काल (1918 ई० से 1931 ई० तक)
2 प्रारम्भ काल (1934 ई० से 1937 ई० तक)
3 विकास काल (1938 ई० से 1950 ई० तक)
4 विस्तारण काल (1951 ई० से अब तक)

उपर्युक्त वर्गीकरण हिन्दी अनुसन्धान के विकास की दृष्टि से विशेष उपयोगी नहीं सिद्ध हुआ। स्वयं डा० सिंह ने इस वर्गीकरण के स्थान पर हिन्दी अनुसन्धान के लिए एक स्थूल वर्गीकरण प्रस्तुत किया और हिन्दी अनुसन्धान को स्वातन्त्र्य पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर दो कालों में विभाजित किया।[7]

हिन्दी के औपचारिक अनुसन्धान विवेचन क्रम के अन्तर्गत यह ध्यातव्य है कि हिन्दी का साहित्यिक अनुसन्धान पाश्चात्य विश्व विद्यालयों में पाश्चात्य मानदण्डों के आधार पर हुआ तथा उनके शोध ग्रन्थों की भाषा भी अंग्रेजी या अन्य यूरोपीय भाषायें हैं। हिन्दी साहित्य की अनुसन्धान पद्धतियों के अन्तर्गत भारतीय विश्व विद्यालयों में साहित्यिक संवेदना एवं शिल्प से प्रभावित शास्त्रीय मानदण्डों के निकष पर परीक्षित कृतियों का अनुशीलन ही प्रस्तुत प्रबन्ध का अभीष्ट है, इसलिए विदेशी विश्व विद्यालयों के शोध प्रबन्धों को वर्गीकरण के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसी प्रकार डा० बाबूराम सक्सेना के शोध ग्रन्थ को भी भाषा वैज्ञानिक होने के कारण साहित्यिक शोध परम्परा में एक संगत नहीं है।

भारतीय विश्व विद्यालयों में साहित्यिक शोध की दृष्टि से प्रथम शोध प्रबन्ध 1934 ई० में काशी विश्व विद्यालय की डा० लिट० उपाधि हेतु दि निर्गुण

स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री विषय पर डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल द्वारा प्रस्तुत किया गया, जिसका अनुवाद कालान्तर में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय के नाम से किया। इसलिए हिन्दी में साहित्यिक अनुसन्धान का उद्भव 1934 ई० से मानना उचित प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में यह भी अवलोकनीय है कि साहित्यानुसन्धान राष्ट्रीय स्वाधीनता से सम्बन्धित तत्व नहीं है। साहित्य वेदना की पद्धतियाँ पारिवेशिक जीवन से मुक्त होकर शास्त्रीय मानदण्डों के आधार निर्मित होती हैं, इसलिए राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के आधार पर इन कालजयी कृतियों का विभाजन को साहित्यिक अवमानना कहा जायगा। इसलिए हिन्दी के अनुसन्धान काल को साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर विभाजित करना उचित जान पड़ता है। साहित्यिक अनुसन्धान के प्रवृत्त्यात्मक विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास डा० सत्येन्द्र तथा डा० हरवंशलाल शर्मा ने किया। डा० हरवंश लाल शर्मा ने 1850 ई० तक की रचनाओं तथा उनके रचनाकारों से सम्बन्धित शोधों का विषयानुसार वर्गीकरण किया।[8] इसी प्रकार डा० सत्येन्द्र ने भी आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं एवं उनकी प्रवृत्तियों के आधार पर एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया।[9] इन प्रवृत्ति जन्य विभाजनों में भी शोध की सीमायें का व्यवस्थित निर्धारण नहीं हो सका है क्योंकि एक ही विषय से सम्बन्धित विभिन्न शोध ग्रन्थों के मूल्यांकन के मानदण्ड ज्ञात विज्ञान के क्षेत्रों से सम्बन्ध स्थापित होने के उपरान्त परिवर्तित हो जाते हैं।

साहित्यानुसन्धान के वर्गीकरण की दृष्टि से हिन्दी साहित्य की शोध विवरणिकाओं का भी अनुशीलन अपेक्षित होगा। हिन्दी साहित्य में जिन विवरणात्मक रचनाओं का प्रकाशन हुआ है उनमें डा० उदयभानु सिंह कृत हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध कृष्णाचार्य द्वारा सम्पादित हिन्दी के स्वीकृत प्रबन्ध हिन्दी अनुसन्धान परिषद द्वारा सम्पादित हिन्दी अनुसन्धान विवरणिका तथा हिन्दी अनुशीलन का शोध विशेषांक उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों में कृष्णाचार्य एवं हिन्दी अनुशीलन के सम्पादकों के विधाओं एवं प्रवृत्तियों के आधार पर शोध ग्रन्थों का वर्गीकरण किया है जब कि हिन्दी अनुसन्धान परिषद की विवरणिका विश्वविद्यालयों के अनुक्रम एवं शोध प्रबन्धों के काल क्रम पर आधृत है। यद्यपि इन शोध संकलनों में वर्गीकरण के आधार पर स्पष्टोल्लेख नहीं है, किन्तु सर्वाधिक अर्वाचीन विवरणों के सन्दर्भ में हिन्दी अनुशीलन[10] एवं हिन्दी अनुसन्धान विवरणिका[11] उल्लेखनीय है। उपर्युक्त शोध संकलन में 1975 ई० तक के अनुसन्धान ग्रन्थों का क्रमबद्ध वर्गीकरण किया गया है, जिसके आधार पर हिन्दी अनुसन्धान के चार दशकों के प्रवृत्ति मूलक विकास का बोध होता है।

हिन्दी साहित्य में शोध की इस सुदीर्घ यात्रा को शोधों की वैज्ञानिकता

बहुलता एवं व्याप्ति के आधार पर तीन चरणों में विभाजित करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है—

1 प्रथम चरण (उद्भव काल) 1934 ई० से 1947 ई० तक।
2 द्वितीय चरण (उन्मेष काल) 1948 ई० से 1960 ई० तक।
3 तृतीय चरण (उत्कर्ष काल) 1961 ई० से अब तक।

1 प्रथम चरण, उद्भव काल—सन् 1934 ई० में डा० बड़थ्वाल के शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति के उपरान्त हिन्दी के अनुसंधान ग्रन्थों का भारतीय विश्व विद्यालयों में लेखन प्रारम्भ हुआ तथा 1934 ई० से 1947 ई० तक अनेक विश्व विद्यालयों में पी० एच० डी० एवं डी० लिट० की उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये किन्तु इस काल के शोध प्रबन्ध मध्य युगीन विषयों से सम्बद्ध थे। इस काल में विषय की सीमाबद्धता के साथ ही शोध ग्रंथों की संख्या भी अत्यल्प रही क्योंकि 1948 ई० तक केवल आठ भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध अनुसंधान कार्य कराये जाते थे। इनमें कलकत्ता पटना तथा लखनऊ विश्व विद्यालय में 1942 ई० के बाद हिन्दी शोध का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार आगरा इलाहाबाद, नागपुर पंजाब तथा बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में ही हिन्दी साहित्य के आरम्भिक शोध ग्रन्थों का लेखन हुआ। इन विश्व विद्यालयों में आगरा विश्व विद्यालय में तीन इलाहाबाद विश्व विद्यालय में नौ कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक नागपुर विश्व विद्यालय में दो पंजाब विश्व विद्यालय में तीन पटना विश्व विद्यालय में दो लखनऊ विश्व विद्यालय में दो तथा काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में दो शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए। इनमें 1940 ई० में बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में प्रस्तुत डा० केशरी नारायण शुक्ल को 'आधुनिक काव्यधारा', डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा द्वारा प्रस्तुत 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन तथा इन्द्रनाथ मदान द्वारा प्रस्तुत आधुनिक हिन्दी साहित्य की समालोचना शीर्षक शोध प्रबन्ध आधुनिक साहित्य से सम्बद्ध हैं जबकि डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (1940 ई०) डा० रामकुमार वर्मा (1940 ई०) तथा डा० श्री कृष्ण लाल (1941 ई०) के शोध प्रबन्ध हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' (1937 ई० इ० वि०) तथा डा० जानकी नाथ सिंह 'मनोज' (1942 ई० इ० वि०) के शोध प्रबन्ध क्रमश काव्य शास्त्र एवं छन्द शास्त्र पर लिखे गये। इस काल के अन्य उल्लेखनीय शोध प्रबन्धों में डा० नगेन्द्र (1946 ई०, आ० वि०) द्वारा प्रस्तुत 'रीतिकाल की भूमिका में देव का अध्ययन' डा० माताप्रसाद गुप्त (1940 इ० इ० वि) द्वारा प्रस्तुत 'तुलसीदास' जीवनी और कृतियों का अध्ययन 'डा० दीनदयाल गुप्त (1944 ई० इ० वि) 'हिन्दी के अष्टछाप कवियों का अध्ययन' डा० ब्रजेश्वर वर्मा (1944 इ० वि०) 'सूरदास'

जीवनी और कृतियों का अध्ययन', डा० बल्देव प्रसाद मिश्र (1938, ना० वि०) द्वारा प्रस्तुत तुलसी दर्शन डा० उदय भान सिंह (1946, ल० वि०) द्वारा प्रस्तुत 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग' तथा डा० भगीरथ मिश्र (1947 ल० वि०) द्वारा प्रस्तुत 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास' शीर्षक शोध प्रबन्धों को परिगणित किया जा सकता है।

साहित्यिक अनुसन्धान के इस प्रारम्भिक काल में मध्ययुग एवं काव्यशास्त्रीय विषयों पर साहित्यिक अनुसन्धान कार्य कराने की अभिरुचि इसलिए भी रही क्योंकि भारतीय स्वाधीनता की चेतना से अनुप्राणित होकर अनुसन्धित्सुओं ने भारतीय संस्कृति एवं काव्य शास्त्र की गौरवान्वित परम्परा को ही अनुशीलन का आधार बनाया। इसके विपरीत द्विवेदी युगीन नैतिकता एवं आदर्शवादिता के फलस्वरूप रीति युगीन काव्य को वाणी की विगर्हणा मानने के कारण विश्व विद्यालयीय शोधों के प्रारम्भिक काल में रीति युग की अवहेलना हुई तथा डा० नगेन्द्र के अतिरिक्त किसी उद्भव कालीन अनुसन्धित्सु ने इस काल पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत नहीं किया।

हिन्दी अनुसन्धान का उत्कर्ष युग

हिन्दी अनुसन्धान के विकास का प्रथम चरण गम्भीर अध्ययन, सम्यक् आलोचना एवं जीवन व्यापिनी विचारणा की दृष्टि से उल्लेखनीय है किन्तु इस युग के अनुसन्धानों की सीमित संख्या को विशाल हिन्दी साहित्य के सन्तरण का एक लघु प्रयास ही कहा जायगा। राष्ट्रीय स्वाधीनता के उपरांत 14 सितम्बर *1948 को हिन्दी को भारतीय संविधान के अनुसार राजभाषा का गौरव मिला।* सन् 1950 में भारतीय गणतन्त्र के प्रजातान्त्रिक संविधान का निर्माण हुआ और इसी के साथ विभिन्न भारतीय विश्व विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन कार्य का समारम्भ हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के साथ ही प्रान्तीय स्तर पर शिक्षा का विकेन्द्रीकरण किया गया और विभिन्न विश्वविद्यालयों की संस्थापना की गई। राष्ट्र भाषा एवं राज भाषा के रूप में समासीन हिन्दी भाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि भी इसी काल में हुई। इन विभिन्न अनुकूल परिस्थितियों के कारण साहित्येतिहास के पुनरावलोकन, प्रवृत्ति मूलक विवेचन एवं युगीन परिवेश के अभिप्रेरक प्राचीन तथ्यों के उद्घाटन की प्रवृत्ति हिन्दी अनुसन्धायकों में विकसित हुई। इसीलिए 1948 ई० के उपरान्त हिन्दी साहित्य के अनुसन्धानात्मक क्षेत्र का जो विस्तार हुआ उसकी तुलना में स्वाधीनता पूर्व के शोध कार्य को उद्भव कालीन प्रारम्भिक शोधों तक सीमित रखना जाता है। किन्तु 1948 से आधुनिक काल तक हुए शोधों की अजस्र परम्परा इस पूर्ववर्ती शोधों से सर्वथा पृथक् कर देती है। शोध कार्य की विस्तृति को देखते हुए

स्वातन्त्र्योत्तर शोधों को दो वर्गों में विभाजित करना समीचीन प्रतीत हुआ। इसी लिए सन 1848 से 1975 ई० तक के अनुसन्धान कार्य की प्रवृत्ति एवं विषय व्याप्ति की दृष्टि से शोधोन्मेष एवं शोधोत्कर्ष दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। उन्मेष काल में सन 1948 से 1960 तक के अनुसन्धान ग्रन्थों का वर्गीकरण किया जा रहा है जबकि 1960 के उपरान्त हुए शोध कार्य को उत्कर्ष काल के रूप में प्रतिष्ठा मिली है।

2 द्वितीय चरण उन्मेष काल–हिन्दी अनुसन्धान के उद्भव काल का विवेचन करते समय इस तथ्य का संकेत दिया जा चुका है कि उस युग के शोध ग्रन्थ कतिपय विशिष्ट सन्दर्भों विशेषत काव्य शास्त्र भक्ति काल एवं हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित हैं। कालान्तर में शोध प्रविधि के विकास के अनन्तर विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर शोध ग्रन्थों का निर्माण हुआ। यद्यपि इस काल की अनुसन्धानपरक उपलब्धियाँ हिन्दी साहित्य एवं उसकी रचनाओं से ही सम्बन्धित हैं किन्तु इन शोध ग्रन्थों के द्वारा निखिल भारतीय साहित्यिक चेतना के निर्माण को बल मिला। इसीलिए हिन्दी अनुसन्धान के द्वितीय चरण को उन्मेष काल की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। वस्तुत इस काल में हिन्दी अनुसन्धान के कोरक का प्रस्फुटन मात्र हुआ है जिसका पल्लवित एवं पुष्पित स्वरूप उत्कर्ष काल में दृष्टि गोचर होता है।

उद्भव कालीन एवं उत्कर्ष कालीन शोध प्रबन्धों में इस काल की पृथकता का एक महत्वपूर्ण आधार विश्वविद्यालयीन शाखाओं की अधिकता भी है। सन 1947 ई० तक हिन्दी साहित्य में सम्बन्धित अधिकतर केवल चौबीस शोध ग्रन्थों पर उपाधियाँ प्रदान की गयी थीं तथा उद्भव काल में अनुसन्धान के क्षेत्र में केवल आठ विश्वविद्यालयों ने रचनात्मक योगदान दिया। इसके विपरीत सन 1948 ई० से 1960 ई० तक उन्नीस विश्वविद्यालय हिन्दी शोध के क्षेत्र में अग्रसर हुए तथा इस अवधि में डी० लिट० उपाधि हेतु बीस और पी० एच० डी० उपाधि हेतु तीन सौ छियालीस शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए। 1947 ई० के पश्चात् उस्मानियाँ विश्वविद्यालय हैदराबाद (1957 ई०), गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद (1959 ई०) गोरखपुर विश्व विद्यालय (1958 ई०) दिल्ली विश्व विद्यालय (1951 ई०) पूना विश्व विद्यालय (1955 ई०), बिहार विश्व विद्यालय (1958 ई०) मद्रास विश्व विद्यालय (1959 ई०) राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर (1949 ई०) तथा सागर विश्व विद्यालय (1952 ई०) साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में उन्मुख हुए। इसके अतिरिक्त सन् 1958 ई० में कन्हैयालाल मुन्शी हिन्दी विद्यापीठ आगरा में हिन्दी भाषा एवं साहित्य से सम्बन्धित विषयों पर शोध कार्य का शुभारम्भ हुआ। इसी प्रकार काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में 1952 ई० से पी० एच० डी०

उपाधि हेतु शोध काय का प्रारम्भ हुआ । इसके पूव इस विश्व विद्यालय से केवल डी० लिट् उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये ।

उन्मेष काल म हि दी के सर्वाधिक शोध प्रब ध आगरा विश्व विद्यालय में प्रस्तुत हुए तथा वहाँ म एक सौ एक अनुस धित्सुओं को पी एच० डी० एव सात शोधार्थियो को डी० लिट की उपाधि प्रदान की गयी । इसी प्रकार लखनऊ विश्व विद्यालय में पैंतालीस इलाहाबाद विश्व विद्यालय म इकतालीस बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में तीस दिल्ली विश्व विद्यालय मे चौबीस राजस्थान विश्व विद्यालय मे इक्कीस नागपुर विश्व विद्यालय मे सोलह, पजाब विश्व विद्यालय म चौदह सागर विश्व विद्यालय मे बारह हि दी शोध सस्थान आगरा में ग्यारह तथा अलीगढ़ विश्व विद्यालय में दस शोध प्रबन्ध पी एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत हुए । इस काल में पटना विश्व विद्यालय एक मात्र ऐसा शोध सस्थान था जहाँ स केवल डी० लिट० हेतु तीन शोध प्रबध प्रस्तुत हुए ।

उन्मेष काल की सवश्रेष्ठ विशेषता यह रही है कि इस काल म हिन्दी भाषी प्रदेश के विश्व विद्यालयों के अतिरिक्त हि दीतर प्रदेशस्थ विश्व विद्यालयों ने भी हिन्दी साहित्य के अनुस धान काय को एक नवीन दिशा प्रदान की । इन विश्व विद्यालयो म उस्मानिया विश्व विद्यालय हैदराबाद म दो कलकत्ता विश्व विद्यालय में सात गुजरात विश्व विद्यालय म दो नागपुर विश्व विद्यालय में सोलह पूना विश्व विद्यालय म तीन पजाब विश्व विद्यालय में चौदह तथा मद्रास विश्व विद्यालय म एक शोध प्रब ध पी एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत हुआ । इस प्रकार उन्मेष कालीन तीन सौ छियालीस शोध प्रबधो म से पैंतालीस शोध प्रबध इन हिन्दीतर विश्व विद्यालयों म पी एच० डी० उपाधि के योग्य माने गये ।

हिन्दी साहित्यानुस धान के द्वितीय चरण म विश्व विद्यालयो एव शोध प्रब धो की सख्या म अभिवृद्धि के साथ ही अनुसन्धान की प्रवृत्तियो का विकास भी हुआ । उदभव काल में केवल हि दी साहित्य के इतिहास काव्य शास्त्र एव भक्ति काल से सम्बद्ध विषयो का स्पर्श किया गया था जबकि 1918 से 1960 के मध्य हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं हिन्दी के विशिष्ट साहित्यकारो साहित्यिक प्रवृत्तियो साहित्येतिहास साहित्य शास्त्र कृतियों के तुलनात्मक अनुशीलन विभिन्न सम्प्रदाय सामाजिक एव सास्कृतिक दृष्टि से कृतियो के महत्व हस्तलिखित ग्रंथों के पाठानुसन्धान राज्याश्रित कवि समुदाय लोक साहित्य एव हि दी साहित्य पर पड़े अन्य समकालीन एव पूववर्ती साहित्य के प्रभावो का अनुशीलन हुआ ।

हिन्दी अनुस धान के इस चरण म प्रवृत्त्यानुसार जिन शोध ग्रन्थों को विभिन्न विश्व विद्यालयों में विभिन्न उपाधियो हेतु प्रस्तुत किया गया उन्हें अधो लिखित क्रम से स्पष्ट किया जा सकता है

	शोध ग्रन्थों की संख्या
(क) विविध विधायें	
1 कथा साहित्य	19
2 काव्य	70
3 नाटक	21
4 निबन्ध	1
5 लोक साहित्य	24
(ख) काव्य रूप	
1 खण्डकाव्य	0
2 गद्यकाव्य	2
3 गीतिकाव्य	2
4 महाकाव्य	5
(ग) साहित्य और संस्कृति	16
(घ) विविध सम्प्रदाय	7
(ङ) विविध प्रभावों का अध्ययन	20
(च) विविध वादों का अध्ययन	10
(छ) तुलनात्मक अध्ययन	15
(ज) साहित्यकार विशेष	76
(झ) समुदाय विशेष	6
(ञ) हिन्दी साहित्य का इतिहास	21
(ट) साहित्य शास्त्र	26
(ठ) प्रकीर्णक	14

उपर्युक्त अनुसूची के आधार पर जो तथ्य सामने आये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि इस काल की शोध प्रवृत्ति का बहुमुखी विकास हो रहा था। इन काल के अनुसन्धित्सुओं ने हिन्दी साहित्य के ज्ञाताज्ञात विविध रहस्यों का उद्घाटन करते हुए हिन्दी अनुसन्धान क्षेत्र को समृद्ध किया किन्तु इस काल के अधिकांश अनुसंधान ग्रन्थ उद्भव कालीन शोध ग्रन्थों की भांति मध्ययुगीन शोध में ही प्रभावित रहे, क्योंकि हिन्दी काव्य से सम्बन्धित सत्तर शोध प्रबन्धों में से पचास शोध प्रबन्ध मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर प्रस्तुत हुए। इसी प्रकार साहित्यकार विशेष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनुशीलन करते समय आधुनिक काल के तेरह लेखकों के कृतित्व का अनुशीलन हुआ है जबकि मध्ययुग के चालीस साहित्यकारों के कृतित्व का अनुशीलन हुआ। इन मध्ययुगीन साहित्यकारों में भी कृष्ण भक्ति एवं रामभक्ति काव्य के अनुसन्धान की ओर शोधार्थी अधिक उन्मुख हुए। इस काल में कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित तेरह शोध प्रबन्ध और राम भक्ति परक पांच शोध प्रबन्ध प्रकाश में

आय। कवि विशेष की दृष्टि से सर्वाधिक नो शोध प्र थ तुलसी साहित्य से सम्बधित हैं और छ शोध प्रब धो म सूर साहित्य का अनुशीलन हुआ है।

हिन्दी अनुसन्धान के उ मेष काल की उपयु क्त उपलब्धियो के अतिरिक्त इन शोध प्रबन्धो की तथ्यात्मक आलोचनात्मक एव गवषणात्मक दृष्टि भी उदमेष कालीन प्रवृत्तिया से श्रेष्ठ है। इस काल के अनुस धायको न हि दी साहित्य की अज्ञात प्रचुर सामग्री को पाठालोचन के सिद्धान्तो के आधार पर परीक्षित करके आधुनिक समीक्षकों के लिय अनुशीलन का पथ प्रशस्त किया ह। इस दृष्टि से डॉ० पारसनाथ तिवारी[12] द्वारा सपादित कबीर ग्रन्थावली का विशेष योगदान है। इस कृति के द्वारा एक और पाठालोचन को सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा मिली तो दूसरी ओर कबीर साहित्य की ग्यारह प्रतियो के आधार पर एक सवमान्य प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत किया गया। इसी प्रकार डॉ० माताप्रसाद गुप्त[13] द्वारा तुलसी की कृतियो की प्रामाणिक समीक्षा प्रस्तुत की गयी। काल प्रवृत्तियो की दृष्टि से आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक हि दी साहित्य के विविध वादा का विकास हो गया था जिनका तुलनात्मक अन्तर तथा इन वादो के स्वरूप का समीक्षात्मक अनुशीलन विभिन्न विश्वविद्यालयो के अनुस धत्सुओ ने किया। शोध प्रबन्धो के माध्यम से भारतीय साहित्य के परस्पर आदान प्रदान द्वारा राष्ट्रीय भावात्मक एकता को प्रश्रय मिला और जन मानस में राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति अनुराग बढा। शोध प्रब धो में डा० जगदीश गुप्त[14] डा० भास्कर नायर[15], डा० रत्नकुमारी[16] तथा डा० हरवशलाल शर्मा[17] के शोध प्रब ध उल्लेखनीय हैं। तुलनात्मक शोध प्रबन्ध दो दृष्टियो से हुए प्रथम वग के अन्तगत हिन्दी एव हि दीतर भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया जबकि दूसर वग के शोध प्रबन्धो में हि दी साहित्य की दो विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। इन तुलनात्मक शोध प्रबन्धो के अतिरिक्त अ य शोध बिन्दुओ से सम्बन्धित स्वतन्त्रमुखी शोध काय उ मेष काल म हुए हैं तथा सामाजिक सास्कृतिक राजनीतिक धार्मिक दार्शनिक काव्य में प्रकृति काव्य में नारी लोक साहित्य, लोक संस्कृति एव लोक तत्व से सम्बन्धित शोध प्रबन्ध भी इस युग म लिखे गय जिनसे हिन्दी साहित्य को अनिर्दिष्ट शोध भूमियो का अनुसन्धान सम्भव हो गया। इस युग के शोधार्थियो ने काव्य शास्त्र के अग प्रत्यग का क्रमबद्ध तथ्य परक तुलनात्मक विवेचन किया है जो स्वय में महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस प्रकार हि दी अनुस धान का उ मेष काल हिन्दी साहित्य के आख्यात एव अनाख्यात तत्वो के विश्लेषण की दृष्टि से विशेष सफल रहा है। इस युग के अनुसन्धायकों ने अनाख्यात तथ्यो के शोधन उनके यथार्थ स्वरूप के अन्वेषण एव वस्तु निष्ठ वज्ञानिक अनुस धान का प्रयत्न तो किया ही है। आख्यात तत्वों क

आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा उनके पुनरीक्षण युगीन दृष्टि से उनके महत्व आक- लन, गुण दोष विवेचन एवं आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा प्राचीन रचनाओं को राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना के लिए उपयोगी बनाया है। इसी प्रकार स्रोत सन्दर्भित प्रमाण पुष्ट, व्यवस्थित तथ्य शोधन द्वारा उ मध कालीन प्रवृत्तियों को इस काल के रचनाकारों ने परवर्ती अनुसन्धायकों के लिए शोध का पथ प्रशस्त किया है। इन्हीं शोध ग्रन्थों के आधार पर कालान्तर में मानविकी एवं जविकी के सिद्धान्तों का हिन्दी साहित्य में अनुसन्धान के क्षेत्र मे प्रवेश हुआ जिससे साहि- त्यिकी के विश्लेषण के लिये कल्पना एवं संवेदना की अपेक्षा प्रतिभा एवं प्रभा को कृतियों के सत्यापन हेतु अनिवार्य तत्व माना गया तथा तथ्य पुष्ट प्रमाणों के स्थान पर प्रयोग एवं प्रवृत्ति पुष्ट प्रमाणों को सत्यापन के उपयुक्त बताते हुए अनुसन्धान कार्य किया गया। इस प्रकार यह उन्मेष कालीन शोध दृष्टि उद्भव कालीन प्रवृत्तियों के विकास का चरण तो बनी ही साथ ही उत्कर्ष काल के लिए इस काल की प्रवृत्तियों ने उत्कृष्ट पृष्ठभूमि का कार्य किया।

3 तृतीय चरण उत्कर्ष काल—साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र को स्वातन्त्र्योत्तर अनुसन्धित्सुओं ने मानविज्ञान की परिधि से जोड़कर स्वच्छन्दता अथवा अव्य- वस्था के स्थान पर प्रमाण सम्मत एवं तर्क सम्मत विवेचन प्रणाली को विकसित किया। इस वैज्ञानिक प्रविधि के विकास का आधार समाज वैज्ञानिक एवं प्रकृति वैज्ञानिक सिद्धान्तों को बनाया गया। भारत में स्वाधीनता के पश्चात वैज्ञानिक तकनीक का विकास हुआ। भारतीय जन जीवन को वैज्ञानिक प्रगति ने अंशत अथवा पूर्णतः प्रभावित किया। इन वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए स्वतंत्रता के पूर्व भारत को पराङ्मुख रहना पड़ता था, किन्तु स्वातन्त्र्योत्तर भारत में भारतीय वैज्ञानिकों ने भारतीय भूमि को ही वैज्ञानिक गवेषणाओं का केन्द्र बिन्दु बनाया। इस प्राविधिक जिज्ञासुओं ने भारतीय जन जीवन को नवीन आविष्कारों से इतना चमत्कृत कर दिया कि राष्ट्रीय राजनय अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र जैसे मानवीय विज्ञानों के विकास का श्रेय तकनीकी शिक्षा को ही मिला। इसी प्रकार दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्व चिन्तन का आधार प्रारम्भ में सूक्ष्म था किन्तु वैज्ञानिक प्रगति के साथ इन दोनों शास्त्रों ने भी प्राक्कल्पनाओं की अपेक्षा प्रामाण्य को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार शैक्षिक एवं सामा- जिक जीवन में वैज्ञानिक अभिव्याप्ति के कारण ज्ञान विज्ञानेतर शक्तियों का विकास भी इसी प्राविधिक प्रगति के आधार पर हुआ। समस्त ललित कलायें वैज्ञानिक चमत्कारों से अप्रभावित न रह सकीं। इस प्रकार साहित्य में भी इन प्रवृत्तियों का प्रतिफलन हुआ। साहित्य में वैज्ञानिक तत्वों के समावेश के साथ ही विस्तानुवर्ती संचरण की प्रवृत्ति विलुप्त प्राय हो गयी और बौद्धिक पर्यावरण से प्रभावित

साहित्य मजना का शन शन विकास हुआ। साहित्य की वज्ञानिकता ने साहित्या नुस धान की प्रवत्तिया को भी वमानिक बनान के लिये बाध्य कर दिया, क्योंकि अनुसन्धान साहित्य से प्रतिश्रुत होना है।

उ मष कालीन प्रवत्तियो क प्रसग म यह सकेतित किया जा चुका है कि इस काल म साहित्यानुशीलन की व्यापक आधार शिला रखा जा चुकी थी तथा हिन्दी साहित्य का सवतो मुखी अध्ययन इस काल म प्रारम्भ हो गया था 1960 ई० के बाद इस काय का अधिक गति मिली क्योंकि विश्व विद्यालयो म शिक्षा क माध्यम क रूप म हि दी को स्वीकार किए जाने क बाद शोध काय को आजीविका से जोड दिया गया। 1960 क पूव अधिकाश विश्व विद्यालयीय प्राध्यापक ही अनु स धान के क्षेत्र में सलग्न होत थे कि तु स्वतत्रता क पूव विश्व विद्यालयो में नियुक्ति का मानदण्ड शक्षिक स्तर को नही अपितु बौद्धिक स्तर का माना गया। आचाय रामच द्र शुक्ल बाबू श्याम सु दर दास बाबू गुलाब राय, आचाय शिवपूजन सहाय लाला भगवानदीन आचाय हजारी प्रसाद द्विवदी आचाय न ददुलार बाजपेयी आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रभृति हि दी के निष्णात विद्वान साहि त्यानुस धान एव शक्षिक ज्ञान क द्वारा आचाय पद को नही प्राप्त कर सके थे अपितु साहित्यिक वदग्ध्य एव प्रातिभ वचक्षण्य स ही इस गौरवशाली पद पर समासीन हुए थ। इस प्रकार नागतिक विवशताओ स नियत्रित होकर यशोलिप्सा की अपेक्षा अथलोलुपता ने हि दी साहित्य क शो ा क्षत्र को गुरुतर भार प्रदान किया है।

उत्कष कालीन अनुस धान का क्षत्र शोधार्थियो की सख्या एव शोध प्रबन्धो की अतिशय प्रस्तुति की दृष्टि क अत्य त व्यापक है। सन 1960 ई० के पूव हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित जितने शोध ग्र थ प्रस्तुत हुए थे उनस दस गुणित शोध ग्र थो की रचना साठोत्तर दिव दशकों म हुई इनम भी प्रथम अध दशक म सामा य सख्या म ही शोध प्रब ध लिखे गये जबकि 1965 स 1975 ई० के मध्य लगभग तेइस सौ शोध प्रब ध लिखे गय। शोध प्रब धो की यह अतिशय वृद्धि आकस्मिक नही थी इसकी पृष्ठभूमि म विश्व विद्यालीय शिक्षा नीति की भी प्रमुख भूमिका रही है। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग की सस्थापना के पश्चात विश्वविद्यालयों को शोधो मुखी बनाने का प्रयत्न किया गया। प्राकृतिक विज्ञानो के क्षेत्र म नवीन अविष्कारो के लिए विश्वस्तरीय अधुनातन प्रयागशाला ो की स्थापना हुई। सामा जिक विज्ञानो क क्षेत्र में भी स्वतत्र भारत क सामा य जन क जीवन के सर्वेक्षण हतु विभिन्न आयागो का गठन किया गया जिनके द्वारा सामाजिक अभ्युत्थान को अभिप्रेरणा मिली। इन आयागो द्वारा किये गय सर्वेक्षणो के आधार पर विश्व विद्यालयो मे अनुस धान के नवीनतम वातायन खुले। शिक्षा एव मनोविज्ञान भारत

में विदेशी विद्वानों के सिद्धान्त के आधार पर विकसित हो रहे थे जबकि मानव की मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण परम्परा एव परिवेश के आधार पर किया जाता है। सन 1960 के पश्चात नतत्व एव मानविकी के अध्ययन का धरातल पूर्णत भारतीय पृष्ठभूमि पर निर्मित हुआ। इसी प्रकार भारतीय सस्कृति एव पुरातत्व के अनुसन्धान द्वारा भारत की सास्कृतिक उपलब्धियों को नये स दर्भों में विश्लेषित किया गया तथा विभिन्न विश्वविद्यालयो मे प्राचीन भारतीय सस्कृति के विस्मत काल खण्डों को आधुनिक वैज्ञानिक आधार पर विवेचित करते हुए राष्ट्रीय ऐतिहासिक विरासत को भविष्य के लिए उपयोगी बनाया गया। समाज विज्ञानो एव प्राकृतिक विज्ञानो के क्षेत्र में जिस प्रकार वज्ञानिक पद्धतियो का प्रयोग हुआ और इन अनुसन्धानो को प्रयोजनीय माना गया उनके फलस्वरूप साहित्यानुस धान में भी वज्ञानिक तत्वों का वि यास हुआ तथा विभिन्न ज्ञान विज्ञानों के सन्दभ में साहित्य की उपयोगिता के विश्लेषण का प्रयत्न किया गया, जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान दशन समाजशास्त्र जीव विज्ञान इतिहास सस्कृति, राजनीति धर्म प्राचीन एव आधुनिक भारतीय भाषाओं, विदेशी भाषाओं के आलोक में हि दी साहित्य का अनुशीलन किया गया, जिसस राष्ट्रीय ही नही अपितु अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मक समन्वय सम्भव हो सका।

उत्तर काल में हिन्दी साहित्यानुस धान के क्षेत्र में शोध प्रब धो की अतिशयता का एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि आलोचना एव अनुसन्धान दोनो इस काल म परस्पर पर्याय बन गय। उद्भव काल में शोध के नाम पर सर्वेक्षण काय को अधिक महत्व शोधार्थियो या साहित्यिक पयवेक्षको द्वारा दिया जाता था। आलोचना उस युग मे साहित्यिक प्रगति के क्षेत्र में अधिक चर्चित रही और ऐसे भी दृष्टा त उपलब्ध हैं जिसमे किसी एक विषय पर आलोचना प्रत्यालोचना का काय करते हुए किसी एक विषय को पुन प्रतिष्ठित करने का सचेष्ट प्रयास था। उन्मेष काल में भारतीय एव पाश्चात्य समीक्षा के तुलनात्मक अनुशीलन द्वारा आचाय शुक्ल तथा समवर्ती आलोचकों द्वारा जो प्रतिमान प्रस्थापित हुए थे उनके आधार पर नवलखन की समीक्षा तत्कालीन समीक्षको ने की जबकि विश्वविद्यालीय प्राध्यापकों ने प्राचीन साहित्य के अवलोकन के लिए अनुस धान के जटिल पथ का वरण किया। इस प्रकार आलोचना एव अनुसन्धान दो पथक साधन बने जिनका साध्य साहित्य था। अनुस धान एव आलोचना के पार्थक्य का यह आशय नही है कि हि दी साहित्य दो पथक धाराओं म विभाजित हो गया था अपितु आलोचना एव अनुसन्धान एक दूसरे के पूरक होते हुए भी सीमा बद्ध थे। इस कारण म विभिन्न विश्वविद्यालयो म हिन्दी शिक्षण की समुचित व्यवस्था हेतु पाठ्यक्रमो का निर्माण हो रहा था। ऐसी स्थिति में अज्ञात मध्य युगीन रचनाओं के पाठानुसन्धान एव

सम्पादन की आवश्यकता पडी। इस दुरूह कार्य को अनुसन्धान पद्धतियो के आधार पर किया जा सकता था। इसी प्रकार पाठ्यक्रम में आये हुए कृति कारो एव उनकी रचनाओ की व्याख्या एव समीक्षा के लिए आलोचनात्मक पद्धति का उपयोग आवश्यक था। इसीलिए उत्कर्ष कालीन शोध ग्रन्थो म अधिकांश शोध प्रबन्ध मध्य युगीन साहित्य से सम्बन्धित हैं। उत्कर्ष काल मे अनुसन्धान एव आलोचना दोनों साहित्यान्वेषण के तत्व बन गये क्योकि उत्कर्ष काल में प्रशासनिक पद्धतियो के प्रभाव के कारण रचनाओ के पाठानुसन्धान तक ही अनुसन्धित्सुओ की दृष्टि सीमित नही थी अपितु विमर्श कृति की सम्यक् समीक्षा भी अनुसन्धान के लिए आवश्यक थी। इसी प्रकार पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तो एव भारतीय समीक्षा सिद्धान्तो के आधार पर विवेच्य कृति की समीक्षित करने के कारण व्यावहारिक समीक्षा अनुसन्धान का अभिन्न अग बन गई। इस दृष्टि से यह भी ध्यातव्य है कि इस काल तक आलोचना स्वय एक साहित्यिक विधा के रूप म प्रतिष्ठित हो चुकी थी इसलिए कविता कहानी नाटक उपन्यास इत्यादि अन्य विधाओं की भाँति आलोचना को भी एक विधा के रूप म अनुसन्धान का विषय बनाया गया। अनुसन्धान एव आलोचना के समरूप होने पर भी कतिपय निरूपाधिक आलोचनात्मक ग्रन्थो का प्रणयन हुआ किन्तु इस प्रकार के सभी ग्रन्थ या तो सद्धान्तिक आलोचना से सम्बन्धित थे या व्यक्ति के अन्तर्मन की प्रतिक्रियाओ से प्रभावित थे। विशुद्ध व्यावहारिक समीक्षा का विकास आलोच्य युग म केवल अनुसन्धान के माध्यम से हुआ जिसके कारण उत्कर्ष कालीन शोध ग्रन्थों म अभिवृद्धि हुई।

उत्कर्ष काल म हिन्दी शोध के क्षेत्र म जो विस्तारवादी प्रवृत्ति मिलती है उसके उपयुक्त प्रमुख वस्तुपरक एव प्रशासनिक कारणो के अतिरिक्त कतिपय गौण आधार भी हैं जिनमे सख्यात्मक विस्तार होने पर भी गुणात्मक पक्ष शिथिल हो गया है। 1967 ई० के राजभाषा आन्दोलन के कारण उत्तर भारत के समस्त प्रान्तो ने अग्रेजी की शिक्षा को माध्यमिक स्तर पर ही वैकल्पिक कर दिया तथा अग्रेजी की अनिवार्यता उच्च कक्षाओ में भी नहीं रही। इसी प्रकार विश्वविद्यालयो म हिन्दी अध्ययन के लिये छात्र सख्या का परिसीमन समाप्त कर दिया गया। प्रवेश की सीमाओ के न रहने पर विश्वविद्यालीय छात्रो का समूह हिन्दी साहित्य को अध्ययन का विषय बनाने के लिए अग्रसर हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पर प्रत्येक जनपद म महाविद्यालयो एव प्रत्येक मण्डल म विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जिससे समाज के सभी वर्गों को शिक्षित स्तर को ऊँचा उठाने का अवसर मिला। इन कारणो की चरम परिणति परास्नातकीय कक्षाओं म हिन्दी छात्रो की अभिवृद्धि के रूप में हुई। परास्नातकीय कक्षाओ के अधिकांश छात्र उपाधि प्राप्त करने के पश्चात विश्वविद्यालय में ही आजीविका के अभाव में शोध कार्य में संलग्न हो जाया करते थे। इसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि अन्तर्प्रान्तीय शक्ति

संगठनों ने राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार हेतु विभिन्न छात्र वृत्तियों को प्रदान करते हुए मेधावी छात्रों को विश्वविद्यालयों में हिन्दी अनुसंधान की प्रेरणा दी। इसीलिए 1960 के पश्चात हिन्दी शोध के सांख्यिकीय स्तर का उन्नयन हुआ किन्तु इस उन्नति ने स्तरीय शोध के क्षेत्र में व्यवधान उपस्थित किया क्योंकि महत्साधिक प्रबन्धों में इस काल में ऐसे भी शोध प्रबन्ध लिखे गये जिनमें न तो सैद्धांतिक दृष्टि से मौलिक उद्भावनाएं हुईं और न तो लेखक की नव नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का परिचय मिला है। इन शोध प्रबन्धों में पूर्ववर्ती सिद्धान्तों का पिष्ट पेषण मात्र हुआ है जिससे और अधिक सम्भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है।

हिन्दी साहित्यानुसंधान के उत्कर्ष काल में शोधों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसीलिए इस काल को अनुसंधान के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उपरिलिखित कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में अनुसंधान विषय वैविध्य की दृष्टि से अधिक मौलिक रहा है। उन्मेष काल में उन्नीस विश्वविद्यालयों में शोध कार्य होता था जबकि उत्कर्ष काल में विभिन्न विषयों के एक सौ पन्द्रह विश्वविद्यालय एवं शोध संस्थान अनुसंधान के क्षेत्र में संलग्न हैं जिनमें तिरासी विश्वविद्यालयों में साहित्यानुसंधान का कार्य प्रगति पर है। इन तिरासी विश्वविद्यालयों में तिरपन विश्वविद्यालय 1960 ई० से ही शोध कार्य करा रहे हैं, जबकि तीस विश्वविद्यालयों की संस्थापना 1960 एवं 1988 के मध्य हुई है। इन विश्वविद्यालयों में हुए शोध कार्यों का विश्लेषण एवं वर्गीकरण विभिन्न अनुसंधान विवरणिकाओं में हुआ है इनमें संख्यात्मक एवं प्रवृत्यात्मक दृष्टि से भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग और हिन्दी विभाग सरदार पटेल विश्वविद्यालय वल्लभ विद्यानगर गुजरात की विवरणिकायें तथा डॉ गिरिराज शरण अग्रवाल इसमें प्रकाशित शोध सन्दर्भ प्रमुख पंजीकृत संस्थाओं द्वारा प्रदत्त उपाधियों से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने वहाँ से प्रस्तुत शोधों की सूची शोध सारावली नाम से प्रस्तुत की है। साहित्यानुसंधान के उत्कर्ष काल तक पी एच०डी० एवं डी०लिट् की उपाधि हेतु पाँच हजार से अधिक शोध प्रबन्ध स्वीकृत किये जा चुके हैं।[18] इनमें से लगभग पच्चीस सौ (4500) शोध प्रबन्ध उत्कर्ष काल में प्रणीत हुए हैं तथा इतने ही शोध विषय विभिन्न विश्वविद्यालय में पंजीकृत हो चुके हैं।[19]

विभिन्न विश्वविद्यालयों से उपलब्ध विवरणों के अनुसार इस युग के अधिकांश शोध प्रबन्ध हिन्दी भाषी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में लिखे गये हैं क्योंकि उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयों में शोध प्रबन्धों स्वीकृत हुए हैं जबकि अहिन्दी भाषी राज्यों में लगभग एक हजार शोध प्रबन्ध उपाधि के योग्य घोषित हो चुके हैं। इस हिन्दी के उद्भव काल से लेकर उत्कर्ष काल तक शोधों की संख्या में कल्पनातीत वृद्धि हुई।

प्रवृत्यात्मक दृष्टि से भी इस काल के अनुसन्धान ग्रन्थों में मौलिकता का परिचय मिलता है। आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की रचनाओं का विश्लेषण इस युग के अनुसन्धान ग्रन्थों में हुआ है अज्ञेय मुक्तिबोध, दिनकर, निराला बच्चन अमृतलाल नागर, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क नागार्जुन, यशपाल, रांगेय राघव राहुल सांकृत्यायन प्रभृतिअत्याधुनिक साहित्यकारों एवं उनकी कृतियों का अनुशीलन उत्तरप कालीन अनुसन्धित्सुओं ने किया है। इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं निबन्ध आत्मकथा, रेखाचित्र और संस्मरण पर भी इस काल में अनुसन्धान हुआ है। यही नहीं अपितु चित्रपट से सम्बन्धित अनुसन्धान ग्रन्थों का प्रणयन इस काल के अनुसन्धित्सुओं ने किया है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के अतिरिक्त प्राचीन काल एवं मध्य काल के साहित्य का आधुनिक समालोचनादर्श के आधार पर पुनरीक्षण तथा ज्ञान विज्ञान के नये आयाम से प्राचीन कृतियों का सम्बन्ध स्थापन भी इस काल के अनुसन्धान का विषय बना रहा है। इसके अतिरिक्त प्रभावात्मक एवं तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दी साहित्य को अन्य भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों के आधार पर आकलित किया गया है।

काव्य शास्त्र एवं आलोचना से सम्बन्धित विषयों पर एक सौ उन्नीस (119) शोध प्रबन्ध लिखे गये जब कि लोक साहित्य के क्षेत्र में छियानबे (96) शोध प्रबन्धों का प्रणयन हुआ। इसके अतिरिक्त राजस्थानी भाषा एवं साहित्य में सम्बन्धित तिरसठ (63) शोध प्रबन्ध प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं पर छत्तीस (36) शोध प्रबन्ध चित्रपट से सम्बन्धित चार (4) शोध प्रबन्धों का लेखन हुआ।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के उस पचास वर्षीय कालावधि के अन्तर्गत साहित्यानुशीलन की अजस्र परम्परा प्रवहनशील रही है जिसमें यद्यपि यत्किंचित शोध प्रदूषण हुआ भी है तो अनुसन्धान की भागीरथी में उसके विषाणु स्वतः विनष्ट हो गये हैं और साहित्यानुसन्धान आज भी उत्तरप की ओर अग्रसर है।

हिन्दी अनुसन्धान–कार्य में प्रयुक्त पद्धतियाँ

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में उद्भव से उत्कर्ष काल तक की शोध प्रगति की सुदीर्घ यात्रा का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्यानुसन्धान विविध दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहा है। सम्प्रति साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हैं। इन प्रवृत्तियों के द्वारा हिन्दी साहित्य की प्राचीनतम सामग्री उसके स्रोत एवं उनके उपजीव्य को अन्वेषित करना तथा अन्वेषित तथ्यों के परिवेशिक स्वरूप को निर्धारित करने और उनकी सामयिक भूमिका को गतिशील बनाने में सहायता मिलती है। इन प्रवृत्तियों का विकास ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र के विस्तारण

के साथ स्वत हो जाता है। इसीलिए 1934 ई० में जब भारतीय विश्वविद्यालयो में हिन्दी अनुसन्धान का शुभारम्भ हुआ, तो कृतिकार के जीवन एव साहित्य को ही अनुसन्धान का विषय बनाया गया किन्तु ज्यो ज्यों नवीन शैक्षिक गतिविधियाँ प्रारम्भ की गई तथा विभिन्न विषयो के अध्ययन के लिये वैज्ञानिक पद्धतियो का विकास होता गया, त्यों त्यो साहित्यानुसन्धान का क्षेत्र भी वृहत्तर होता गया। इस प्रकार साहित्यानुसन्धान की विभिन्न प्रवृत्तियाँ विकसित होती गई। शोध सर्वेक्षण के क्रम में हिन्दी साहित्य के प्रमुख शोध प्रबन्धो एव उनकी प्रवृत्तियो का विश्लेषण किया जा चुका है। इसी सन्दर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक विषय के अनुसन्धान की एक पूर्व नियोजित सुव्यवस्थित प्रविधि होती है जिसके आधार पर कृतियों का अनुशीलन किया जाता है। यदि ये प्रविधियाँ न रहें तो एक ही कृति अथवा कवि से सम्बन्धित विभिन्न शोध ग्रन्थों का प्रणयन दुष्कर हो जाता है। हिन्दी साहित्यानुसन्धान से सम्बन्धित सहस्रों शोध प्रबन्ध इन्हीं शोध प्रविधियो के आधार पर निर्मित हुए है। इसलिए इन शोध प्रविधियों एव कृति के विमर्श में उनके अवदान का विश्लेषण शोध सर्वेक्षण के उपरान्त आनुषगिक प्रतीत होता है। साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में प्रयुक्त शोध पद्धतियो का अभी तक कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं किया जा सका है, किन्तु कुछ विद्वानों ने इन पद्धतियो की ओर सकेत मात्र किया है। इनमें डा० उदयभानु सिंह ने अनुसन्धान की पद्धतियो को बाह्य तत्वो के रूप मे विवेचित किया है तथा उन्होंने अनुसन्धान की तीन पद्धतियो का उल्लेख किया है– तथ्य शोध प्रधान, आलोचना प्रधान और उभयात्मक।[20] इसके विपरीत आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने अनुसन्धान को अनुशीलित या अर्द्धशीलित स्थलो का प्रकाशक मानते हुए इसकी नौ पद्धतियो का उल्लेख किया है– पाठानुशीलन कवि जीवन एव परिपार्श्वानुशीलन कृत्यानुशीलन, तुलनात्मक अध्ययन, प्रवृत्यात्मक अध्ययन काव्य रूपात्मक अध्ययन सम्प्रदायपरक अध्ययन सैद्धान्तिक अनुशीलन एव भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन।[21] इसी प्रकार कुछ अन्य स्फुट लेखों में भी अनुसन्धान की पद्धतियो का विश्लेषण हुआ है जिसका उल्लेख पूर्ववर्ती अध्यायों में हो चुका है किन्तु यहाँ यह ध्यातव्य है कि हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में जितनी शोध पद्धतियाँ प्रचलित हैं। वे मूलत साहित्यानुसन्धान की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं जिनके आधार पर शोध विषय की सार्थकता सिद्ध होती है। पद्धति शास्त्र के उपयुक्त समीकरण के अभाव में अनुसन्धित्सु प्रवृत्तिगत विशेषताओं पर ही पद्धति शास्त्र का आरोपण करता रहा किन्तु यदि इनका सूक्ष्मानुशीलन किया जाय तो प्रतीत होता है कि ये तथाकथित पद्धतियाँ यनकेन प्रकारेण प्राय समस्त प्रबन्धों में प्रयुक्त हुई हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के अनुसन्धायको ने जिन पद्धतियों का विनियोग अपने शोध प्रबन्धों में किया है– उनमें तथ्यात्मक प्रवृत्यात्मक, आलोचनात्मक,

'प्रभावात्मक तुलनात्मक और काव्यशास्त्रीय पद्धतियाँ उल्लेखनीय हैं।

तथ्यात्मकता के द्वारा साहित्यानुसंधायकों ने अनाख्यात तथ्यों का विश्लेषण करके रचनाकार एवं उसके कृतित्व का परिशीलन किया है। उद्भव काल में ही नहीं अपितु अनुसंधान कार्य के शशवावस्था में जब साहित्यानुसंधान विदेशी विद्वानों द्वारा पालित पोषित हो रहा था तभी से अनुसंधान की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में तथ्यानुसंधान को प्रमुखता मिली। औपचारिक अनुसंधान ग्रन्थों में ही नहीं अपितु अनौपचारिक अनुसंधान ग्रन्थों में निहित तथ्योद्घाटन हेतु इसी प्रणाली का प्रयोग हुआ है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे काल्पनिक मानते हुये सत्यानुसंधान के लिये बाधक माना है किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तथ्य एवं तत्व दो पृथक पृथक वस्तुयें हैं। इसलिये जब तथ्यानुसंधान की पद्धति का प्रयोग होता है तो वहाँ शोधार्थी विवेच्य कृति काल एवं कवि के विषय निष्ठ विवेचन में सन्नद्ध रहता है। इसलिए तथ्यानुसंधान को अनुसंधान की प्रारम्भिक पद्धति के रूप में ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है। तथ्यानुसंधान के अन्तर्गत पाठानुशीलन को भी समाहित किया जा सकता है, क्योंकि पाठानुसंधान कृति का विश्लेषण नहीं अपितु उसके मूल स्वरूप का सम्यक् निरूपण है। इसीलिए तथ्यानुसंधान के अन्तर्गत कृतिकार के जीवन साहित्येतिहास के काल निर्धारण एवं साहित्य की प्रामाणिक पाण्डुलिपियों के पाठ निर्धारण को ही रखा जा सकता है तथा तथ्यानुसंधान द्वारा उपलब्ध निष्कर्षों के आधार पर साहित्यानुसंधान की अन्य पद्धतियों का विकास होता है।

साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में प्रवृत्यात्मकता का विकास उन्मेष काल से देखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत वर्ण्य विषय के वैचारिक पक्ष का परिशीलन विशेष रूप से किया जाता है। इसमें विवेच्य कृति में प्राप्त दर्शन विज्ञान अर्थ शास्त्र संस्कृति समाज राजनीति मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित विचारों का अध्ययन अनुसंधायक के लिये आवश्यक होता है साथ ही उन विचारों की प्रामाणिकता एवं नूतनता सम्बन्धी जाँच के लिये इन विभिन्न प्रवृत्यात्मक प्रवृत्तियों के आलोक में कृति को परीक्षित करना होता है। अनुसंधान की प्रस्तुत दिशा वैचारिक चिन्तन का क्षेत्र उज्ज्वल और प्रशस्त बनाती है। हिन्दी अनुसंधान के सर्वेक्षण के आधार पर यह तथ्य भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि प्रवृत्यानुसंधान की पद्धति मूल रूप से सन 1948 के पश्चात विकसित हुई। उसके पहले उद्भव काल में काव्य शास्त्रीय या मध्ययुगीन भक्त कवियों के विषयों का अनुसंधायकों ने सम्पन्न किया था। भारतीय स्वाधीनता के पश्चात राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने पर जन मानस में हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति जो अनुराग जाग्रत हुआ उसके परिणामस्वरूप तथा विभिन्न प्राकृतिक विज्ञानों में वैज्ञानिक परिदृष्टि के

परिणाम स्वरूप हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में भी मनोविज्ञान, दर्शन समाज शास्त्र तथा मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर कवियों एवं साहित्यकारों तथा युगीन काव्यधाराओं का गम्भीरता पूर्वक विश्लेषण हुआ। इस दिशा में नये कवियों के अतिरिक्त पुरातन कवियों के काव्य को भी मनोवैज्ञानिक दार्शनिक या समाज शास्त्रीय आधार पर विश्लेषित किया गया। इस प्रकार साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्र में पूर्ण वैज्ञानिकता लाने का प्रयास इस प्रवृत्यात्मक पद्धति के आधार पर हुआ।

प्रवृत्यात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य की विविध धाराओं पर भी शोध सामग्री प्रस्तुत की गई। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, रहस्यवाद, अस्तित्ववाद, यथार्थवाद अतियथार्थवाद आदि विविध धाराओं के द्वारा साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में प्रवृत्यात्मक पद्धति का सम्यक् विकास हुआ। एक ही काव्य धारा का सौन्दर्य शास्त्रीय मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय आधार पर अनुशीलन हुआ यह प्रवृत्यात्मक अनुसन्धान की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है। वास्तव में प्रवृत्यात्मक अनुसन्धान ही आधुनिक अनुसन्धान पद्धति का केन्द्रीय एवं प्राण तत्व रहा है जिसके आधार पर अधुनातन शोध चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है।

साहित्यानुसन्धान की आलोचनात्मक पद्धति के अन्तर्गत आलोचना के विशिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर किसी कवि या साहित्यकार की काव्य कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। अन्य शब्दों में आलोचनात्मक पद्धति के अन्तर्गत काव्यशास्त्र द्वारा आधृत सिद्धान्तों के आधार पर किसी कवि के काव्य का मूल्यांकन किया जाता है। हिन्दी शोध सर्वेक्षण के आधार पर उद्भव काल से ही इस आलोचनात्मक पद्धति का साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में आद्यन्त विकास होता रहा है। उन्मेष तथा उत्कर्ष काल में साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में इस दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति हुई है। साहित्यानुसन्धान के सर्वेक्षण के आधार पर यह तथ्य निश्चित् रूप से कहा जा सकता है कि स्वाधीनता के पश्चात् आलोचनात्मक अनुसन्धान पद्धति को विशेष प्रमुखता प्राप्त हुई। विश्व विद्यालयों द्वारा इस दिशा में अत्यधिक प्रयास हुआ है। आधुनिक काव्यधारा के प्रमुख कवियों के काव्य का परिशीलन अनुसन्धान के क्षेत्र में आलोचनात्मक दृष्टि से अधिक हुआ है। छायावादी कवि प्रसाद निराला पन्त, महादेवी और इसके पूर्ववर्ती भारतेन्दु युगीन एवं द्विवेदी युगीन कवियों के काव्य का आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण हुआ है। आलोचनात्मक पद्धति के अन्तर्गत अनुसन्धाता से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह कवि और उसके काव्य का परिशीलन काव्यशास्त्र के विविध सिद्धान्तों के आधार पर प्रस्तुत करे तथा कृति में यह देखे कि उन काव्य सिद्धान्तों का कहाँ तक सम्यक् रूप से निर्वाह हुआ है। इस प्रकार विवेच्य कृति की वस्तुपरक परिश

योजना भाषा रसात्मकता छन्द विधान आदि का विश्लेषण सहज ही हो जाता है तथा कवि की रचनाधर्मिता आलोचना के आलोक में सार्थक बन जाती है।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान का परिसर स्वातन्त्र्योत्तर वैज्ञानिक प्रतिमानों के प्रभाव में विस्तीर्ण होता गया। फलत 1948 ई० के पश्चात् शैक्षिक आयाम ने अखण्ड भारत की एकता को सुदृढ बनाया। इसी प्रभावान्तरण की प्रक्रिया से हिन्दी साहित्य को क्षेत्रीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य मे व्याख्यायित किया गया। हिन्दी साहित्यानुसन्धान के अन्तर्गत प्रभावात्मक पद्धति का प्रयोग इसी पृष्ठभूमि पर आधृत है। प्रभावात्मक पद्धति के अन्तर्गत तत्वो की विवेचना होती है उनमें साहित्य के स्रोत प्रवृत्तियो का अनुकरण आधार आधेय सम्बन्धो का निर्धारण सादृश्य एव साधर्म्य का अवलोकन प्रमुख है। प्रभावात्मक पद्धति के द्वारा शोधार्थी दो समान विचारधारा वाली कृतियों को साहित्यिक एव प्रवृत्यात्मक आधार पर विश्लेषित करता है तथा इनमे जिस कृति का प्रभाव पडता है उसकी सम्यक समीक्षा ही शोधार्थी का अभीष्ट होता है। इस दृष्टि से सामान्यत पूर्ववर्ती कृतियो, समकालीन अन्य भाषाओ की रचनाओ एव परम्पराओ के प्रभाव का ही अनुशीलन किया जाता है। प्रारम्भ मे संस्कृत काव्य के हिन्दी पर प्रभाव संस्कृत काव्य शास्त्र के हिन्दी काव्य शास्त्र पर प्रभाव प्राकृत अपभ्रंश के प्रभाव तथा समाज एव धर्म के प्रभाव का विश्लेषण ही हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में हुआ है किन्तु उत्कर्ष काल मे मानविकी एव जैविकी के सिद्धान्तो के आधार पर वैज्ञानिक प्रभावो का विश्लेषण भी सम्भव हो सका है। इसी प्रकार विभिन्न भारतीय भाषाओ के हिन्दी साहित्य पर पडने वाले प्रभावो तथा हिन्दी साहित्य के पूर्ववर्ती रचनाओ के परवर्ती प्रभावो का विश्लेषण भी इस पद्धति के अन्तर्गत होता है। उत्कर्ष काल मे प्रभावानुशीलन की एक नवीन पद्धति का विकास हुआ जिसके अन्तर्गत काव्य मे निहित सत्यो को भी प्रभावो के माध्यम से विवेचित किया गया काव्य में लोक तत्व काव्य मे मनोविज्ञान काव्य मे प्रकृति से सम्बन्धित शोध ग्रन्थो में इन तत्वों के प्रभाव का भी अध्ययन किया जाता है किन्तु यहाँ शोधार्थी का उद्देश्य इन तत्वों के सिद्धान्त पक्ष की ओर रहता है, जबकि विशुद्ध प्रभावात्मक शोध प्रबन्धों में पूर्ववर्ती कृति को केन्द्र बिन्दु बनाया जाता है।

हिन्दी शोध के उद्भव काल से उत्कर्ष काल तक के साहित्यानुसन्धान के

सर्वेक्षण के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अनुसन्धायको ने शोध के क्षेत्र में तुलनात्मक अनुसन्धान का आश्रय लिया है। तुलनात्मक अनुसन्धान में अनुसन्धित्सु यह तथ्य स्वीकार करके चलता है कि किसी भी कवि या साहित्यकार की साहित्यिक समीक्षा और साहित्यिक अध्ययन उसके पार्श्ववर्ती लेखक या कवियों के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता। अनुसन्धान में हम किसी कवि या

लेखक के कृतित्व को आदि से अन्त तक विवेचन का उपजीव्य बनाते हैं। तुलनात्मक अनुसंधान पद्धति द्वारा उस कवि के समकालीन अन्य कवियों को विवेचन का विषय बनाया जाता है, जिनके सहयोग से स्वयं उस कवि की कृतियों का निर्माण होता है। इस प्रकार तुलनात्मक अनुसंधान पद्धति पूर्ण रूपेण वैज्ञानिकता से समाविष्ट है क्योंकि उसके द्वारा सूक्ष्म भेदों और वैशिष्ट्यों की परख की जाती है तभी विवेच्य लेखक की कलात्मक प्रतिभा का अभिज्ञान अनुसंधित्सु को प्राप्त होता है। कभी कभी विवेच्य लेखक या कवि बहुभाषाविज्ञ होते हैं उन पर अन्य भाषाओं के लेखकों की प्रतिच्छाया भी उनके काव्य में प्रतिबिम्बित होती है अतएव अनुसंधान के क्षेत्र में विषय के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए दूसरी भाषाओं के समानधर्मी कवियों एवं लेखकों से तुलना अपेक्षित होती है। सम्प्रति हिन्दी साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में जो शोध प्रबंध प्रस्तुत किये गये हैं उनमें इस पद्धति का सम्यक विकास हुआ है। अपभ्रंश और हिन्दी के काव्य रूपों का तुलनात्मक अध्ययन छायावाद एवं अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का तुलनात्मक अध्ययन अथवा अज्ञेय और टी० एस० इलियट के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन आदि जैसे शोध विषय इस पद्धति के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। तुलनात्मक अनुसंधान पद्धति द्वारा अनुसंधित्सु विषय का प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए कृतिकार की मानसिक प्रेरणा का अध्ययन करता है। तुलनात्मक अनुसंधान द्वारा सूर की राधा एवं विद्यापति की राधा में स्पष्ट पार्थक्य कृतिकार की मानसिक प्रेरणा के आधार पर ही किया जा सकता है। हिन्दी अनुसंधान के उत्कर्ष काल में इस पद्धति को विश्वविद्यालय के शोध पथदर्शकों द्वारा अधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ।

स्वाधीनता के पश्चात हिन्दी राष्ट्रभाषा के समासीन हो जाने पर दक्षिण में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रति जो अनुराग जाग्रत हुआ, उसके कारण वहाँ के शोधार्थियों ने दक्षिणी एवं उत्तरी भारत के कवियों एवं साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसी आधार पर हिन्दी और मलयालम, हिन्दी और कन्नड़ हिन्दी और तेलगू हिन्दी एवं गुजराती मराठी आदि कवियों के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया, जिसके माध्यम से इस पद्धति का चतुर्दिश विकास हुआ।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में सर्वाधिक प्राचीन काव्यशास्त्रीय अनुसंधान है। भारतीय साहित्य और काव्य शास्त्र अतिशय समृद्ध और सर्वांगीण रहा है उसकी विभिन्न विकास दिशाओं का सम्यक अनुशीलन आज अपेक्षित है और इसीलिए शोध की सुदीर्घ यात्रा में प्रारम्भ से अद्यतन उसकी अनिवार्यता अनुभव की जाती रही है। काव्य शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत अनुसंधायक काव्य शास्त्र के विविध उपकरण रस, अलंकार, गुण, दोष, छन्द आदि विभिन्न दृष्टियों

स काव्य की परीक्षा करता है। इस पद्धति म अनुसन्धायक काव्य शास्त्र के स्वीकृत प्रतिमानो के आधार पर किसी कवि के काव्य का आकलन करता है और उसकी परिलब्धियाँ एव सीमाओ का भी विवेचन करता है । उद्भव काल से ही इस परम्परा का सम्यक विकास हुआ । उदभव काल म अधिकाश अनुसंधित्सुओ ने या तो काव्य शास्त्रीय विषयो का स्पष्ट किया या मध्ययुगीन कवियो की भक्ति भावना स अनुप्राणित होकर शोध प्रबन्धो का सजन किया।

उन्मेष एव उत्कर्ष काल में भी काव्य शास्त्रीय अनुसंधान को प्रश्रय मिला परन्तु हिन्दी साहित्य की विविध भाव भूमियो का इतना अधिक प्रभाव पडा जिसके कारण नवीनता की ओर अनुसंधित्सु अधिक उन्मुख हुए। पत्रकारिता सस्मरण रेखाचित्र, यात्रा साहित्य, आचलिक भाषा या साहित्य का अनुशीलन आदि विविध विषयों के समावेश से काव्य शास्त्रीय अनुसंधान पद्धति की ओर झुकाव अल्प मात्रा म हुआ। शोध की दिशा म ज्ञान की परिपूर्णता काव्य शास्त्रीय पद्धति द्वारा अधिक सम्भव है। काव्य शास्त्र अनुसंधान का मूल आधार है जिसके द्वारा ही साहित्यिक अनुसंधान म परिपूर्णता प्राप्त की जा सकती है। काव्य शास्त्रीय अनुसन्धान के क्षेत्र में डा० रामशकर शुक्ल 'रसाल' तथा डा० भगीरथ मिश्र ने हिन्दी काव्य शास्त्र का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त दो अन्य प्रबंध विशेष उल्लेखनीय रहे जिनमें डा० भोला शकर व्यास कृत ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त' एव डा० आनन्द प्रसाद दीक्षित कृत रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण प्रमुख हैं। इस प्रकार काव्य शास्त्रीय अनुसंधान पद्धति द्वारा हिन्दी अनुसंधित्सुओ ने प्राचीन सिद्धान्तो के सूक्ष्म पर्यवेक्षण द्वारा उसकी सार्थकता पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और उस नये स दर्भो एव चिन्तन स सम्पृक्त करने का मौलिक प्रयास किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में पद्धतियो के रूप में प्रचलित तत्व प्रवर्त्यात्मकता के अन्तर्गत आते हैं। विशिष्ट वैज्ञानिक स दर्भो के आधार पर निर्मित पद्धतिशास्त्र के अभाव म शोधार्थियो ने यद्यपि पद्धतियो का यत्किंचित् उपयोग ता किया है कि तु उसके नामोल्लेख के प्रति उनम उदासीनता बनी रही है। इस क्षेत्र म अन्य ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रो म अनेक प्रयत्न हुए किन्तु साहित्यानुसंधित्सु उसके अधिग्रहण को भी उपयुक्त नहीं मानते थे ऐसी स्थिति में साहित्यानुसंधान के क्षेत्र म प्रयुक्त पद्धतियो का प्रयोग विकास होने पर भी उनका शास्त्रीय मानदण्ड नही निर्मित हो सका। इसीलिए आधुनिक समीक्षक सभ्रम मे पडे रह। वैज्ञानिक एव समाज शास्त्रीय पद्धति शास्त्र की भांति यदि हिन्दी शोध प्रबंधो का पद्धति मूलक अध्ययन किया जाता है तो पूर्वविवेचित ऐतिहासिक दार्शनिक समाज वैज्ञानिक मार्क्सवादी मनोवैज्ञानिक, एव भौतिक वैज्ञानिक पद्धतियो का प्रभाव साहित्येतिहास पर भी परिलक्षित होना

है। अत हिन्दी पद्धति शास्त्र के अन्तगत इन्ही पद्धतियो का विश्लेषण उपयुक्त प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 कृष्णाचाय 'हिन्दी के स्वीकृत प्रबन्ध' आमुख, पृ० 1
2 वही, प० 1
3 कृष्णाचाय 'हिन्दी क स्वीकृत प्रब ध' आमुख, प० 1
4 डा० उदयभानु सिह हिन्दी क स्वीकृत शाध प्रबन्ध', प० 3
5 कृष्णाचाय हिन्दी क स्वीकृत प्रबन्ध' आमुख प० 1
6 डॉ० उदयभानु सिह 'हिन्दी क स्वीकृत शाध प्रब ध प० 3
7 डॉ० उदयभानु सिह 'अनुस धान का विवचन प० 98
8 डा० सावित्री सिन्हा, (सम्पादक) 'अनुसन्धान की प्रक्रिया', प० 139
9 वही प० 157
10 हिन्दी अनुशीलन–शाध विशेषाक 1976 ई० भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग
11 हिन्दी अनुस धान विवरणिका, 1975 ई० हिन्दी अनुस धान परिषद, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात
12 डॉ० पारसनाथ तिवारी–'कबीर की कृतियो के पाठ और समस्याओ पर आलाचनात्मक अध्ययन इलाहाबाद वि० विद्यालय, 1957 ई०
13 डा० माताप्रसाद गुप्त–तुलसीदास जीवन और कृतियो का आलोचनात्मक अध्ययन इलाहाबाद वि० विद्यालय, 1940, डी० लिट०
14 डा० जगदीश गुप्त– हिन्दी और गुजराती कृष्ण का य का तुलनात्मक अध्ययन' इलाहाबाद वि० वि० 1953
15 डा० भास्कर नायर– ए कम्परेटिव स्टडी आन दि इम्पारटेण्ट कृष्ण भक्त पोयटस आन हिन्दी एण्ड मलयालम लिटरेचर लखनऊ वि० वि० 1956
16 डा० रत्नकुमारी–'हिन्दी और बगला क वष्णव कवियो (16वीं शती) का तुलनात्मक अध्ययन' इलाहाबाद वि० वि०, 1955
17 डा हरवशलाल शमा– हिन्दी तथा पजाबी के निगु ण का य का तुलनात्मक अध्ययन' पजाब वि० वि० 1962
18 शोध स न्भ–डा० गिरिराजशरण अग्रवाल (भाग दा)
19 डा० प्रमस्वरूप गुप्त–(सम्पादक) हिन्दी अनुसन्धान विवरणिका' वष 1974–75
20 डा० उदयभानु सिह– अनुस धान का विवचन' प० 29
21 डॉ० सावित्री सिन्हा– अनुसन्धान की प्रक्रिया' प० 27

O

5

हिन्दी अनुसन्धान की दार्शनिक पद्धतियाँ

साहित्यिक अनुसन्धान के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्रीय मार्क्सवादी एव अन्य पद्धतियो का विकास आधुनिक युग की देन है लेकिन दार्शनिक अनुसन्धान की पद्धति सर्वाधिक मौलिक एव प्राचीनतम है। साहित्यिक अनुसन्धान मे दर्शन भी वही कार्य करता है जो अनुसन्धान का मूल लक्ष्य है जिस प्रकार अनुसन्धान सत्य का अन्वेषण करता है उसी प्रकार दर्शन के माध्यम से जीवन और जगत के तात्त्विक तत्वो का विवेचन होकर सत्य तक पहुचने का प्रयास किया जाता है। दर्शन शब्द उस शास्त्र से सम्बन्धित है, जिसमें आत्मा परमात्मा, प्रकृति ब्रह्म जीव माया मोक्ष धर्म इत्यादि दार्शनिक तत्वों का विवेचन होता है। आंग्ल साहित्य में इसके लिए (Philosophy) शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसकी व्युत्पत्ति ग्रीक शब्दों (Phileiu तथा Sophia) के सयोग से हुयी है। आक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी में (Philosophy) शब्द का भाव विस्तारण करते हुए कहा गया है कि इसके द्वारा वस्तुओ के सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक कारणो उनके ज्ञान अथवा बुद्धिमत्ता के प्रति प्रेम, अध्ययन या खोज आदि की जानकारी होती है।[1]

दर्शन मानव समाज की जीवन गत चिर तनता की गत्यात्मक चेतना धारा है जो व्यक्ति के बहिरग एव अन्तरग जगत से सम्बन्धित है। वस्तुत दर्शन जीवन मे नवीनतम भूमियो के उदघाटन मानव चेतना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आवरणो को अनावृत करने तथा नव्य सम्भूतियो के साक्षात्कार करने की सतत प्रक्रिया है जो देश और काल से मुक्त है।[2]

दर्शन शब्द की निष्पत्ति दृश धातु के सयोग से ल्युट प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ होता है जिसके द्वारा देखा जाय। 'दृश्यते अनेनेति' यही दर्शन का प्रधान बिन्दु है। जीवनगत रहस्यो का अनावृत करके जीवन के प्रति चिन्तनात्मक रूपरेखा तयार करना ही दर्शन शास्त्र का मुख्य लक्ष्य रहा है। वास्तव मे आत्म चिन्तन ही दर्शन है।[3]

साहित्य तथा दर्शन के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि दोनो का चरम लक्ष्य जीवन को अखण्ड आनन्द प्राप्त करने में समर्थ बनाता है अस्तु दोनो ही आत्मा के उन्नयन एव उसे ऊर्ध्वगामी बनाने मे आस्था रखते हैं। गटे के अनुसार सच्ची काव्यकृति की सफलता भाव और विचार के मणिकाञ्चन

योग पर आश्रित है।[4] इसी प्रकार स्वच्छन्दतावाद के महान विचारक एवं कवि कालरिज ने भी उस तथ्य पर पर्याप्त बल दिया है कि आज तक कोई भी ऐसा महान कवि नहीं हुआ जो कि महान दार्शनिक न रहा हो, क्योंकि कविता समस्त मानवीय भावों, विचारों, मनोवेगों, भाषाओं की सुगन्धि है।[5] इसी प्रकार छायावाद की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा ने भी काव्य के लिए ज्ञान तथा भाव लोक के सम्मिलन की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है।[6] डॉ० राधाकृष्णन ने साहित्य तथा दर्शन के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि 'यदि कवि दार्शनिक नहीं तो कुछ भी नहीं। एक सच्चा कवि दार्शनिक और दार्शनिक सच्चा कवि अवश्य होगा'।[7] आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने 'नई कविता' शोधक निबन्ध में यह स्पष्ट कहा है कि 'प्रतिभाशाली कवि दार्शनिक एवं बौद्धिक सत्यों का समाहार अपनी भावमयी रचना में किया करते हैं। इस प्रकार उनकी रचना में भाव कला और दर्शन का त्रिकोणात्मक सम्बन्ध दिखाई देता है।"[8] इस प्रकार विविध मनीषियों एवं साहित्यकारों की विचार भूमियों को देखने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य एवं दर्शन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और दोनों के संयोग से ही पूर्ण परिपाक उपस्थित होता है।

भारतीय संस्कृति आदि काल से ही चिन्तन प्रधान रही है और प्रारम्भ से ही भारतीय मनीषियों ने जीवन और जगत के रहस्यों को अनावृत करने में अपनी मेधा का सम्पूर्ण उपयोग किया है। वैदिक युग से आज तक का सम्पूर्ण साहित्य किसी न किसी प्रकार से दर्शन पर संस्थित रहा है। चिंतन के प्रति अत्यधिक आकृष्ट होने के कारण आत्मदर्शन की दिशा में वेद, उपनिषद पुराण एवं अन्य धार्मिक साहित्यों की सृष्टि हुई। रामायण महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथों से लेकर कबीर, सूर तुलसी मीरा आदि मध्ययुगीन भक्त कवियों एवं कवयित्रियों के काव्य में आत्म तत्व प्रधान दर्शन की झाँकी दर्शनीय है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में दार्शनिकता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। साहित्य यथार्थ के नीरस ठूंठ को कल्पना तूलिका के माध्यम से रंगमयी सृष्टि करके ऐसी प्रस्तुति करता है कि उसमें सत्य एवं शिव के अतिरिक्त सुन्दरम का सन्निवेश हो जाता है। दर्शन खोजे हुये सत्य को नग्न रूप में या यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करके सन्तुष्ट हो जाता है, लेकिन साहित्यानुरागी वस्तु उस नग्न सत्य के और आगे भी जाकर कल्पना का आश्रय लेकर सत्य शिव और सुन्दर का समन्वय करने का पूर्ण आकांक्षी रहा करता है। इसीलिए काव्य या साहित्य दर्शन के प्रस्तुतीकरण का सर्वाधिक सुगम एवं सशक्त माध्यम है।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में दर्शन की इस प्रकार उपयोगिता असन्दिग्ध है। दार्शनिक अनुसन्धान का प्रारम्भ वस्तुतः तब से स्वीकार किया जा सकता है

जब से मानव के मन म जीवन और जगत के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा ज मी परन्तु यहाँ हमारा अभिप्रेत साहित्यिक अनुस धान की क्रमबद्ध व्यवस्थित परम्परा से है जिसके माध्यम से दार्शनिक अनुसन्धान का मौलिक काय हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ हुआ।

साहित्य में दशन की व्याप्ति एव दार्शनिक शोध ग्रंथों की प्रवत्ति का अनुशीलन करने के पूव यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि दशन की परिधि के अतगत शोध कर्ताओं ने किन विषयों का चयन किया है । दशन शब्द आधुनिक काल म बौद्धिक विचारधारा के रूप म प्रयुक्त हुआ है। भारतीय चि तकों ने अनुभवातीत अलौकिक व्याख्याओं को दशन के अतगत विश्लेषित किया है जबकि योरोपीय दार्शनिकों ने वज्ञानिक विश्लेषण से परे विशुद्ध बौद्धिक आधार पर ललित कलाओं को भी दशन से जोड़ा है। इसीलिए आधुनिक काल मे सौ दयशास्त्र, समाजदशन जीवन दशन इतिहास दशन जसी बौद्धिक विचारधाराओं का विकास हुआ है। हिन्दी शोध का विकास इस नवीन विचारधारा के आगमन के उपरान्त हुआ इसलिये साहित्यिकीय स दर्भित शोधों में भारतीय एव पाश्चा य दोनों विचार सरणियों का समावेश हुआ है। इसलिए दार्शनिक शोध ग्रंथों के वज्ञानिक विश्लेषण के पूव दशन के विविधागों की व्याख्या सगत प्रतीत होती है।

भारतीय परम्परा म षड दशन का विशिष्ट महत्व है। इसके अतगत साख्य योग वेदा त न्याय मीमासा, वशेषिक दशनों का उल्लेख किया जाता है। दशन के य सभी अग मूलत वैदिक ग्रंथों से प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त जन दशन एव बौद्ध दशन का विकास काला तर म हुआ। य सभी दशन मानव के लोकोत्तर चिन्तन से सम्बद्ध थे तथा जगत के मिथ्यात्व एव परम तत्व की व्याख्या ही इनका अभीष्ट था। इसी के समा तर लोक धर्मी चार्वाक दशन का विकास भी हुआ जिसम ऐहिक सुखोपभोगों को ही व्याख्यायित किया गया। इसी प्रकार बौद्ध दशन में दुखातिशयता से उपराम होने का उपदेश दिया गया। दशन को इन विभिन्न विचारधाराओ के अतगत अविक सत्ता के पारमार्थिक स्वरूप का ही विश्लेषण हुआ। इस कालातीत सनातन सत्य की पुष्टि पौराणिक एव तान्त्रिक अभिचारों में भी की गई कि तु यहाँ उसका स्वरूप बाह्याचारों की अतिशयता के कारण विखण्डित एव विकृत हो गया जिसकी पुनप्रतिष्ठा आचाय शकर की अभिनव व्याख्याओं म हुई। आचाय शकर भारतीय वेदा त के सवश्रेष्ठ व्याख्याता थे क्योंकि उन्होंने विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिश्रण के कारण मथित भारतीय ज्ञान राशि को पुन नवनीत तुल्य मसण एव ग्राह्य बनाया। शाकर वेदात के प्रभाव के कारण ही भारत म भक्ति एव दशन की जो अवरुद्ध धारा पुन प्रवाहित हुई उसे इस्लामी दशन की सुगठित व्यवस्था भी नहीं रोक सकी। दार्शनिक उत्थान की प्रौढ़ा

वस्था का आगम शंकराचार्य के परवर्ती दर्शन में हुआ तथा निम्बार्क, मध्व, वल्लभ एवं रामानुज ने दर्शन की लोक धर्मिता को परिस्थितियों के अनुरूप उपादेय बनाया और भारतीय दार्शनिक चेतना एक बार पुनः सर्वजन हिताय बनी। कालांतर में आंग्ल शासकों के आगमन के साथ ही पाश्चात्य भौतिक दर्शन ने जन जीवन को जकड़ना शुरू किया, किन्तु पौर्वात्य विचारकों ने एक बार पुनः दार्शनिक क्रांति का श्रीगणेश किया। ऐसे चिंतकों में राजा राममोहन राय, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद एवं स्वामी रामतीर्थ उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आर्य समाज एवं थियोसाफिकल सोसाइटी ने नवीन दार्शनिक चेतना का विकास किया। इन सबके सम्मिलित प्रयास से भारतीय दर्शन का प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ा जिनमें सर्वाधिक निकटतम क्षेत्र साहित्य का रहा है। इसीलिए साहित्यिक कृतियों के अनुशीलन हेतु भारतीय दर्शन को आधार बनाया गया है।

दर्शन का दूसरा आयाम पाश्चात्य प्रभाव के कारण साहित्य में विकसित हुआ। पाश्चात्य दर्शन के अन्तर्गत ललित कलाओं से सम्बद्ध ज्ञान क्षेत्र को भी ग्राह्य माना गया और पाश्चात्य विचारकों ने प्रयोग शून्य बौद्धिक ज्ञान को दर्शन माना। इस दृष्टि से सौन्दर्यशास्त्र भी दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में विवेचित हुआ। सौंदर्य शास्त्र का विकास सर्वप्रथम दर्शन के रूप में हीगेल ने किया। उन्होंने ललित कलाओं के दर्शन के रूप में सौंदर्यशास्त्र को प्रतिष्ठित किया। इसी आधार पर जेम्स ड्रेवर ने सुन्दर और असुंदर के ज्ञानात्मक तथा दार्शनिक अध्ययन को सौंदर्यशास्त्र माना है।[9] इसी प्रकार क्रोचे ने सौन्दर्यशास्त्र को अभिव्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान कहा है।[10] इन तर्कों के आधार पर बासांके ने सौन्दर्य शास्त्र का दर्शन की शाखा कहा है।[11]

सौन्दर्य शास्त्र के अन्तर्गत भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों का समावेश हुआ है। भौतिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत अरस्तु, रिचार्ड प्राइस, जेराड और दिदिरो के विचार उल्लेखनीय हैं। इसी वस्तुनिष्ठता का विवेचन आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी किया है। इन भौतिकतावादी विचारकों ने औचित्य का ही सौन्दर्य का मूल तत्व माना है। इसी प्रकार अध्यात्मवादी विचारकों में क्रोचे प्लेटो रस्किन तथा रीड उल्लेखनीय हैं। इन विचारकों ने सौंदर्य बोध को स्वयं प्रकाश्य ज्ञान माना है। क्रोचे के अनुसार समस्त रूपादि का बोध केवल बोधवृत्ति द्वारा सम्भव है। अतः सौन्दर्य की बाह्य सत्ता नहीं होती। सौंदर्य बोध ही सुन्दर होता है।[12] रस्किन ने भी सौन्दर्य के दो भेद किये हैं—बाह्य और आंतरिक और इसकी मुख्य अभिव्यंजना को आन्तरिक माना है।[13] इन विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि सौंदर्य शास्त्र दर्शन का अपरिहार्य तत्व है। सौंदर्य के अतिरिक्त पाश्चात्य दर्शन शास्त्रियों ने उन समस्त सकल्पनाओं को भी दर्शन शास्त्र से सम्बद्ध किया है जिनमें प्रागनुभव की प्रधानता विद्यमान रहे और नियमों से

आने वाली हमारी सज्ञान शक्ति में अभिवद्धि हो।

भारतीय एव पाश्चात्य दार्शनिक विचार धाराओ के समन्वित प्रभाव के कारण आधुनिक हिन्दी साहित्य मे दार्शनिकता का निगूढ समावेश हुआ और उसके मूल्याकन के लिए एक उदात्त पद्धति की निर्मिति हुई। इन नवीन समीक्षाओ एव शोधो की रचना किसी वैज्ञानिक शोध पद्धति के निर्माण के पूर्व हुई है। इसलिए इन शोध ग्रन्थों में मूल्याकन उनके प्रतीयमान तत्वो के आधार पर ही सम्भव हो सकेगा किन्तु इनका आकलन करने के पूर्व दार्शनिक पद्धतियो की प्रयोग विधियो का अवलोकन उचित प्रतीत होता है। दार्शनिक पद्धतियो के अन्तर्गत अनुभव, तर्क एव बुद्धि का उपयोग आवश्यक है। वस्तुत दार्शनिक पद्धतियो के अन्तर्गत प्राय हर रूप मे प्रागनुभव ही प्रभाव डालते हैं। प्रागनुभव के द्वारा शोधकर्ता प्राचीन साहित्य एव अर्वाचीन साहित्य को दार्शनिक पद्धतियो के माध्यम से अपनी ओर आकर्षित करता है जिससे अनुभव म सत्य की मात्रा बढ़ती जाती है और दर्शन के क्षेत्र में शोधकर्ता ऊहापोह म नही पडता। क्योंकि प्रागनुभविक ज्ञान दार्शनिक सिद्धान्तो की स्थापना में तो सहायक होते ही हैं व्यावहारिक दृष्टि से भी दर्शन के कार्य व्यापार के क्षेत्र को परिवर्तित करते हैं। आनुभविक अध्ययन के अतिरिक्त तार्किक एव बौद्धिक अनुशीलन पद्धतियाँ भी दर्शन से सम्बद्ध शोध ग्रन्थो के विवेचन में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। बौद्धिक चिन्तन के अन्तर्गत अनुभव शून्य ज्ञान की अपेक्षा होती है। ऐसे अनुभवातीत नियमो के निर्धारण म ज्ञान शक्तियाँ अपर व्यक्ति परक सन्दर्भ मे प्रयुक्त होती हैं। बुद्धि प्रकृति के लिए प्रागनुभव नियमों का प्रदान करके निर्णय का दायित्व इन सिद्धान्तो के प्रयोक्ता पर छोड देती है। इसीलिए बुद्धि को प्रागनुभव नियमो की निर्धारिका शक्ति के रूप में मान्यता मिली है। दार्शनिक चिन्तन का तीसरा आधार तार्किक है। तार्किक चिन्तन के अन्तर्गत व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना अन्तर्निहित रहती है तथा तार्किक ज्ञान के द्वारा निर्णय लेने की क्षमता में अभिवद्धि होती है इसीलिये दर्शन के क्षेत्र मे तर्क क्षेत्र को विशेष महत्व मिला है। दार्शनिक अध्ययन की इन तीनो पद्धतिया के आधार पर ही विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तो का निर्माण हुआ है। इसी प्रसग म यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय चिन्तन तार्किक एव बौद्धिक चेतना की अपेक्षा आनुभविक आधार पर ही विकसित हुआ है क्योंकि भारतीय दर्शन का विकास तपोनिष्ठ ऋषियो द्वारा हुआ है और उन्होने दर्शन की व्यावहारिकता को समझ कर ही उसका विकास किया है। इसके विपरीत पाश्चात्य दर्शन के अन्तर्गत तार्किक एव बौद्धिक चिन्तन को ही अवकाश मिला है। य विचारक केवल विशुद्ध बौद्धिक चिन्तन का ही प्रश्रय देते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियो के बौद्धिक तार्किक एव आनुभविक स्वरूप का विश्लेषण करने के अनन्तर हिन्दी शोध के क्षेत्र म हुए दार्शनिक शोध कार्य का

ब्रह्मत्व, महाविष्णुत्व एवं मर्यादा पुरुषोत्तमत्व के आधार पर ईश्वर के निर्गुण सगुण स्वरूप का तथा राम के औदार्य, कारुण्य एवं शरणागति का विश्लेषण भी हुआ है। पाँचवें परिच्छेद में जीव एवं ब्रह्म के स्वरूप पर विचार करते हुए अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद तथा अन्य सम्प्रदायों एवं उनकी शब्दावली का विवेचन हुआ है तथा अंतिम अध्याय में भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए ज्ञान एवं भक्ति का अध्यात्म रामायण एवं श्रीमद् भागवत के आधार पर विश्लेषण किया गया है। समग्र रूप से प्रस्तुत ग्रन्थ भारतीय दार्शनिक मान्यताओं के आधार पर तुलसी दर्शन की समीक्षा का अन्यतम प्रयास माना जा सकता है। काल क्रम की दृष्टि से भी इसे हिन्दी का प्रथम दार्शनिक अनुसन्धान माना जा सकता है क्योंकि दार्शनिक दृष्टि से साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में इसके पूर्व कोई प्रयास भारतीय विश्व विद्यालयों में नहीं हुआ था। 'तुलसी दर्शन' ही हिन्दी का प्रथम दार्शनिक शोध प्रबन्ध है तथा इस ग्रन्थ से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दार्शनिक अनुसन्धान का विकास उद्भव काल की ही देन है। इसके अतिरिक्त उद्भव काल में किसी दार्शनिक शोध ग्रन्थ का उल्लेख तक नहीं मिलता जिससे प्रतीत होता है कि साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में दार्शनिक पद्धतियों की नितान्त अवहेलना होती रही किन्तु सन 1948 ई० के बाद दार्शनिक अनुसन्धान के क्षेत्र में भी तीव्र प्रगति हुई और सन 1948 ई० से अब तक एक सौ छः (106) दार्शनिक शोध प्रबन्ध लिखे गये जिनमें बारह शोध प्रबन्ध 1948 से 1960 के बीच लिखे गये और सन 1961 से 1976 तक चौरानबे (94) दार्शनिक शोध प्रबन्ध विभिन्न विश्व विद्यालयों की विभिन्न उपाधि हेतु स्वीकृत हुए। इनमें दस शोध ग्रन्थ डी० लिट० उपाधि के योग्य समझे गये और शेष शोध प्रबन्धों पर पी एच०डी० या उसके समकक्ष उपाधियाँ प्रदान की गईं। प्रबन्धात्मक दृष्टि से भी अधुनातन शोध प्रबन्धों में विविधता मिलती है। वस्तुतः भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तन की समन्वयवादिता के कारण शोध ग्रन्थों की प्रवृत्तियों में परिष्कार हुआ और साहित्य की प्रत्येक विधा का दार्शनिक आधार पर विश्लेषण किया गया। इस दृष्टि से काव्यशास्त्र एवं उपन्यास भी अछूते नहीं रहे। इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि साठोत्तरी शोध ग्रन्थों में दर्शन के विविध अंगों के आधार पर भी साहित्यानुशीलन का प्रयत्न हुआ। उदाहरणार्थ—आनन्दवाद मायावाद प्रत्यभिज्ञादर्शन नियतिवाद, समाज दर्शन सौन्दर्य दर्शन अद्वैत वेदान्त, वेदान्त जैसी प्रवृत्तियों को भी स्वतन्त्र दार्शनिक अनुसन्धान के लिये चुना गया। इस क्षेत्र में वेदान्त से सम्बन्धित 'हिन्दी सगुण भक्ति कविता पर वेदान्त का प्रभाव'[17] तथा हिन्दी सन्तों पर वेदान्त पद्धतियों का ऋण[18] प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी भक्ति साहित्य में माया का स्वरूप विकास[19] मध्य युग के भक्ति काव्य में मायावाद,[20] 'हिन्दी के भक्ति काव्य में माया का स्वरूप[21] 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन[22] प्रसाद साहित्य में समाज दर्शन का

अनुशीलन[23] हिन्दी काव्य में नियतिवाद[24] प्रसाद और प्रत्यभिज्ञादर्शन[25] प्रसाद का शैव दर्शन,[26] उक्त शोध प्रबन्ध दर्शन की एकांगी विचारधारा के प्रति आग्रह है।

इन प्रवृत्यात्मक शोध ग्रन्थों में सर्वाधिक शोध प्रबन्ध सौन्दर्य शास्त्र से सम्बद्ध हैं। सौन्दर्य शास्त्र पर पन्द्रह शोध प्रबन्ध लिखे गये। इसी प्रकार से जीवन दर्शन से सम्बन्धित पांच, काव्य शास्त्र से सम्बन्धित पांच, अरविन्द दर्शन से सम्बन्धित दो शोध प्रबन्ध प्रकाश में आये। दार्शनिक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं साहित्यकारों से सम्बद्ध शोध ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ। इनमें सन्त काव्य से सम्बन्धित चौदह शोध प्रबन्ध प्रकाश में आये, जबकि सूफी काव्य पर तीन सामान्य आधुनिक कविता पर पांच तथा छायावाद पर सात शोध प्रबन्ध लिखे गये। हिन्दी साहित्यकारों में सबसे अधिक शोध प्रबन्ध जयशंकर की कृति से सम्बन्धित हैं। प्रसाद साहित्य पर चौदह शोध प्रबन्ध लिखे गये जबकि तुलसी साहित्य पर तेरह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं। इनके अतिरिक्त निराला साहित्य पर आठ, कबीर पर तीन, अज्ञेय पर एक शोध प्रबन्ध लिखा गया। इन प्रमुख साहित्यकारों के अतिरिक्त विभिन्न साम्प्रदायिक चिन्तकों से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों की संख्या भी कम नहीं है– गोरख दर्शन,[27] गुरुगोविन्द सिंह का काव्य तथा दर्शन[28] दादू दयाल जीवन दर्शन और काव्य,[29] महर्षि मेंहीं साहित्य और दर्शन,[30] स्टडी आफ दि फिलासिफिकल व्यूज आफ मलूक दास एण्ड चरनदास,[31] राधा स्वामी सम्प्रदाय साहित्य और दर्शन,[32] भारतीय दर्शन परम्परा और आदि ग्रन्थ[33] प्रणामी सन्तों का काव्य और दर्शन[34] तथा रामसनेही सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि[35] शीर्षक शोध प्रबन्ध मध्ययुगीन सन्तों की दार्शनिक विचारधाराओं से प्रभावित हैं किन्तु कवि विशेष से सम्बद्ध होने के कारण इनका विवेचन प्रवृत्यात्मक शोध ग्रन्थों के रूप में नहीं किया जा सकता।

दार्शनिक शोध ग्रन्थों के उपर्युक्त आंकड़ों से यह सिद्ध हो जाता है कि दार्शनिक विवेचन के लिए बौद्धिक चेतना से अनुप्राणित रचनाओं को ही लिया जाता है। इसीलिए भक्ति युग तथा आधुनिक काल में छायावाद को ही दार्शनिक अनुसन्धान का केन्द्र बनाया गया है। इन साहित्येतिहास की दार्शनिक व्याख्या से सम्बन्धित शोध ग्रन्थों के वैज्ञानिक पद्धति शास्त्र के आधार पर परीक्षण से पूर्व दर्शन शास्त्र की विभिन्न विधाओं पर आधृत शोध ग्रन्थों की उपयोगिता विचारणीय है। इन एक पक्षीय शोध ग्रन्थों में किसी विशिष्ट दार्शनिक विचारधारा के द्वारा साहित्य की मीमांसा हुई है। यद्यपि यह पद्धति एकांगी और अपूर्ण होती है किन्तु सीमित परिवेश में दार्शनिक विश्लेषण हेतु जिस सूक्ष्म चिन्तन की अपेक्षा की जाती है वह इस एकान्तिक विचारधारा में स्वतः समाहित हो जाती है। इसलिए इस विवेचन प्रक्रिया को ग्रहण करना साहित्य के दार्शनिक अनुसन्धान के लिए आवश्यक

है। उपयुक्त अनुच्छेदों में यद्यपि इस विषय से सम्बद्ध शोध ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है तथापि यहाँ उनका विशद विवेचन समीचीन प्रतीत होता है।

किसी एक दार्शनिक विचारधारा से सम्बद्ध शोध ग्रन्थों में सबसे मुखर विचारधारा सौन्दर्य शास्त्र की रही है। दार्शनिक शोध ग्रन्थों में सौन्दर्य शास्त्रीय विचारणा सर्वाधिक अर्वाचीन है। सौन्दर्यशास्त्रीय दर्शन का आधार पाश्चात्य दर्शन है। हिन्दी में सौन्दर्यशास्त्रीय शोध ग्रन्थों का लेखन 1965 ई० से हुआ। सन 1965 ई० से लेकर 1976 ई० तक पन्द्रह सौन्दर्य शास्त्रीय शोध प्रबन्ध लिखे गये। इन शोध प्रबन्धों में अधिकांश का वर्ण्य विषय छायावादी काव्य रहा है। छायावाद के अतिरिक्त विभिन्न साहित्यिक कृतियों के विश्लेषण का प्रयत्न भी हुआ है। इनमें सर्वप्रथम शोध ग्रन्थ 'उत्तर छायावादी काव्य में प्रतीक और बिम्ब विधान तथा उनका मनस्तत्व शास्त्रीय, समाज शास्त्रीय और सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन' है।[36] इसके अतिरिक्त सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में सौन्दर्य एवं दर्शन[37] छायावादी काव्य में सौन्दर्य एवं दर्शन[38] विद्यापति की पदावली की सौन्दर्यशास्त्र मूलक मीमांसा,[39] हिन्दी के भक्त कवियों की सौन्दर्योपासना[40] तुलसी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन[41] रामचरित मानस का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन,[42] इन्दु से 1936 तक की हिन्दी कविता का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन[43] मुकुरमुक्ता से 1966 तक हिन्दी काव्य का सौन्दर्य शास्त्रीय विवेचन,[44] निराला की काव्यभाषा और शैली का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन,[45] विभिन्न कवियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के सौन्दर्य तात्विक विश्लेषक शोध प्रबन्ध हैं, जिनमें पाश्चात्य एवं भारतीय तत्वों के आधार पर सौन्दर्य शास्त्र के अध्ययन परिभाषीकरण एवं उनके साहित्यिक प्रभाव के अनुशीलन का प्रयत्न हुआ है। दार्शनिक तत्वों के विश्लेषण के समय काव्य के सौन्दर्य एवं उसकी वश्लेषिकी का विवेचन किया जा चुका है। यहाँ उपलब्ध शोध ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में सौन्दर्य शास्त्रीय तत्वों की मीमांसा ही हमारा अभीष्ट है। वस्तुत सौन्दर्य का निर्णय कल्पना की देन है। व्यक्ति जब किसी वस्तु को देखकर अपनी सृजनात्मक शक्तियों के द्वारा आनन्द संवेदना को उसमें प्रतिरोपित कर देता है तो ऐसा प्रतिरूपण चाहे तात्विक हो या बौद्धिक उसका आधार सौन्दर्यपरक होता है। इसीलिए जिन संवेदनाओं में ऐन्द्रिक वेदनीय भाव निहित रहता है, उनमें भी यदि अनुकूल वेदनीयता रहती है तथा यह आकर्षक मनोरम, रुचिर और उपभोग्य होती है तो उस वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य ही माना जाता है। इस प्रकार आनन्द विधायक प्रतिरूपक अनुकूल वेदनीय एवं श्रेयस आनन्द सौन्दर्य विधायक उपादान के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। आनन्द की इन तीनों कोटियों में मुख्य स्थान मन शक्ति का है क्योंकि मन शक्ति ही तर्क एवं बुद्धि की अनुषंगी चेतना से सौन्दर्य का वर्णन करती है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेख्य है कि सौन्दर्य की निष्पत्ति में मुख्य स्थान संकल्पनाओं अथवा प्रत्ययों का होता है। यदि सौन्दर्य की

अनुभूति एक निष्ठ होती है तो इस स्वानुभूति के निदर्शन में प्रागनुभविक शक्तियों का योग होता है किन्तु जब सौंदर्य चेतना एंद्रिक प्रतिरूपण से मुक्त होकर बाह्य दृश्यमान प्रभाव में उदभासित हो उठती है तथा उसके द्वारा मानवता के उद्देश्यों का निरूपण होता है तो वहाँ प्रागनुभव की अपेक्षा तर्क बुद्धि परक प्रत्यय (Rational Idea) ही सहायक होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से जो निष्कर्ष निकले हैं उनके अनुसार आलोचक वृत्ति सदैव उस रुचि में समाविष्ट हो जाती है जिसके द्वारा विषय का आकलन रुचि की स्वतन्त्र अनुमापिका के रूप में किया जाता है। यहाँ रुच्यानुसारिता का आशय आनन्द की उस रीति से है जिसमें एक ही वस्तु किसी व्यक्ति को अत्यन्त रुचिकर एवं प्रसाद जनक होती है किन्तु दूसरे व्यक्ति की सम्मति उसकी सौंदर्य निष्ठा में भी व्याघात डाल देती है।

सौंदर्य के क्षेत्र में उदात्तता का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। वस्तुतः ये दोनों एक निष्ठ हैं। सौंदर्य बौद्धिक संकल्पना का और उदात्त तात्त्विक संकल्पना का उपस्थापन मात्र है, वस्तुतः उदात्त एवं अनुभूति है तथा इसके द्वारा प्राप्त आनंद केवल परोक्षतः उदभूत होता है। सौंदर्य के साथ इसको आकलित करते समय उदात्त का विश्लेषण प्राकृतिक क्षेत्र में नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्राकृतिक सौंदर्य मानव मात्र के लिए पूर्वानुकूलित निर्णय शक्ति के द्वारा प्रभावी होता है। इसके विपरीत जब वैचारिक परिष्करण द्वारा अनुभूति को प्रोद्दीप्त किया जाता है तो इस निर्णय शक्ति द्वारा प्राप्त आनन्द को औदात्य से सम्पन्न माना जा सकता है। सौंदर्य एवं सौन्दर्य की उदात्तता के विवेचन क्रम में यह भी ध्यातव्य है कि उदात्तता ही व्यक्ति निरपेक्ष होकर शिवत्व की सत्ता से विभूषित हो जाती है।

सौंदर्य शास्त्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें दार्शनिक मीमांसा की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं इसके अतिरिक्त वस्तुनिष्ठ अध्ययन के कारण सौंदर्यशास्त्र में वैज्ञानिक अध्ययन भी उपयोगी हो सकता है, यद्यपि सौंदर्य के सिद्धान्तों का निर्धारण निगमनात्मक पद्धति के आधार पर ही किया जाता है जिस प्रकार वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठा के अन्तर्गत प्राक्कल्पनाओं के आधार पर प्रयोग पुष्ट निगमनात्मक आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण होता है उसी प्रकार सौंदर्यशास्त्र में प्रागनुभव ही तर्क बुद्धि की निगमनात्मक पद्धति द्वारा सौन्दर्य सत्ता के विश्लेषण में सहायक होते हैं, किन्तु विज्ञान और सौंदर्य का अन्तर उनके निष्कर्षों में है। सौंदर्यशास्त्र में वस्तु के वैयक्तिक अनुभव की प्रधानता मिलती है तथा इसमें संज्ञानात्मक निर्णय (Cognitive Judgment) की आवश्यकता पड़ती है। इसके विपरीत विज्ञान में व्यक्ति वस्तुनिष्ठ अध्ययन में संलग्न होता है तथा उसके निष्कर्ष वस्तु संकल्पनात्मक (Concept of the object) होते हैं और उनमें व्यक्ति परक सत्य (Subjective reality) के स्थान पर वस्तुपरक सत्य (Objective reality)

के औचित्य का समर्थन किया जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में जब सौन्दर्य का प्रभाव और प्रतिरूपण (Representation) विश्लेषित होता है। तो हम कृतियों में तीन तत्त्वों को ग्रहण करते हैं–रुचि प्रतिभा एवं कल्पना। इनमें कल्पना एवं प्रतिभा रुचि के माध्यम से एक हो जाती है। इसलिए इन दोनों का अनुशीलन ही हमारा अभीष्ट होता है। चूँकि ललित कलाओं में काव्य कला का स्थान काल्पनिक स्वच्छन्दता के कारण सर्वश्रेष्ठ होता है इसलिए काव्य के क्षेत्र में सौन्दर्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विशिष्ट महत्त्व होता है क्योंकि काव्य के माध्यम से हम अनुभवातीत तत्त्वों को भी अनुभव गम्य एवं प्रयोज्य बना लेते हैं जबकि अन्य कलाओं में रुचि एवं प्रतिभा ही मुख्य भूमिका निभाने में समर्थ होती है।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन की जो परम्परा विकसित हुई है उसका अनुशीलन किया जा चुका है। सौन्दर्य शास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना के उपरान्त हिन्दी शोधों के सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन की वैज्ञानिकता का परीक्षण ही यहाँ हमारा विवेच्य है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के सौन्दर्य परक अध्ययन का ही मूल्यांकन समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि काव्यांग साहित्य के बाह्याभ्यन्तरिक सौन्दर्य वृद्धि में विशिष्ट योगदान देते हैं इसलिए इन काव्य तत्त्वों, रस अलंकार ध्वनि इत्यादि के सौन्दर्य शास्त्रीय विश्लेषण से सम्बद्ध हिन्दी शोध प्रबन्धों की परम्परा भारतीय सौन्दर्य चिन्तन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी मानी जायेगी। साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में काव्यशास्त्र के सौन्दर्य तात्त्विक विश्लेषण की परम्परा नातिदीर्घ है। सन 1965 ई० में कृतियों के सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन का शुभारम्भ हुआ किन्तु काव्य शास्त्र के सौन्दर्य परक अध्ययन का विकास सन 1958 ई० में हुआ और प्रथम शोध प्रबन्ध के रूप में 'सत्यम शिवम सुन्दरम'[46] शीर्षक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुआ। इसके उपरान्त सन 1965 ई० में ललित कलाओं के प्रमुख तत्त्वों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन[47] शीर्षक शोध प्रबन्ध स्वीकृत हुआ। इसी क्रम में 'रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र,[48] ध्वनि सिद्धान्त का काव्यशास्त्रीय सौन्दर्य शास्त्रीय और समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन,[49] तथा सौन्दर्य सिद्धान्त और साधारणीकरण[50] शीर्षक शोध प्रबन्ध भी उल्लेखनीय हैं। इन शोध प्रबन्धों में तीन प्रबन्ध डी० लिट० उपाधि हेतु स्वीकृत हुए। सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से इनमें रस सिद्धान्त एवं ध्वनि सिद्धान्त से सम्बद्ध शोध प्रबन्ध विशेष महत्त्व रखते हैं जिनके विश्लेषण से काव्य शास्त्र में सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन की उपयोगिता स्पष्ट की जा सकती है।

सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र एक नवीन आयाम है। अभी तक तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग केवल ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र में होता था तथा कला एवं काव्य के सैद्धान्तिक विश्लेषण की दृष्टि से इस

दिशा में कोई प्रयत्न साहित्य समीक्षा ने नहीं किया तथा पाश्चात्य एवं भारतीय समीक्षक अपने साहित्य चिन्तन को ही पूर्ण और सार्वभौम मानकर उसके निष्पादन हेतु विमर्श करते रहे किन्तु 1963 ई० में रेनेवेलक ने तुलनात्मक काव्य शास्त्र की उपयोगिता सिद्ध की और उसका समर्थन प्रख्यात सौन्दर्यशास्त्री टामस मुनरो ने अपने ग्रन्थ oriental Aesthetic में किया। भारतीय साहित्य चिन्तकों ने इस दृष्टि से कोई प्रयोग नहीं किया था। यद्यपि इस अध्ययन की ओर मुनरो ने संकेत दे दिया था। मुनरो ने स्पष्ट रूप से लिखा कि पौर्वात्य एवं पाश्चात्य कला सम्बन्धी अवधारणाओं के बीच सामञ्जस्य स्थापित करना सहज नहीं है। इसके लिए तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा दोनों क्षेत्रों को स्पष्टतः सीमांकित करना तथा उन सिद्धान्तों को दर्शन की कसौटी पर खरा उतारना ही दोनों दृष्टियों के अध्ययन के लिए आवश्यक है।[82]

पाश्चात्य विचारकों की इन नवीन अवधारणाओं ने भारतीय चिन्तन को भी व्यापक परिप्रेक्ष्य में आकलित होने के लिए प्रोत्साहित किया और भारतीय समीक्षा में सौन्दर्यमूलक तत्वों के अन्वेषण का प्रयत्न हुआ। भारत में सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से रस का उल्लेख किया जाता है क्योंकि यहाँ पर रस की व्याप्ति सर्वत्र मानी गयी है। छान्दोग्य उपनिषद में रस की व्याप्ति का विवेचन करते हुए कहा गया है कि रस क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर व्याप्ति की ओर अग्रसर होता गया है'।[83] इस रसात्मक सौन्दर्य की व्याप्ति को देख करके ही लुई रेनू ने कहा कि सौन्दर्य शास्त्र का जितना गहरा रूप भारत में मिलता है उतना और कहीं नहीं।[84] सौन्दर्य शास्त्र की इस विशिष्ट स्थिति का स्वीकरण होने पर भी भारतीय चिन्तकों ने सौन्दर्य शास्त्र को विवेचित नहीं किया है जबकि नितान्त भौतिक चिन्तन से प्रभावित पाश्चात्य चिन्तकों ने सौन्दर्य को एक सबल दार्शनिक आधार प्रदान किया। इन विचारकों में अरस्तू और लोंजाइनस जैसे विद्वानों के अतिरिक्त दकार्ते वाल्टो जान लॉक एडीसन एडमण्ड बर्क, जी०ई० लेसिंग श्लेगेल, हेगल, गेटे और शिलर जैसे विद्वानों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। जब आधुनिक समीक्षकों एवं शोधों द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय रस सिद्धान्त एवं पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र का विकास मूलतः एक ही भावधारा से हुआ है तो हिन्दी साहित्य के अनुसन्धित्सुओं में भी तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र के प्रति जिज्ञासा हुई और इस दृष्टि से शोध कार्य प्रारम्भ हुआ। तुलनात्मक सौन्दर्य शास्त्र से सम्बद्ध प्रथम शोध प्रबन्ध 'रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र' दिल्ली विश्व विद्यालय के तत्वावधान में डॉ० निर्मला जैन द्वारा लिखा गया। हिन्दी में तुलनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध यह प्रथम भारतीय शोध ग्रन्थ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके समक्ष विश्लेषण के समय आधारभूत सिद्धान्त भी नहीं थे किन्तु शोध कर्त्री ने विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर इन दोनों दृष्टियों को सार्वभौमिक सन्तुलन प्रदान करके तुलनात्मक

अध्ययन की उपादेयता भी सिद्ध कर दी है। इस प्रसंग मे यह भी उल्लेख्य है कि भारतीय विचारकों की इस अवधारणा का खण्डन भी प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है कि रस सूक्ष्म है और सुन्दर स्थूल, क्योंकि प्रस्तुत प्रबन्ध से यह स्पष्ट हो गया है कि न तो रस उतना सूक्ष्म है जितना समझा जाता है और न ब्यूटी ही उतनी स्थूल है जितनी कही जाती है। यदि स्थूलता का आधार ऐन्द्रियता ही है तो आस्वाद परक रस भी एक स्तर पर ऐन्द्रिय व्यापार है। इसी प्रकार यदि सूक्ष्मता का आधार अतीन्द्रियता है तो रस के समान ही 'ब्यूटी' को भी पश्चिमी चिन्तन मे अतीन्द्रिय स्तर पर परिभाषित किया गया है। रस का सम्बन्ध यदि आत्मा से है तो ब्यूटी भी आइडिया तथा इनटयूशन जैसे सूक्ष्मतम अतीन्द्रिय तत्वों से सम्बद्ध की गयी है। इसलिए स्थूलता-सूक्ष्मता के आधार पर इन दोनों अवधारणाओं में अन्तर करने का प्रयास निरर्थक है।[54]

उपर्युक्त शोध प्रबन्ध में तुलनात्मक सौन्दर्य शास्त्र की दृष्टि से जो विवेचना हुई है उसे यदि दार्शनिक अनुसंधान के निकष पर परखा जाता है तो शोध प्रबन्ध की विवेचना पद्धति की वैज्ञानिकता संदिग्ध हो जाती है। दार्शनिक पद्धति के अन्तर्गत आनुभविक तार्किक एवं बौद्धिक पद्धतियों का वर्गीकरण हुआ है। जैसा कि प्रबन्ध के शीर्षक से स्पष्ट है कि इसमें आनुभविक विधि के लिए रञ्चमात्र भी अवकाश नहीं है। अतएव स्वतः सिद्ध हो जाता है कि इसमें तर्कना का प्रयोग अपरिहार्य है किन्तु तुलनात्मक समीक्षा पद्धति में तर्क को भी विवेचन के लिए सीमित क्षेत्र ही मिलता है तथा ऐतिहासिकता एवं इतिवृत्तात्मकता ही तुलनीय तत्वों को प्रभावित किये रहती है। प्रस्तुत प्रबन्ध में भी ऐतिहासिकता के प्रति अभिरुचि का व्यामोह सम्पूर्ण प्रबन्ध में विद्यमान है।

सौन्दर्य शास्त्र की भांति दार्शनिक चेतना से सम्बद्ध जिस नई विचार धारा का आगमन हिन्दी साहित्य में हुआ है उसे जीवन दर्शन कहा जा सकता है। जीवन दर्शन मूलतः दर्शन शास्त्र की अपेक्षा समाज शास्त्र के निकट है किन्तु जब लेखकीय प्रतिभा यथार्थ जीवन में ही आनन्दानुभव करती है और उसमें व्यक्ति की अन्तश्चेतना के विकास का अवसर सुलभ होता है तो उसे दार्शनिक मान लिया जाता है। यहाँ प्रश्न यह है कि क्या मानव जीवन को दर्शन के क्षेत्र में लाया जा सकता है? इस सम्बन्ध में डा० सुधांशु ने स्पष्ट रूप से कहा है कि—मानव जीवन एक गूढ़ विषय है अतः उसके सम्बन्ध में कोई भी निर्णय सर्वथा विवाद रहित नहीं माना जा सकता।[55] इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि विश्व चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम जीवन है[56] महात्मा गाँधी ने भी जीवन को ऐसी लालसा माना है जिसमें आत्म ज्ञान की सफलता के लिए प्रयास किया जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जीवन जब मानव के सर्वांगीण चित्र को उपस्थित करता है तभी उसे दर्शन माना जाता है।' इस अर्थ में जीवन दर्शन या

कलाकार का जीवन दर्शन एक विशिष्ट सत्य की ओर संकेत करता है। संक्षेप में जीवन दर्शन कलाकार की जीवन की आलोचना होती है।[67]

जीवन दर्शन से सम्बद्ध शोध ग्रन्थों में इनके विधायक तत्वों का ही विवेचन होता है। इसलिए भारतीय दर्शन में जगत के मिथ्यात्व रूप की कल्पना के कारण जीवन दर्शन को दर्शन से पृथक रखा गया है क्योंकि भारतीय दार्शनिक दर्शन को परम सत्य मानते हैं जबकि जीवन दर्शन के प्रतिमान सदैव परिवर्तित होते रहते हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्य में समीक्षकों ने जीवन को भी दर्शन के अन्तर्गत महत्व दिया है। वस्तुतः भारतीय चिन्तन जीवन के प्रति अनास्थावादी रहा है। इसी निवृत्ति के कारण भारतीय विचारकों ने जीवन को दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया किन्तु यह धारणा उचित नहीं प्रतीत होती क्योंकि जिस प्रकार जीवन का सत्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होता है उसी प्रकार विभिन्न मतवादों ने दार्शनिक शक्ति की अखण्डता पर भी तीव्र प्रहार किया है। ऐसी स्थिति में हमारे सत्य के प्रतिमान भी अपनी शाश्वत सत्ता को संजोये नहीं रख पाते। इसके विपरीत यदि जीवन को भी पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अधुनातन विचारधारा के अनुरूप विश्लेषित किया जाय तो उसमें आंशिक सत्य की प्रतीति अवश्य होगी। वस्तुतः दर्शन के अन्तर्गत हम स्वानुभव के द्वारा बौद्धिक एवं तार्किक पद्धतियों के आधार पर स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हैं, जबकि जीवन दर्शन के क्षेत्र में साहित्यकार अथवा विचारक यथार्थ में रहकर लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अनथक प्रयास करते हैं। इसलिए हम दर्शन को एक विचारधारा मान सकते हैं और जीवन दर्शन को उस विचारधारा का आंशिक प्रतिफलन।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में जीवन दर्शन का अध्ययन प्रारम्भ में नहीं किया गया, क्योंकि परम्परित पद्धतियों ने हिन्दी शोध को इतिहास एवं दर्शन के सीमित परिवेश में आबद्ध कर दिया था, किन्तु जब हिन्दी के उपन्यासकारों ने समाज को एक व्यापक मार्गदर्शन दिया तो उसके मूल्यांकन की आवश्यकता प्रतीत हुई और साहित्यकारों के कृतित्व का जीवन दर्शन परक अध्ययन अनुसन्धित्सुओं ने किया। प्रारम्भ में यह पद्धति उपन्यासों तक ही सीमित रही किन्तु कालान्तर में काव्य की जीवन परक चेतना का अनुशीलन हुआ। जीवन दर्शन को दार्शनिक आधार देने में भी इन काव्य चिन्तकों का ही प्रमुख योगदान रहा है। हिन्दी में जीवन दर्शन से सम्बद्ध जितने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं उनमें सर्वप्रथम प्रबन्ध 1965 ई० में लिखा गया तथा इसमें दो विभिन्न युगों के एक ही विचारधारा एवं कथा में सम्बन्धित ऐहिक जीवन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया, जिससे इस क्षेत्र में शोध का पथ अधिक प्रशस्त हुआ।

दार्शनिक अनुसन्धान की महत्वपूर्ण पद्धति के रूप में भारतीय दर्शन से सम्बद्ध शोध ग्रन्थों की पद्धतियों का उल्लेख किया जा सकता है, जैसा कि संकेत

दिया जा चुका है कि का य और दशन साहित्य मे अ यो याश्रित होकर आये हैं तथा प्रत्येक का यकृति किसी न किसी दाशनिक विचारधारा स अनुप्राणित रही है कि तु इनम भी भक्तिकाल एव छायावादी हि दी कविता म दाशनिक विचार धारा का प्रतिफलन हुआ है। इन दाशनिक का य ग्रथो म भारतीय दशन ही पष्ठ भूमि म रहा है। जिसे समाज एव रचनाकार क व्यक्तित्व के अनुरूप सस्कारित किया गया है। यदि इन समग्र कृतियो पर आधारित शोध प्रब धो का मल्याकन किया जाय तो उसम हमे ब्रह्म, जीव माया जगत और भक्ति के ही विविध रूप मिलते हैं। इन शोध ग्रथो का विश्लेषण करत समय समस्त प्रब धो को तीन भागो म विभाजित किया जा सकता है —

1 हिन्दी का य की दाशनिकता स सम्बद्ध शोध ग्र थ।
2 प्रवत्ति विशेष की दाशनिकता स सम्बद्ध शोध ग्र थ।
3 कवि विशेष की दाशनिकता स सम्बद्ध शोध ग्र थ।

1 हि दी काव्य की दाशनिकता से सम्बद्ध शोध ग्रन्थ-हि दी काव्य म दाशनिक तत्वों के अनुस धान का के द्र मध्ययुग और आधुनिक काल को बनाया गया है। ऐसे शोध ग्रथो म दशन क एक अग अथवा विविधागो का जो प्रभाव पडा है उसे ही विवेचित किया गया है। इनमे माया के स्वरूप का विवेचन ही मुख्य रूप स हुआ है। हि दी क भक्ति का य म माया का स्वरूप हि दी भक्ति साहित्य मे योग भावना हि दी सगुण भक्ति कविता पर वेदा त का प्रभाव हि दी का य मे नियतिवाद हिन्दी का य म वेदा त का स्वरूप[58] दि इन्फ्लुएस आफ योग फिलासफी आन हि दी पोयट्री[59] आधुनिक हि दी का य पर अरविन्द दशन का प्रभाव[60] (कृष्णा शारदा), आधुनिक हि दी का य पर अरविन्द दशन का प्रभाव (प्रताप सिंह चौहान) जसे शोध ग्र थ प्रमुख हैं इन शोध ग्र थो म किसी एक दाशनिक तत्व क आधार पर समस्त हि दी का य अथवा विशिष्ट युग क हि दी काव्य की समीक्षा की गई है। चू कि भारतीय दशन का विकास श्रौत दशन स हुआ है, इसलिए समस्त अनुस धायको ने इन प्रब धों म श्रौत साहित्य क चारो अगो-सहिता ब्राह्मण, आरण्यक एव उपनिषद को ही आधार बनाया है और प्रारम्भ मे इ ही ग्र थो की दार्शनिक मान्यताओ का परिचय दिया है और उसक बाद हि दी की दाशनिक कृतियो को वदिक साहित्य क परिप्रेक्ष्य म विवेचित किया है। हिन्दी साहित्या नुशीलन म शोधार्थियो क लिए विषय जटिलता नही आई है, क्योंकि व्यक्ति निष्ठ दाशनिक परम्परा का विकास हि दी शोध क प्रारम्भिक काल स ही हो गया था और साहित्यानुस धान क क्षेत्र म सम्पूण हि दी साहित्य की दाशनिकता क अनु शीलन का प्रयत्न उत्तर कालीन शोधार्थियो न किया। इसलिए हिन्दी साहित्य के अध्ययन क लिए इन शोधार्थियो क पास प्रभूत सामग्री उपल ध थी। हि दी

साहित्य पर वैदिक ग्रन्थों का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा है कि निर्गुण एवं सगुण भक्ति काव्य से लेकर उत्तर छायावादी काव्य तक उसका प्रभाव देखा जा सकता है। इसका मुख्य कारण दर्शन एवं काव्य की समान अन्तश्चेतना है। इसे विवेचित करते हुए अरविन्द ने कहा है कि यदि कविता से दर्शन को बिल्कुल पृथक कर दिया जाय तो विश्व की आधी कविता तो निश्चय ही समाप्त हो जायगी। संगीत कला और कविता अपने प्रारम्भ से गम्भीरतम और महत्तम वस्तुओं की अनुभूति की अभिव्यक्ति देती आ रही है ऊपरी स्तर की छिछली वस्तुओं को नहीं।[61]

इन समग्र विवेचक शोध ग्रन्थों में जो शोध प्रबन्ध केवल मध्ययुगीन काव्य से सम्बद्ध हैं उनमें भारतीय दर्शन के विविध सम्प्रदायों का विश्लेषण हुआ है किन्तु आधुनिक काव्य के विश्लेषक दार्शनिक शोध प्रबन्धों में परमाणुवाद भौतिकवाद मानववाद जैसी पाश्चात्य विचारणाओं एवं अरविन्द तथा विवेकानन्द जैसे भारतीय चिन्तकों की आधुनिक विचारधाराओं का भी समावेश हुआ है। इनमें भी हिन्दी काव्य को अरविन्द के अति मानववादी सिद्धान्त ने विशेष रूप से प्रभावित किया है जिसका विवेचन हिन्दी शोधार्थियों ने किया है क्योंकि श्री अरविंद ने जगत और मानव के बुनियादी तत्वों को अपनी पारदर्शक दृष्टि से देखा था, उन्होंने इस कारण काव्य को दर्शन के साथ सम्बद्ध करके उनमें एकरूपता लाने की चेष्टा की क्योंकि यदि वास्तव में देखा जाय तो दार्शनिक की भाँति कवि के भी काव्य के विषय मानव और मानवता है।[62]

हिन्दी काव्य के समग्राकलन से यद्यपि कवियों के स्वतन्त्र अध्ययन को बल मिला है किन्तु इन शोध प्रबन्धों का दार्शनिक पद्धतियों के आधार पर कोई विशेष योगदान नहीं रहा है क्योंकि विषय विस्तार के कारण ये शोधकर्ता केवल ऐतिहासिक वर्णन करने में समर्थ रहे हैं। इन समस्त शोध ग्रन्थों के पूर्वार्द्ध में दर्शन का इतिहास, दर्शन के स्वरूप एवं उत्तरार्द्ध में इन प्रवृत्तियों के प्रभाव का विश्लेषण हुआ है। हिन्दी काव्य पर माया का प्रभाव देखते समय लेखक द्वय ने विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के अन्तर्गत माया की सस्थिति का उद्घाटन किया है और उसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कवियों की मायावादिता को विवेचित कर दिया है, जिससे माया के परम्परित स्वरूप का बोध तो हो जाता है किन्तु उसकी अभिनव व्याख्या नहीं हो पाती और आधुनिक सन्दर्भों में भारतीय दर्शन की जो अवहेलना हो रही है उसका निराकरण नहीं हो पाता क्योंकि वैदिक युग से लेकर भक्ति युग एवं छायावाद तक माया के कार्यात्मक स्वरूप में तो अन्तर आया है किन्तु विवेचक दृष्टि में किसी परिवर्तन का संकेत नहीं मिलता क्योंकि आधुनिक अनुसंधायक दार्शनिक प्रबन्धों में बौद्धिक एवं तार्किक चिन्तन की अपेक्षा ऐतिहासिक अनुसंधान की तथ्यात्मक एवं तुलनात्मक पद्धति को ही व्यवहृत कर रहे हैं।

2 प्रवृत्ति विशेष की दार्शनिकता से सम्बद्ध शोध ग्र थ–इस वर्ग के अंतगत हि दी साहित्य के विभिन्न युगो में व्याप्त प्रवृत्तियों का दार्शनिक अनुसधान किया गया है। इस दष्टि स भी भक्ति कालीन साहित्य का दार्शनिक विवेचना उत्कृष्ट रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से भक्ति काल को निगु ण एव सगुण दो भागो में विभाजित किया गया है जिसके क्रमश स त एव सूफी तथा राम और कृष्ण भक्ति परक चार सम्प्रदाय निर्मित हुए हैं। भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य मे इन सम्प्रदायो म यत्किचित साम्य मिलता है जिसका विश्लेषण साहित्यानुसधित्सुओ ने भी किया है। दार्शनिक अध्येताओ ने भी इसी वर्गीकरण को आधार बनाकर दार्शनिक अध्ययन को चार प्रवत्तियो मे बाँट दिया है। इनमे कतिपय शोध ग्र थ केवल निगु ण एव सगुण भक्ति काव्य से सम्बद्ध हैं जबकि अधिकाश प्रब धो म चारो सम्प्रदायो का विभाजन हुआ है।

3 कवि विशेष की दार्शनिकता से सम्बद्ध शोध ग्र थ–कवि विशेष के दार्शनिक अध्ययन की परम्परा 1918 ई० में डा० कारपेण्टर के शोध प्रब ध स प्रारम्भ हुई तथा 1938 मे उद्भव काल के एक मात्र शोध ग्र थ तुलसी दशन' मे भी कवि विशेष की दार्शनिकता का विवेचन हुआ। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ स ही अनुसधित्सुओ ने साहित्यकारो के का य में दार्शनिक तत्वो के अनुस धान के प्रति अभिरुचि प्रदर्शित की। हि दी साहित्य मे दार्शनिक उदभावनाओ की दष्टि स कबीर तुलसी एव प्रसाद क ग्र थ अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए इन्ही साहित्यकारो की दार्शनिक मीमासा का प्रयत्न हुआ है।

इन आधुनिक कवियो के कृतित्व के दार्शनिक अनुशीलन का जो प्रयास हुआ है उससे सद्धान्तिक आधार पर दार्शनिक पद्धतियो का विनियोग नही किया गया है, क्योकि प्राय समस्त अनुसधित्सुओं ने दार्शनिक अध्ययन के क्रम में वज्ञानिक तकना की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यात्मकता को ही आधार बनाया है। यद्यपि आधुनिक भौतिकतावादी परिदष्टि के अन्तगत आनुभविक क्रिया विधियो के प्रवेशण की सम्भावनायें क्षीण हो गयी हैं तथापि रचनाओ को स्वविवेक एव तकना के आधार पर विश्लेषित करने से ही कवियो के कृतित्व का सटीक परीक्षण हो सकता है। इसलिए दार्शनिक अनुस धान के क्षत्र म प्रस्तुत हुए शोध ग्र थो की इतिवत्तात्मकता का परित्याग करने के लिए वज्ञानिक पद्धतिशास्त्र को आधार बनाना समीचीन प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 The Love study or pursuit of wisdom or of knowledge of things their causes whether theoretical or practical
–The oxford English Dictionary, Vol VIII Page–781

2 डा० जगदीश गुप्त–स्वच्छ दतावादी का य धारा का दार्शनिक विवेचन प्राक्कथन अश से उद्धत।

3 डॉ० उमेश मिश्र-'भारतीय दर्शन' पृ० 7-8
4 R A Scott James-'The Making of Literature' P 239
5 "No Man was ever yet a great poet without being at the same time a profound philosopher For poetry is the blossom and the fragrancy of all human knowledge human thought human passions emotions, language"
R A Scott James-'The Making of Literature' P 238
6 महादेवी वर्मा-'विवेचनात्मक चिन्तन के क्षण' पृ० 5
7 डॉ० एस० राधाकृष्णन-'दि फिलासफी आफ रवीन्द्र नाथ टैगोर' पृ० 195
8 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध' पृ० 56
9 The scientific and philosophical study of beautiful and ugly
James Drever 'A Dictionary of Psychology' P 10
10 Aesthetics is the science of the expressive representative or imaginative activity -Benedetto Croce
'Aesthetic' Page 155
11 Aesthetic theory is a branch of philosophy
Bosanquet A History of Aesthetic Page 11
12 Monuments of art which are the stimulants of aesthetic reproduction are called beautiful things or the physically beautiful This combination of words consitutes a verbal paradox because the beautiful is not a physical fact, it does not belong to things but to the activity of man to spiritual energy
-Benedetto Croce 'Aesthetic' P 159
13 The great arts can have put three principles directions of purpose first, that of enforcing the religion of man, secondly, that of perfecting their ethical state Thirdly that of doing them material service Ruskin Lectures on Art, Page 43
14 डॉ० जयभानु सिंह-'हिन्दी में रवीन्द्र नाथ ठाकुर' पृ० 17
15 डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र-'तुलसी दर्शन' नागपुर वि० वि० 1938 ई०, डी० लिट्०
16 वही प्रस्तावना पृ० 2
17 डॉ० रा० हरिश्चन्द्र-पूना विश्व वि० 1966 ई०
18 डॉ० शिवदत्ती मिश्र-इलाहाबाद वि० वि० 1949 ई०

19 डॉ० सेवासिंह–पंजाब वि० वि० 1973 ई०
20 डॉ० रामकिशोर तिवारी–मगध वि० वि० 1971 ई०
21 डॉ० रमाकान्त शर्मा–आगरा वि० वि० 1969 ई०
22 डॉ० सुमित्रा शर्मा–मेरठ वि० वि० 1975 ई०
23 डा० कमल रजावत– सागर वि० वि०, 1969 ई०
24 डॉ० रामगोपाल शर्मा–आगरा वि० वि०, 1960 ई०
25 डॉ० प्रेमहंस मिश्र–काशी हिन्दू वि० वि० 1971 ई०
26 डॉ० वीणा माथुर–राजस्थान वि० वि० 1971 ई०
27 डा० वेणप्रत मिश्र हा–इलाहाबाद वि० वि० 1969 ई० डी० लिट०
28 डा० विनोद कुमार–जम्मू वि० वि० 1971 ई०
29 डा० सन्त नारायण उपाध्याय–कलकत्ता वि० वि० 1964 ई०
30 डॉ० नागेश्वर चौधरी 'नागेश' मगध वि० वि० 1975 ई०
31 डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित–लखनऊ वि० वि० 1956 डी० लिट०
32 डॉ० रामकृष्ण प्रसाद मिश्र–बिहार वि० वि० 1968 ई०
33 डॉ० हरबंश लाल शर्मा–हिमाचल प्रदेश वि० वि० 1972 ई० डी० लिट०
34 डॉ० सुचितनारायण प्रसाद–पटना वि० वि० 1967 ई०
35 डॉ० शिवशंकर पाण्डेय–कुरुक्षेत्र वि० वि० 1972 ई०
36 डा० गयाप्रसाद उनियाल–पंजाब वि० वि० 1965 ई०
37 डा० पूनम दइया–सरदार पटेल वि० वि० वल्लभ विद्या नगर 1966 ई०
38 डॉ० सुरेशचन्द्र त्यागी–के० एम० मुन्शी विद्यापीठ आगरा 1970 ई०
39 डॉ० वृद्धिनाथ झा–कलकत्ता वि० वि० 1974 ई०
40 डा० लक्ष्मी प्रसाद तिवारी–जबलपुर वि० वि० 1971 डी० लिट
41 डा० मोहनलाल श्रीवास्तव–मेरठ वि० वि० 1972 ई०
42 डा० कन्हैयालाल–बनारस हिन्दू वि० वि० 1973 ई०
43 डॉ० कलाशनाथ–पंजाब वि० वि 1973 ई०
44 डा० पृथ्वीराज शर्मा–पंजाब वि० वि० 1972 ई०
45 डा० वी० नागराजू–वेंकटेश्वर वि० वि० 1972 ई०
46 डा० रामानन्द तिवारी–राजस्थान वि० वि० 1958 ई०
47 डॉ० कुमार विमल–पटना वि० वि० 1965 ई० डी० लिट०
48 डॉ० निर्मला जैन–दिल्ली वि० वि० 1968 ई० डी० लिट०
49 डा० कृष्ण कुमार शर्मा–इलाहाबाद वि० वि० 1974 ई० डी० लिट०
50 डॉ० प्रेमकान्त टण्डन–विश्व भारतीय वि० वि० 1973 ई०
51 The first step needed is a clearer demarcation of the areas of comparative agreement and disagreement when all competing theories are placed in the area of world opinion we can

then see which best survive the test of time That test must include not only intellectual argument but practical application in art and other areas of life

–Thomas Munro–'oriental Aesthetics' Page 136

52 एषां भूतानाम् पृथ्वी रस । अपामोषधयो रस ।
ओषधीनां पुरुषो रस । पुरुषस्य वाग रस । ऋच साम रस ।
साम उद्गीथो रस । छान्दोग्योपनिषद 1/1/2 3

53 Of all the branches of learning which stem from the genius of India fue are as profoundly Indian as Aesthetic Lui Renu–'Diogenes No 1-1953 P 130

54 डॉ० निर्मला जैन– रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृ० 436

55 डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु–जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त पृ० 250

56 जयशंकर प्रसाद– 'एक घूँट' पृ० 15

57 डॉ० आदर्श सक्सेना– हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि पृ० 237

58 डॉ० नारायण प्रसाद वाजपेयी–आगरा वि० वि०, 1966 ई०

59 डॉ० क० एल० शर्मा–जोधपुर वि० वि० 1963 ई०

60 डॉ० कृष्णा शारदा–दिल्ली वि० वि० 1970 ई०

61 सेन्स आफ अरविन्द– पृ० 36

62 डॉ० प्रतापसिंह चौहान– 'हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन' पृ० 328

O

6
हिन्दी की ऐतिहासिक अनुसन्धान-पद्धतियाँ

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसन्धान की परम्परा दार्शनिक अनुसन्धान पद्धति के समानान्तर सर्वाधिक परिपुष्ट एवं प्राचीन है। विज्ञान के रूप में इतिहासकार इतिहास की प्रक्रिया से परिचय प्राप्त करने के लिए प्रामाणिक तथ्यों का सङ्कलन और सञ्चयन करता है। यह प्रामाणिक तथ्य एक नहीं अनेक होते हैं और यह इतिहासकार के विवेक पर निर्भर करता है कि वह अनेक तथ्यों के समूह में से उन तथ्यों का ही चयन करे जो मानव समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण अवदान के अधिकारी हैं। इस दृष्टि से इतिहासकार एवं साहित्येतिहास क्षेत्र के अनुसन्धित्सु दोनों के कार्य क्षेत्रों में पर्याप्त भिन्नता है। ऐतिहासिक अनुसन्धित्सु साहित्य के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक के विकास की ऐतिहासिक रूप रेखा स्पष्ट करता है। साहित्य ने युग पर अपना जो प्रभाव डाला है तथा युगीन परस्थितियों से प्रभावित होकर उसने जो विशेष प्रकार की रचनाएँ युग को दी हैं उन सबका वैज्ञानिक अनुशीलन ऐतिहासिक अनुसन्धित्सु करता है और इस अनुशीलन परिशीलन में इतिहास उसकी सहायता करता है।

साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले रचनाकारों का कालक्रम अथवा वर्णानुक्रम से परिगणन मात्र कर लेना ही इतिहास नहीं है। इतना कर लेने पर साहित्येतिहास रचनाकारों की तालिका मात्र रह जायेगा और चूँकि साहित्येतिहास मात्र साहित्यकारों या कवियों का वृत्त सङ्ग्रह या काल सङ्ग्रह मात्र नहीं है वरन साहित्येतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसन्धान साहित्य का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए युगीन सचेतना का ज्ञान तथा साहित्य पर विविध धाराओं एवं प्रभावों का परिशीलन करता हुआ साहित्य तथा समाज के मूल में निहित है शाश्वतता को जानने का प्रयास करता है। साहित्यिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए इतिहास के परिचय के बिना साहित्यानुसन्धान अग्रगामी नहीं हो सकता क्योंकि इतिहास उस गति तथा स्फूर्ति देता है। इतिहास तो अनुसन्धान की प्रक्रिया अथवा एक प्रणाली मात्र है। विषय वस्तु से सम्बद्ध होने पर उसे किसी विशेषण से युक्त होना पड़ता है।[1] राजनीतिक इतिहास धार्मिक इतिहास आर्थिक इतिहास आदि सभी में विगत घटनाओं का विवेचन रहता है। इसी प्रकार साहित्यानुसन्धान में साहित्यकार और उसकी साहित्यिक कृति पर ही अनुसन्धित्सु का ध्यान केन्द्रित रहता है। इस प्रकार चेतन मनुष्य के

सभी क्रिया कलाप ऐतिहासिक अनुसंधान का लक्ष्य बनते है। क्राचे ने इतिहासकार को दार्शनिक की संज्ञा से अभिहित किया है।

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के सर्वप्रथम प्रयोक्ता अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार टेन ही हैं। उनके माध्यम से इस पद्धति का उन्नयन एवं विकास हुआ जिसका उल्लेख ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धतियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में पर्याप्त रूप से किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त का प्रभाव भी ऐतिहासिक अनुसंधान पर पड़ा है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया कि ऐतिहासिक अनुसन्धान अतीत की घटनाओं का संकलन न होकर विकास क्रम का अध्ययन है। इस प्रकार वैज्ञानिक सचेतना के परिणाम स्वरूप ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति में वैज्ञानिक परिदृष्टि को अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ है।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसंधित्सु का मूल उद्देश्य गत के आधार पर वर्तमान को समझना एवं भविष्य के लिए उसके समुज्ज्वल पथ को और भी अधिक प्रशस्त करना है। ऐतिहासिक अनुसंधान में अनुसंधित्सु किसी साहित्यकार की कृति के समुचित मूल्यांकन के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित होना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता है क्योंकि कवि और कलाकार युग की ही उपज होता है और कलाकार पर युगीन प्रभाव पड़ना अपरिहार्य है। ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के अन्तर्गत राजनीति समाज विज्ञान दर्शन विज्ञान, आर्थिक जीवन, सांस्कृतिक परम्परा आदि से सम्बद्ध पीठिका में साहित्य को समझने की चेष्टा की जाती है जिनके आधार पर ऐतिहासिक अनुसंधित्सु कुछ विशिष्ट निष्कर्षों तक पहुंचता है।

इतिहास पुरातत्व का अंग है और पुरातत्व का साहित्य से भी गहन सम्बन्ध है। प्राचीनकाल में शिलालेख पाण्डुलिपियाँ तथा ताम्रपत्र साहित्य को सुरक्षित रखने के महत्वपूर्ण साधन थे। इसलिए मुद्रण कला के अभाव में इस विपुल साहित्य को सुरक्षित रखना एक समस्या थी।[3] ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति के आधार पर प्राचीन रचनाओं का पाठ सम्पादन किया गया और शुद्ध पाठ निर्धारण के लिए रचयिता से सम्बन्धित अन्य सूचनाओं का भी संकलन किया गया। इस प्रकार ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति के माध्यम से साहित्येतिहास का एक क्रम बद्ध रूप प्राप्त हुआ। गार्साँ द तासी, ग्रियर्सन, मिश्र बन्धु तथा आचार्य शुक्ल के हिन्दी साहित्य का इतिहास सघन अनौपचारिक ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है लेकिन इसका वास्तविक अभ्युदय शोध सर्वेक्षण के आधार पर उद्भव काल से माना जा सकता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान का महत्व इस तथ्य में निहित है कि वह शिक्षा मनोविज्ञान तथा अन्य सामाजिक मनोविज्ञानों में चिन्तन को नई दिशा देने एवं

नीति निर्धारण में सहायता करता है। एतिहासिक अनुसंधित्सु यह भी बताता है कि तथा कथित नयी कही जाने वाली वस्तुओं में नवीनता कहाँ तक है तथा बीच के परिवर्तनों के प्रभाव क्या पड़े हैं? इस प्रकार ऐतिहासिक अनुसन्धान त्रुटियों के प्रति सजग करके मार्ग प्रशस्त करता है।[5] सामाजिक विज्ञानों के अतिरिक्त यही बात साहित्य पर भी लागू होती है। साहित्य में आज नयी कही जाने वाली वस्तु में कहाँ तक नवीनता है और उस नवीनता पर कहाँ तक विविध साहित्य धाराओं का प्रभाव पड़ा है। यह कार्य भी ऐतिहासिक अनुसंधित्सु सम्पादित करता है। अन्य शब्दों में एतिहासिक अनुसंधान का लक्ष्य भूत वर्तमान तथा भविष्य का सम्बन्ध स्थापन है तथा साहित्य की गत्यात्मक परम्परा में निहित शाश्वत तत्वों का अन्वेषण करना है। इस प्रकार साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति ने पर्याप्त योगदान दिया है। हिन्दी साहित्य में इतिहास लेखन की जो एक क्रमबद्ध परम्परा दिखाई देती है वह यद्यपि अनौपचारिक अनुसंधान मानी जायगी परन्तु व्यवस्थित एतिहासिक अनुसन्धान की वह एक कड़ी है जिसके आधार पर ऐतिहासिक अनुसन्धान का भवन निर्मित हुआ।

ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियों में अन्तर्गत तथ्य स्वरूप प्रवृत्ति एवं तुलनात्मकता का अनुशीलन किया जाता है इसीलिए इन पद्धतियों का नाम करण भी इन्हीं के आधार पर किया गया है और तथ्यात्मक, प्रवृत्यात्मक रूपात्मक और तुलनात्मक पद्धतियों का निर्माण हुआ है। शोध प्रबन्धों के प्रारम्भिक काल से ही हिन्दी साहित्य का अध्ययन इन्हीं पद्धतियों के द्वारा होता रहा है ये पद्धतियाँ यद्यपि साहित्यिक शोधों में चिरन्तन से ही उपलब्ध रही हैं किन्तु इनका सैद्धान्तिक आधार अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है। इसका मुख्य कारण लक्ष्य ग्रन्थों में सिद्धान्त का समाधान का न होना है किसी भी समीक्षक अथवा शोध कर्ता ने एतिहासिक अनुसंधान की पद्धतियों एवं उनके विनियोग की सम्भावनाओं की ओर संकेत नहीं किया है और न तो उपलब्ध शोध ग्रन्थों का एतिहासिक आधार पर सर्वेक्षण ही किया गया है, जिसके कारण पुनरावृत्ति का ही प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसलिए आधुनिक विशेषत साम्प्रतिक युग में जबकि शोध क्षेत्र में आधुनिकता का अनुप्रवेश हो गया है और जिसके कारण अनुसंधित्सु तथ्यहीन थोथे सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना में संलग्न हैं उन समय एतिहासिक पद्धतियों के आधार पर शोधानुशीलन की आवश्यकता है। इसलिए सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के शोध ग्रन्थों की ऐतिहासिक दृष्टि से मीमांसा ही समीचीन प्रतीत होती है जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने हिन्दी साहित्य के प्रथम शोध ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसमें एतिहासिकता ही मुख्य रूप से विश्लेषित हुई है क्योंकि अनुसंधित्सु यदि अपने पूर्व युग अथवा समवर्ती साहित्य की समीक्षा करता है तो उसे किसी न किसी रूप में इतिहास का आश्रय लेना ही पड़ता है। इस दृष्टि से जहाँ

एव उनके कृतित्व के प्रामाणिक अध्ययन का प्रयास हुआ है। इसके पूर्व अनौपचारिक ऐतिहासिक ग्रन्थों शिवसिंह सरोज हिन्दी नवरत्न, मिश्र बन्धु विनोद इत्यादि में कवियों के जीवन वृत्त एव कृतित्व के सम्बन्ध में जो विवरण प्राप्त था उसमें सन्देहास्पदता अधिक थी इसलिए उन सन्देहों के निराकरण हेतु अनुसन्धित्सुओं ने प्रामाणिक जीवन परिचय देने का प्रयास किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि व्यक्तित्व विवेचन की परम्परा हिन्दी साहित्य के मध्यकाल मे भी विद्यमान थी तथा उस युग के कतिपय इतिहासकारो ने ऐतिहासिक ग्रन्थो का निर्माण किया था कवि वृत्त सग्रह की इस परम्परा का शुभारम्भ कि ही तुलसी ने किया था और 1955 ई० मे उन्होने पचहत्तर कवियों का वृत्त प्रस्तुत किया था। इसके उपरान्त कालदास हजारा' 1719 ई० में लिखा गया जिसमें दो सौ बारह कवियों का सकलन हुआ है। इसी क्रम में 'सतकवि गिरा विलास (बलदेव कवि 1746 ई०), 'विद्व मोदतरगिणी (सुब्बासिंह 1817 ई०), राग कल्पद्रुम कृष्णानन्द व्यासदेव राम सागर 1843 ई०) शृगार सग्रह (सरदार कवि 1848 ई०) दिग्विजय भूषण' (गोकुल प्रसाद 1868 ई०) 'सुन्दरी तिलक (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 1869 ई०) उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थो में कवि विशेष के व्यक्तित्व एव कृतित्व का विवेचन न करके उनकी रचनाओ का स्फुट सकलन किया गया है किन्तु इनमें निहित तथ्यों के आधार पर ही आधुनिक शोधो के निर्माण का आधार सबल हुआ। आधुनिक शोधो की रचनाओं म इन ग्रन्थो की अपूर्व प्रेरणा विद्यमान है। इसका मुख्य कारण साहित्यिक पूर्वजो के प्रति परवर्ती सहृदयो की साहचय कल्पना एव महजासक्ति है। हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र म इन्ही तत्वो के आधार पर कवि वृत्त के प्रामाणिक सग्रह का काय प्रारम्भ हुआ और गोस्वामी तुलसीदास जैसे लोकधर्मी किन्तु व्यक्तित्व गोपित कृतिकार के जीवन एव कृतित्व का सवप्रथम अध्ययन किया गया। इसी क्रम में भक्तिकाल एव रीतिकाल के अन्य कवियों के व्यक्तित्व एव कृतित्व से सम्बन्धित शोध प्रबन्धो का उल्लेख किया जा सकता है जिनकी सख्या शताधिक है। उद्भव काल के उपरान्त व्यक्तित्व एव कृतित्व परक शोध प्रबन्धो के विवेचन की दो पद्धतियाँ प्रयुक्त हुइ हैं एक वग के अन्तगत परम्परित आधार पर शोध ग्रन्थों का विश्लेषण हुआ है जबकि नवीन विचारधारा के शोध ग्रन्थो म युग विशेष के परिप्रेक्ष्य मे कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है तथ्य सकलन की दृष्टि से इस सहज पद्धति का प्रभाव कालान्तर म इतना बढा कि मध्ययुगीन काव्य के अतिरिक्त आधुनिक साहित्य के निर्माताओ के व्यक्तित्व का अनुशीलन भी प्रारम्भ हुआ जिसे विशेष उपयोगी नही माना जा सकता क्योकि अधुनातन साहित्यकारों का व्यक्तित्व गवेषणा का विषय नही बनाया जा सकता। सत्य तो यह है कि आधुनिक साहित्य की सीमाए समीक्षा तक सीमित रहती हैं

तथा उनमें अनुसन्धान की प्रवृत्ति का विकास नहीं हो पाता केवल पाठकीय सहजता एवं शोध की गम्भीरता के अभाव के कारण ही सामान्य शोधार्थी ऐसे तथ्यहीन चयन का लोभ सवरण नहीं कर पाते जिसके कारण व्यक्तित्व मूलक शोधों में विसंगतियों की भरमार हो जाती है किन्तु जब मध्यकालीन साहित्य को विवेच्य बनाया जाता है तो यही अध्ययन पद्धति ऐतिहासिक विकासवाद को जन्म देती है जिसमें कृत्यानुशीलन में सहायता मिलती है और इतिहास लेखक को भ्रमित नहीं होना पड़ता।

व्यक्तित्व विवेचन की दृष्टि से भक्तिकाल सर्वाधिक जटिल है क्योंकि लोकैषणा से पराङ्मुख भक्त कवि कैवल्य कामना में रत रहे। भौतिक यश के आकांक्षी न होने के कारण उन्होंने काव्य को उपजीव्य न मानकर उसे केवल अभिव्यक्ति का सामान्य साधन समझा है तथा उनके अन्दर काव्य प्रतिभा का जो प्रस्फुटन हुआ है उसमें कहीं भी अहम्मन्यता की प्रतीति नहीं होती। ऐसी स्थिति में उनकी चमत्कारी व्यक्तित्व एवं अद्भुत कृतित्व के प्रति उत्कट सामाजिक ललक ने विभिन्न जनश्रुतियों का विकास किया, जिससे उनका व्यक्तित्व सामाजिक पर्यावरण में विसर्जित होता गया। परिणामतः तुलसी एवं सूर प्रभृति प्रख्यात कवियों का इतिवृत्त भी सुलभ नहीं हो सका फिर अन्य सामान्य सन्तों के व्यक्तित्व का बोध तो दुष्कर होना ही था। इस क्षेत्र में कृतित्वावलम्बन की ऐतिहासिक पद्धति ने अप्रतिम योगदान किया और उस अन्तर्गत इतिवृत्त परम्परा का पुनर्नवीकरण करके साहित्येतिहास को प्रभावशाली एवं वैज्ञानिक बनाया।

युगीन परम्परा के परिप्रेक्ष्य में होने वाले शोध प्रबन्धों में काव्य की प्रवृत्ति का विवेचन ही मुख्य रहा है। इन शोध प्रबन्धों में यदि व्यक्तित्व को व्यक्तित्व परक शोध की अपेक्षा कम महत्त्व दिया है और उसके स्थान पर परम्परा एवं पृष्ठभूमि को ही विश्लेषित किया गया है। साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों पर आधृत कार्य परक प्रबन्धों की उद्भावना भी हुई है। इन शोध प्रबन्धों में व्यक्ति की अपेक्षा साहित्य के समग्र अध्ययन की प्रवृत्ति को बल मिला है। इतिहास लेखन से सम्बद्ध सभी शोध प्रबन्ध इसी कोटि में रक्खे जा सकते हैं। साहित्येतिहास की इस परम्परा का विकास दो दृष्टियों से हुआ है प्रथम वर्ग के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध इतिहास ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है और द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत युग विशेष के साहित्य को रखा जा सकता है ऐसे शोध प्रबन्धों का लेखन उद्भव काल से ही प्रारम्भ हुआ और प्रारम्भ में सम्पूर्ण साहित्य के अवलोकन का प्रयत्न हुआ। शोध प्रबन्धों में एक ही युग की विशिष्ट विचार धाराओं से सम्बद्ध तथ्यों का सकलन किया गया है और उन्हें ऐतिहासिक आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

तथ्यात्मक साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में पाठानुशीलन सर्वाधिक श्रम साध्य एव जटिल काय है, क्योंकि एक ही कृति की जितनी हस्तलिखित एव मुद्रित प्रतियाँ प्राप्त होती हैं और जो भी सहायक सामग्री टीका टिप्पणी के रूप में प्राप्त होती हैं उन सबका उपयोग करते हुए किसी कृति के स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न किया जाता है। इस पद्धति के अ तगत सकलन शोधन एव प्रस्तुतीकरण की तीन दुरूह प्रक्रियाओं के मध्य से अनुसधित्सुओं को अपना माग निर्मित करना पड़ता है। इसके लिये एक ही कृति की विभिन्न प्रतियों के सकलन हेतु शोधार्थी को अटनशील वृत्ति अपनानी पड़ती है तथा सकलित तथ्यों के शोधन हेतु निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से काम करना पड़ता है। तथा कभी कभी साम्प्रदायिक अथवा मार्मिक अभिव्यजना वाले शब्दों को भी अग्राह्य मान लेना पड़ता है इसी प्रकार शोधित पाठ की प्रस्तुति हेतु शोधार्थी एक समीक्षक के रूप में सामने आता है। पाठानुशीलन की इन विभिन्न पद्धतियों के कारण इस काय के लिये शोधार्थी का बहुमुखी व्यक्तित्व ही सहायक हो सकता है। इसीलिए पाठानुशीलक अनुसन्धित्सु स्वय में भाषा वैज्ञानिक अनुवादक साहित्यिक समीक्षक, पुरातत्वान्वेषक एव वज्ञानिक का यक्तित्व समाहित किये रहता है। हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में पाठानुशीलन का महत्व प्राचीन काल की कृतियों के सम्पादन की दृष्टि से ही है क्योंकि आधुनिक काल मे प्राय समस्त ग्रन्थ मुद्रितावस्था मे उपलब्ध हैं। प्राचीन काल में भी जो कृतियाँ एक ही क्रम म प्राप्त हैं उनके अध्ययन का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि पाठानुसधान एकाधिक कृतियों के पाठभेद की स्थिति में ही उपयोगी होता है। इसलिए सामान्यत भक्ति कालीन का य की मौखिक परम्परा वाले साहि य में पाठानुसधान की आवश्यकता पड़ी है क्योंकि इस प्रकार क साहित्य के अध्ययन की परम्परा सम्प्रदाय एव प्रवृत्ति के आधार पर परिवर्तित होती रहती है। उदाहरण क लिए सन्त कवियों के द्वारा जिस मौखिक साहित्य का विकास हुआ उसमें उनकी शिष्य परम्परा के कवियों ने अपने पदों को भी जोड दिया जिससे भिन्न भिन्न गद्दियों म पदों की सख्या घट बढ गई। इसी प्रकार इस पद परम्परा के अलिखित होने के कारण उनका भाषयिक स्वरूप भी बदल गया तथा क्षेत्रीय भाषाओं ने मूल साहित्यिक भाषा पर अधिकार कर लिया। ऐसी स्थिति में भाषा विज्ञान की वज्ञानिक पद्धति ने उसके मूल स्वरूप को प्रस्तुत करने में अप्रतिम योग दान दिया।

पाठानुसधान की प्रक्रिया की जटिलता का सकेत इसी स हो जाता है कि केवल कबीर के लगभग सोलह सौ पद, साढ़ चार हजार साखियाँ और एक सौ चौंतीस रमनियाँ विभिन्न हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों में मिली हैं, जबकि प्रामाणिक रूप से दो सौ पद बीस रमनियाँ एक सौ चौंतीसी रमनी तथा सात सौ चवालीस साखियाँ कबीर की सिद्ध होती हैं।[4] इसी प्रकार हि दी के यायावर

कवि देव के इतिहास ग्रन्थों में चौरासी ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है। इनमें से जब पाठालोचन के आधार पर कृतियों का परीक्षण हुआ तो उनके केवल दस ग्रन्थ प्रामाणिक माने गये। इनमें भी एक ही छन्द विभिन्न कृतियों में उपलब्ध है। उदाहरण के लिए काव्य रसायन के पांच सौ छिहत्तर छन्दों में एक सौ सत्रह छन्द उनके द्वारा रचित विभिन्न कृतियों में उपलब्ध हैं।[5] इस पाठ मिश्रण के कारण जहाँ पाठ सम्पादन में अत्यधिक सहायता मिलती है वहीं शब्द परिवर्तन से पाठ को प्रामाणिक बनाने में कठिनाई उपस्थित होती है। इन जटिल स्थितियों के बावजूद पाठानुशीलन की पद्धति ऐतिहासिक अनुसन्धान की दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखती है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र में इन तथ्याधारित पद्धतियों का मुख्य दायित्व विकास परक अध्ययन को सशक्त और प्रभविष्णु बनाना है। इन्हीं व्यक्तित्व कृतित्व युगीन एवं क्षेत्रीय इतिहास तथा प्रामाणिक कृतियों के आधार पर इतिहास ग्रन्थों का निर्माण किया जाता है। इन इतिहास ग्रन्थों में हिन्दी साहित्य की प्रवत्यात्मक व्याख्या की जाती है। इस सन्दर्भ में डॉ० भोलानाथ ने स्पष्ट किया है कि 'जिन विषयों पर अलग अलग उपाधियों के लिए अनुसन्धान कार्य किए जा सकें उन सबका एक ही कृति में सम्यक और सूक्ष्म अध्ययन यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा।'[6] लेखक के अनुसार साहित्येतिहास की विशिष्ट प्रवृत्तियों का स्वतन्त्र अध्ययन ही वज्ञानिक एवं उपादेय हो सकता है। इतिहास लेखन की इन प्रवृत्तियों के आधार पर शोध लेखन की दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। प्रथम प्रवृत्ति के अन्तर्गत विकासात्मक अध्ययन किया गया है तथा दूसरे वर्ग के प्रबन्धों में एक ही युग की विभिन्न प्रवृत्तियों का पृथक पृथक रूप से विवेचित किया गया है। प्रवत्यात्मकता का अध्ययन सांस्कृतिक सामाजिक, दार्शनिक और भावात्मक आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त साहित्य की विविध विधाओं में भी इतिहास के अनुसन्धान का प्रयास आधुनिक शोधों का विषय रहा है। प्रवृत्यात्मक शोध प्रबन्धों का विकास 1950 के उपरान्त हुआ। इसके अन्तर्गत विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। प्रवत्यात्मक दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य में परिवर्तन की प्रक्रिया का जो सातत्य रहा है उसने विशेष प्रभाव डाला है। इसीलिए आधुनिक हिन्दी साहित्य की विविध प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है जिनमें दार्शनिक सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों से सम्बद्ध शोध प्रबन्धों का विवेचन पृथक रूप से किया गया है।

इन प्रवत्यात्मक शोध ग्रन्थों में युग विशेष की सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। इसके अतिरिक्त

इस काल में विकसित समस्त प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में किसी विशिष्ट प्रवृत्ति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रवृत्ति के स्वरूप वैशिष्ट्य उसकी पूर्व परम्परा तथा उसकी काव्यपरक परिदृष्टि का आलोड़न ही अभीष्ट होता है। इसी क्रम में इस काव्य के समस्त कवियों के कृतित्व का अध्ययन करते हुए उनके काव्य में प्रवृत्तियों के मूल की व्याख्या भी प्रस्तुत की जाती है। हिन्दी के भक्ति कालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक की विभिन्न प्रवृत्तियों से सम्बन्धित जो शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं उनके द्वारा ऐतिहासिक अध्ययन की प्रेरणा को बल मिला है तथा साहित्येतिहास के प्रामाणिक लेखन हेतु सामग्री उपलब्ध हो सकी है। इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि कभी कभी एक युग की प्रवृत्ति के परवर्ती युग पर प्रभावों का भी विश्लेषण होता है किन्तु इसका विवेचन यहाँ अप्रासंगिक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कतिपय शोध प्रबन्धों में पूर्ववर्ती साहित्य में परवर्ती प्रभावों का विवेचन हुआ है। सामान्यतः यह परम्परा अधिक विकसित नहीं हुई। इस दृष्टि से भक्तिकाल में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ[7] रीतिकाव्य के स्रोत[8] जैसे शोध ग्रन्थ प्रमुख हैं। इनमें– रीतिकाव्य के स्रोत शीर्षक प्रबन्ध में संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश काव्य धारा में रीति कालीन तत्वों का विश्लेषण हुआ है जबकि भक्तिकाल में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ और सेनापति शीर्षक प्रबन्ध में भक्तिकाल को ही रीतिकालीन प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलित किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में सात अध्याय हैं जिनमें प्रथम अध्याय में भक्तिकाल और रीतिकाल का सामान्य परिचय दिया गया है। इसके उपरान्त द्वितीय अध्याय में प्रमाख्यानक काव्य में रीतितत्व तृतीय अध्याय में कृष्ण काव्य तथा चतुर्थ अध्याय में रामभक्ति काव्य का रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर विश्लेषण हुआ है। पंचम अध्याय में रीति काव्य के भक्ति कालीन प्रचारकों तथा उनके ग्रन्थों का विश्लेषण हुआ है। षष्ठ अध्याय तथा सप्तम अध्याय में सेनापति के कृतित्व का मूल्यांकन हुआ है जो परम्परा के विश्लेषण की दृष्टि से पृथक है।

हिन्दी साहित्य के प्रवृत्यात्मक अध्ययन के अन्तर्गत विकासात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन को ही स्थान दिया जा सकता है विकासात्मक परम्परा के क्रम में किसी प्रवृत्ति के आद्यन्त अवलोकन की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणतः यद्यपि सामान्य ऐतिहासिक परम्परा के अन्तर्गत कृष्ण भक्ति काव्य का विकास भक्ति काल तक ही सीमित माना जाता है किन्तु विकासात्मक अध्ययन के अन्तर्गत इसी परम्परा का अन्य युगीन सन्दर्भों में भी अनुशीलन होता है। इसीलिए रीतिकालीन अथवा आधुनिक काल में कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों को प्रवृत्ति के विकासात्मक अध्ययन के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है। इन शोध प्रबन्धों के

अध्ययन की सकीर्ण परिधि से उन्मुक्त अध्ययन पद्धति का विकास हुआ तथा परिवेश के आधार पर जो नामकरण की पद्धति प्रचलित हुई उसका निराकरण इन शोध प्रबन्धों द्वारा करने म सहायता मिली।

विकासात्मक एव प्रवत्यात्मक अध्ययन के अन्तगत सामाजिक एव राजनीतिक परम्पराओ के अतिरिक्त ऐतिहासिक अध्ययन को इतिवृत्तात्मक रूप मे प्रस्तुत किया जाता है तथा उनके साहित्यिक अध्ययन के लिए चार तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। प्रथमत युगीन परम्परा का अध्ययन समीचीन माना जाता है इसके अतिरिक्त प्रवत्ति विशेष के प्रेरणा स्रोत प्रवृत्ति विशेष के स्वरूप प्रवत्ति विशेष की कृतिया के परवर्ती प्रभाव एव अनुसन्धित्सु के युग म प्रचलित सिद्धान्तो के आधार पर कृति को विवेचित किया जाता है किन्तु हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र म प्रवत्यात्मक अध्ययन की दिशा म जो प्रयत्न हुए हैं उनम ऐतिहासिक अध्ययन के उपरान्त कतिपय प्रमुख साहित्यकारो के कृतित्व का अनुशीलन ही पर्याप्त समझा गया। हिन्दी नाटक का विकास जैसे हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण नाटको से सम्बद्ध शोध प्रबन्ध म केवल राजस्थानी नाटको के विकास की स्थिति का द्योतन हुआ है जिसे एकांगी और अपूर्ण कहा जा सकता है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास की प्रवत्तियाँ' शीर्षक शोध प्रबन्ध मे प्रवत्तिया का लेखकीय सन्दर्भों में विश्लेषण हुआ है तथा औपन्यासिक प्रवत्तियो को कृतिकार के अनुरूप बाँटा गया है। य दोनो दष्टियाँ उपयुक्त नही प्रतीत होती क्योंकि साहित्यिक अध्ययन की दष्टि स ऐतिहासिक अध्ययन अधिक तक सगत एव तथ्य परक होता है। इसलिए इन प्रबन्धों म वज्ञानिक दष्टि का विनियोग आवश्यक है।

प्रवृत्यात्मक अध्ययन की दृष्टि स आधुनिक अनुसन्धायको ने इतिहास प्रयोग जसी अध्ययन पद्धतियो का विकास भी किया है। इस पद्धति के अन्तगत कृति के ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्तित्वपरक एव प्रवत्यात्मक शोध ग्रन्थों मे यह पद्धति सवथा भिन्न है क्योंकि व्यक्तित्व सन्दर्भित प्रबन्धों मे लेखक को प्रमुखता दी जाती है, जबकि ऐतिहासिक प्रवृत्ति मूलक अध्ययन में युग को विवच्य बनाया जाता है। इसी प्रकार ऐतिहासिक तत्वों एव काव्य रूढियो स सम्बन्धित अध्ययन के अन्तगत कृति को ही वशिष्टय मिलता है। इस इतिहास परक अध्ययन का शुभारम्भ साठोत्तरी शोध प्रबन्धो मे हुआ। इनके अन्तगत न तो कृति का साहित्यिक अध्ययन किया जाता है और न तो इसमें ऐतिहासिक इतिवृत्तात्मकता को ही महत्व मिलता है। ऐसे शोध प्रबन्धों में लोक तत्व, काव्य रूढि, मिथक एव इतिहास प्रयोगा का ही अनुशीलन होता है।

हिन्दी साहित्य में इतिहास प्रयोगो की जो पद्धतियाँ विकसित हुई हैं वे अद्यावधि पयन्त त्रुटिपूर्ण हैं क्योंकि उनमे या तो ऐतिहासिक प्रभावो ने शोध प्रबन्ध

को इतिहास ग्रंथ बना दिया है अथवा ऐतिहासिक तत्वों का अभाव उपन्यास को पूर्णतः काल्पनिक बना देता है। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक अध्ययन की प्रक्रिया व्यर्थ हो जाती है। इस क्षेत्र में जितने भी शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं उनमें ऐतिहासिक अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने के लिए साहित्यिकता का निषेध कर दिया गया है। केवल डा० विद्याभूषण भारद्वाज ने सांख्यिकीय पद्धति के आधार पर कथा में ऐतिहासिक तत्वों का विश्लेषण किया है किन्तु इस प्रबन्ध में भी ऐतिहासिक अध्ययन इतना वैज्ञानिक हो गया है कि इसे साहित्यिक दृष्टि से अनुपयोगी ही माना जायेगा।

ऐतिहासिक साहित्यानुसंधान के अन्तर्गत रूपात्मक अध्ययन को ही विशिष्ट स्थान मिला है। रूपात्मक अध्ययन का क्षेत्र युग एवं कृतिकार की अपेक्षा कृति की व्याख्या तक सीमित रहता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक ही युग में विभिन्न प्रकार की रचनायें प्रकाशित होती हैं। इस स्थिति में जब अनुसन्धित्सु उन्हें विभाजित करके उनका वर्गीकरण करता है तो इसके लिए उसे रूपात्मक पद्धति को ही प्रयोग में लाना पड़ता है। इस अध्ययन की रूपरेखा चार तत्वों के आधार पर निर्मित होती है—वस्तु, चरित्र, विधा एवं शैली। विधा मूलक अध्ययन ही कालान्तर में प्रवृत्यात्मक अध्ययन के अन्तर्गत समाहित हो जाता है। इसलिए इस रूपात्मक पद्धति के अन्तर्गत कम महत्व मिला है। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से वस्तुपरक एवं शैली परक अध्ययन को ही महत्व दिया जाता है। इन शोध प्रबन्धों में कथात्मक, चरित्रात्मक अथवा अभिव्यक्तिपरक अध्ययन के द्वारा कृतियों का वर्गीकरण किया जाता है। भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा के अन्तर्गत प्रायः समस्त कवियों ने राधा कृष्ण लीला गायन को ही प्रतिपाद्य माना है। इसलिए उस संपूर्ण काव्य को कृष्ण भक्तिपरक कहा जाता है। स्थूलतः इसे प्रवृत्यात्मक वर्गीकरण कहा जायेगा, किन्तु जब उस कथा के प्रमुख तत्वों के आधार पर शोध प्रबन्धों का प्रणयन होता है तो उसे वस्तु परक रूपात्मक अध्ययन कहा जा सकता है। हिन्दी की भ्रमरगीत परम्परा या रास परक अध्ययन इसी कोटि में आयेंगे। इसी प्रकार जब शैली विशेष की समस्त रचनाओं को संकलित कर लिया जाय, तो उसे शैलीगत रूपात्मक अध्ययन कहा जाता है। इसीलिए जब हिन्दी की पद परम्परा का अध्ययन हुआ तो उसमें विद्यापति और तुलसी को एक वर्ग में रखा गया जबकि युग एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से इनमें पर्याप्त अन्तर है। ऐसे शोध प्रबन्धों का शुभारम्भ उन्मेष कालीन शोध प्रबन्धों से हुआ किन्तु इनका पूर्ण परिपाक उत्कर्ष कालीन शोध ग्रन्थों में हुआ।

ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियों की दृष्टि से सर्वाधिक सहज एवं व्यापक पद्धति के रूप में तुलनात्मक पद्धति का उल्लेख किया जा सकता है। तुलनात्मक

अध्ययन के क्षेत्र में कृतियों का मूल्यांकन दो रूपों में किया जाता है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत किसी कृति विशेष की तुलना, समान विचारधारा वाली अन्य कृतियों से की जाती है। इसमें भी एक ही युग की विभिन्न कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन तो होता ही है। इसके अतिरिक्त किसी परवर्ती रचना की पूर्ववर्ती कृति से भी तुलना की जा सकती है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इन युगीन अथवा युग निरपेक्ष एक ही भाषा की कृतियों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के साहित्य को भी तुलनीय माना जाता है। इसलिए तुलनात्मक अनुसन्धान पद्धति साहित्य के अध्ययन को तो प्रामाणिक एवं गम्भीर बनाती ही है साथ ही साथ अज्ञात भाषाओं के साहित्यिक अध्ययन को भी इस पद्धति द्वारा सुगम बनाया जाता है। तुलनात्मक पद्धति का उपयोग युग एवं विधा का अनुशीलन करते समय तो किया ही जाता है इसके अतिरिक्त कवियों एवं कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन का अवसर भी इसके द्वारा सुलभ होता है। हिन्दी साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में युग एवं प्रवृत्ति के अध्ययन की दृष्टि से संस्कृत और हिन्दी, हिन्दी और हिन्दी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी एवं विदेशी भाषाओं के साहित्य का अनुशीलन किया जा चुका है जिससे हिन्दी साहित्य के अध्ययन की दिशायें अत्यन्त व्यापक होती चली जा रही हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में प्रभावात्मक विवेचन की प्रणाली का विकास भी हुआ है। जिस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न कृतियों की एक साथ समीक्षा करते हुये उनके गुण दोषों का विवेचन किया जाता है। उसी प्रकार प्रभावात्मक अध्ययन के अन्तर्गत पूर्व परम्परा के आधार पर लिखे गये परवर्ती ग्रन्थों का अनुशीलन किया जाता है। प्रभावात्मक अध्ययन के द्वारा पूर्ववर्ती कृतियों की अपेक्षा प्रभावित कृतियाँ ही विमर्श्य होती हैं। इस पद्धति के अन्तर्गत पूर्ववर्ती साहित्य के परवर्ती प्रभावों का अध्ययन ही मुख्य रूप से होता है। हिन्दी में ऐसे शोध प्रबन्ध प्रभूत संख्या में उपलब्ध हैं जिनमें प्राकृत अपभ्रंश का साहित्य और उसका हिन्दी पर प्रभाव[9] शीर्षक शोध प्रबन्ध प्रमुख है। इस परम्परा का विकास 1949 ई० से हुआ तथा हिन्दी साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव[1] शीर्षक शोध प्रबन्ध प्रथम शोध ग्रन्थ के रूप में लिखा गया। इसके उपरान्त आधुनिक काल तक इस क्षेत्र में शताधिक शोध प्रबन्ध प्रणीत हुए, जिनके द्वारा विभिन्न भाषाओं के साहित्य का प्रभाव आकलित हुआ। प्रभावों के अन्तर्गत प्रेरणा एवं पृष्ठभूमि का विश्लेषण भी विद्वानों ने किया है, किन्तु पृष्ठभूमि के अन्तर्गत जिस तथ्य परक ऐतिहासिकता का विकास होता है, उसके आधार पर इसे प्रभावात्मक अध्ययन के अन्तर्गत नहीं विवेचित किया जा सकता। प्रभावात्मक शोध ग्रन्थों में हिन्दी पूर्व भाषायें एवं हिन्दी, हिन्दी भाषा

की विविध प्रवत्तियाँ हि न्दी और अ य भारतीय भाषाओ तथा हिन्दी साहित्य पर पड़े विदेशी प्रभावो को विवचित किया गया है ।

हि न्दी के ऐतिहासिक अनुस धान प्र थो का विहगावलोकन करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि इन अनुसधित्सुओ न ऐतिहासिक अनुस धान को तथ्याधारित स्थूल गतिहीन प्रक्रिया मात्र माना है । इन विद्वानो ने केवल उपलब्ध सामग्री का अध्ययन मात्र किया है तथा उस सामग्री के आधार पर परीक्षण एव निष्कर्ष निकालने का दायित्व नही निभाया है । इसका मुख्य कारण ऐतिहासिक अध्ययन की सकीर्ण दष्टि है । वस्तुत इतिहास को अभी तक साहित्य क्षत्र से ही सम्बद्ध माना जाता था, कि तु 1902 ई० म जान बगनेलबरी ने बडी दढता के साथ यह कहा कि इतिहास एक विज्ञान है, उससे न कुछ कम न कुछ अधिक' ।[11] इसी सिद्धान्त की पुष्टि याक पावल न भी की और उसन कहा कि इतिहास शुद्ध साहित्य का अग नही है और न सवथा ललित, शिक्षाप्रद एव मनोरजक विवरण है। यह विज्ञान की एक शाखा है और अ य विज्ञानो की भाँति उन्नीसवी शताब्दी की देन है ।[12] इन सिद्धा तो की बाला तर म तीव्र आलोचना हुई और यह सिद्ध किया गया कि इतिहास विज्ञान से श्रेष्ठ है । इसके लिए यह तक दिया गया कि इतिहास में आकस्मिकता का तत्व एसा है जो उसकी सम्पूण प्रक्रिया को असत्य सिद्ध कर देता है और भविष्य कथन असम्भव हो जाता है और इन सबसे महत्वपूण है व्यक्ति का अस्तित्व और स्वेच्छा कृत प्रयास, जिनक कारण इतिहास का वज्ञानिक भित्ति पर स्थापित करने की चेष्टा विफल सिद्ध होती है ।[13]

वस्तुत इतिहास विज्ञान है अथवा कला यह एक विवादास्पद प्रश्न है जिसका विनिश्चय यहाँ प्रासगिक नही ह । इसकी अपक्षा ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धति हो हमारे लिए विमश्य है । अनुसन्धान पद्धतियो के विवचन क्रम मे ऐतिहासिक वज्ञानिकता का विश्लेषण किया जा चुका है जिससे स्पष्ट हो गया है कि ऐतिहासिक अनुस धान के लिए भौतिक एव सामाजिक विज्ञानो की पद्धतियो का प्रयुक्त किया जा सकता है । एच०पी० रिवमन ने ता ऐतिहासिक अनुस धान को प्राणिवज्ञानिक माना है । जसे- शरीर रचना शास्त्री कुछ अस्थियो क आधार पर एक प्राणी क शरीर का पुनर्निर्माण करता है उसी प्रकार इतिहासकार भी भग्नावशषो जीण शीण य त्रो एव प्राचीन मुद्राओ के आधार पर युग जीवन को पुनर्निमित कर देता ह ।'[14] कि तु इसके लिए उसे साख्यिकीय एव परीक्षणात्मक पद्धतियों का प्रयोग करना पडता है । हि दी साहित्यानुसन्धान की ऐतिहासिक अध्ययन प्रणाली इसके विपरीत सवथा इतिवत्तात्मक और अनुमानात्मक है । साहित्यानुस धान के समय अनुसधित्सुओ न ऐतिहासिक अध्ययन को भी अभिव्यक्ति एव अनुभुति तक ही सीमित रक्खा है । प्राय समस्त शोध प्र थो मे व्यक्तित्व एव

कृतित्व का विवेचन अनुमान परक रहा है जिसके कारण आज तक प्राचीन कवियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी जटिल एवं विवादास्पद प्रसंगों का समाधान नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत जिस प्रकार समाज शास्त्री सर्वेक्षण पद्धति के द्वारा गणितीय अध्ययन करता है उस प्रकार साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में कोई कार्य नहीं किया गया। इसके विपरीत उद्धरणों एवं तथ्यों के विवरणात्मक आलेखों द्वारा शोध कार्य की समाप्ति कर दी गयी है जिसे नितान्त प्रारम्भिक और अवैज्ञानिक मानना समीचीन प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए जब हिन्दी का विकासात्मक अध्ययन किया जाता है तो उस समय ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या के लिए पृष्ठभूमि, प्रवृत्ति, प्रक्रिया एवं प्रभाव का उल्लेख ही पर्याप्त नहीं होता अपितु इनकी प्रतिशतता को भी प्रस्तुत करना पड़ता है किन्तु हिन्दी अनुसन्धित्सु इस क्षेत्र में पूरी तरह असफल रहे हैं। केवल विद्याभूषण भारद्वाज ने इस आधार पर विश्लेषण करते हुए आंकड़े देने का प्रयत्न किया है, जिसे एक सराहनीय प्रयास कहा जायेगा। उन्होंने वस्तु का विश्लेषण करते समय 'आलमगीर' उपन्यास के कथ्य को एक रेखाचित्र द्वारा आकलित करते हुए उसकी घटनाओं का इस प्रकार विश्लेषित किया है—[15]

1	पूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ	34=85%
2	इतिहास संकेतित घटनाएँ	2=5%
3	कल्पित किन्तु इतिहास अविरोधी घटनाएँ	2=5%
4	कल्पनातिशायी घटनाएँ	2=5%
	योग	40=100%

यदि इसी प्रकार कृतियों पर पड़े प्रभावों, उनकी तुलनात्मक पद्धतियों पाठानुशीलन परक ग्रन्थों में आये शब्दों का प्रतिशत भी निकाला जाय तो निश्चय ही साहित्यानुसन्धान की ऐतिहासिक पद्धतियाँ अधिक मौलिक एवं वैज्ञानिक हो सकेंगी किन्तु इसके लिए अनुसन्धित्सुओं को पूर्ण वैज्ञानिक क्रिया विधि स्वीकार करनी पड़ेगी जिसके अन्तर्गत अनुमान एवं वैयक्तिक विचारों की अभिव्यक्ति का अवसर नहीं सम्भव होगा अपितु भूतकालीन अभिलेखों के निरीक्षण हेतु प्रायोगिक उपकरणों का प्रयोग करना पड़ेगा और इसी में अतीत को वर्तमान के आलोक में विवेचित करने तथा भविष्य के लिये उपादेय बनाने का अवसर सुलभ होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ० रूपचन्द पारीक– हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो का आलोचनात्मक अध्ययन' प० 3
2 डॉ० रूपच द पारीक– हि न्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो का आलोचनात्मक अध्ययन प० 7
3 पारसनाथ राय– अनुस धान परिचय' प 105-6
4 डॉ० पारसनाथ तिवारी–'कबीर ग्र थावली' प्रस्तावना–पृ० अ से ह तक
5 डॉ० लक्ष्मीधर मालवीय–'देव ग्र थावली पृ० 8
6 डा० भोलानाथ– हिन्दी साहित्य प्रस्तावना–प० 1
7 डॉ० शोभनाथ सिंह–काशी हिन्दू वि० वि० 1967 ई०
8 डॉ० रामजी मिश्र–काशी हिन्दू वि० वि० 1965 ई०
9 डॉ० रामसिंह तोमर–इलाहाबाद वि० वि० 1951 ई०
10 डॉ० सरनाम सिंह शर्मा–राजस्थान वि० वि०, 194[illegible] ई०
11 It has not yet become superflous to insist that history is a science no less and no more —J B Dury–The Science of History, Page 210
12 The new history is the history written by those who believe that history is not department of *Bells letters* *instructive* and amusing narrative but a branch of science This science like any other sciences is largely the creation of ninteenth century —Yark Powell–The use of History Page 87
13 नलिन विलोचन शर्मा– साहित्य का इतिहास दर्शन पृ० 5
14 डॉ० गोविन्द जी– हि दी के ऐतिहासिक उप यासो म इतिहास प्रयोग' प० 12
15 डॉ० विद्याभूषण भारद्वाज– चतुरसेन के उपन्यासो में इतिहास का चित्रण प० 278

7

हिन्दी की समाज वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियाँ

1 हिन्दी अनुसन्धान की समाज शास्त्रीय पद्धति

समाज विज्ञान आधुनिक युग की एक प्रमुख वैज्ञानिक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत मानव जीवन से सम्बन्धित विविध ज्ञानात्मक तथ्यों का उद्घाटन होता है। प्रारम्भ में समाज के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक एवं दार्शनिक व्याख्याओं की आवश्यकता पड़ती थी तथा समाज के नियामक सामाजिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में सामयिक जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते थे। वैदिक युग में अथर्ववेद से लेकर स्मृतियों एवं कौटिल्य के अर्थ शास्त्र के रचना काल तक समाज विज्ञान के सिद्धान्तों की एकरूपता विद्यमान थी किन्तु गुप्त काल से ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों का अध्ययन इन्हीं स्मृति ग्रन्थों के आधार पर हुआ और सामाजिक अध्ययन की संकीर्णता बढ़ती गई। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक तत्वों के विकास के कारण चिन्तन की एक नवीन धारा का उद्गम हुआ। पाश्चात्य विचारकों ने विज्ञान के जो तत्वों का विकास किया भौतिक जगत से सम्बद्ध शोधों एवं गवेषणाओं को प्राकृतिक विज्ञान की संज्ञा दी गई तथा मानविकी के अध्ययन से सम्बन्धित ज्ञान राशि को समाज विज्ञान कहा गया। यहाँ समाज विज्ञान का आशय उन समस्त विज्ञानों से है जिनके द्वारा मानव जीवन की ऐहिक व्याख्या सम्भव हो सकती है। इन समाज वैज्ञानिकों ने विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों का विकास किया, जिनमें राजनीति अर्थशास्त्र संस्कृति धर्म समुदाय, नृतत्व इत्यादि का अध्ययन होता है किन्तु ये सभी अंग एक दूसरे से पृथक हो गये और समाज वैज्ञानिक का यह उद्देश्य कि एक अध्ययन क्रम के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव समुदाय का विश्लेषण हो सके अपूर्ण रह गया। इसीलिए इन समाज वैज्ञानिकों ने उपर्युक्त समस्त विषयों के एकांगी अध्ययन को छोड़कर इन सभी सिद्धान्तों के मूल तत्वों के आधार पर एक ऐसे ज्ञान क्षेत्र का विकास किया जिसमें मानव के समस्त भौतिक कार्यकलापों का विश्लेषण हुआ। विद्वानों ने इस समाज विज्ञान की बहुमुखी विचारधारा को समाज शास्त्र कहा जिसमें राजनीति अर्थनीति, संस्कृति एवं समुदाय के मूल तत्व सन्निहित हैं। इस प्रकार समाज शास्त्र का अन्य समाज वैज्ञानिक तत्वों की एकीकृत व्याख्या

के रूप में हुआ। इसीलिए जब हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में इस शब्द को व्यवहृत किया जाता है तो यहाँ हमारा आशय साहित्य की समाज शास्त्रीय व्याख्या से होता है, क्योंकि संस्कृति राजनीति एवं अर्थशास्त्र से सम्बद्ध शोध प्रबन्ध समाज वैज्ञानिक परिदृष्टि के अन्तर्गत एकांगी एवं अपूर्ण हैं।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में समाज शास्त्रीय अध्ययन की अनिवार्यता आधुनिक युग की एक महान साहित्यिक उपलब्धि है। साहित्य में समाज शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत समाज की राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों का अनुशीलन होता है। समाज विज्ञान के विविध क्षेत्र राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र आदि में समाज के विविध परिदृश्यों का अध्ययन किया जाता है परन्तु समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में समाज की राजनीतिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक पहलुओं का एकीकरण करके व्यक्ति और समाज के अन्तःसम्बन्धों का भी अध्ययन भी किया जाता है।

समाज शास्त्र का जो वर्तमान रूप विद्यमान है उसका प्रारम्भ आगस्ट काम्टे (1798 से 1857) से माना गया है। ये अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी का युग था और इस युग में वैज्ञानिक सचेतना के आशातीत विकास हुए। नये कल कारखाने खुले शोषक एवं शोषित मालिक एवं मजदूर जैसे दो वर्ग अस्तित्व में आ गये और इन वर्गों की पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता के परिणाम स्वरूप समाज पर इनका प्रभाव पड़ा। फलतः नयी सामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से निदान खोजा जाने लगा। आगस्ट काम्ट जैसे विचारकों का यह कहना था कि जैसे चन्द्र ग्रहण के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है वैसे ही सामाजिक नियमों के आधार पर समाज की भविष्य में क्या स्थिति होगी इस पर भी सम्भावना व्यक्त की जा सकती है। वास्तव में काम्टे ने ही इस विज्ञान का नाम समाजशास्त्र रखा और उसे ही समाजशास्त्र का जनक माना जाता है। सन 1843 में जेम्स स्टुअर्ट मिल तथा बाद में हरबर्ट स्पेन्सर जैसे विचारकों ने इस विज्ञान की गम्भीरता पर विचार किया। इस शास्त्र के विचारकों में दुरखीम मैक्स वेबर सोरोकिन पारसंस कार्लमार्क्स विशेष उल्लेखनीय हैं। समाजशास्त्रीय अनुसन्धान की आवश्यकता साहित्य के क्षेत्र में एक महती आवश्यकता है क्योंकि समाजशास्त्रीय पीठिका पर अनुसन्धित्सु समाज के प्रत्येक परिपार्श्व का सूक्ष्म दृष्टि से परिशीलन करता है। आधुनिक युग में मानवीय मूल्यों के विघटन के परिणाम स्वरूप जो सामाजिक जीवन में विश्रृंखलता परिलक्षित हुई उसका प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। कलाकार युग चेता होता है और युग चेतना को आत्मसात करता हुआ अपनी मानसी सृष्टि से साहित्य सृजन करता है। इसलिए साहित्य सृजन के क्षेत्र में साहित्यकार ने जब इन परिवर्तित जीवन मूल्यों को अपनी रचना

नही प्रतीत होता । इसलिए हम समाज वैज्ञानिक पद्धतियों के अन्तर्गत केवल सामाजिक जीवन से सम्बद्ध कृतियों को नही ले सकते ।

समाज एव समाजशास्त्र के इस ऊहापोह में डा० चण्डी प्रसाद जोशी की भाँति डा० कमल कुमारी गुप्ता ने भी अपने शोध प्रबन्ध राजनैतिक सामाजिक व सास्कृतिक सन्दर्भ में हिन्दी निबन्ध साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन [3] में समाज विज्ञान के समस्त तत्वों का ग्रहण करते हुए भी इसे समाज शास्त्रीय नही कहा है ।

समाज शास्त्रीय शोध ग्रन्थो की स्वतत्र परम्परा सन 1963 से विकसित हुई । सन् 1963 में समाज विज्ञान की पारिभाषिकी का सर्वप्रथम विवेचन सामाजिक विज्ञानो की पारिभाषिक शब्दावली का समीक्षात्मक अध्ययन'[4] शीर्षक शोध प्रबन्ध मे हुआ तथा इस कृति मे जब समाज विज्ञान के सिद्धान्तो का विधिवत विवेचन हुआ तब अनुसन्धित्सुओ ने राजनीति धर्म अर्थशास्त्र, समाज सस्कृति इत्यादि के अध्ययन को एक ही वर्ग में रखकर उसे समाजशास्त्रीय कहा और इसी काल से हिन्दी साहित्य मे समाज वैज्ञानिक अध्ययन का शुभारम्भ हुआ । हिन्दी साहित्य में समाजशास्त्रीय शोध पद्धतियों का इतना अभाव है कि सन 1963 से लेकर 1976 तक सुलभ विवरणिकाओं में मात्र पन्द्रह शोध प्रबन्धो का उल्लेख हुआ है । इनमे सम्पूर्ण भक्ति साहित्य से सम्बद्ध दो शोध प्रबन्ध मिलते हैं 'दादू पन्थी काव्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन [5] तथा 'रामचरित मानस का समाजशास्त्रीय अध्ययन'[6] कालक्रम की दृष्टि से भी दादूदयाल से सम्बन्धित डा० के० एल० सिनवार का शोध ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का प्रथम समाज वैज्ञानिक प्रबन्ध है । इसके अतिरिक्त मध्य युगीन साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण का कोई वैज्ञानिक प्रयत्न नही हुआ ।

हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्रीय शोध प्रबन्धो की सीमित उपलब्धि का मुख्य कारण समाज वैज्ञानिक अध्ययन की जटिलता है । मध्यकालीन साहित्य का सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे अनुशीलन इसलिए सम्भव नही हो सका क्योंकि इस युग के कवियो ने भक्ति एव श्रृंगार का ही काव्य में वर्णित किया है । यह दोनो प्रसग समाज की प्रवृत्तियो से पूर्णत सम्बद्ध नही होते । भक्ति मे जहाँ अलौकिकता का समावेश हुआ है वही श्रृंगारिक कविताओ मे सामाजिक श्लील का उल्लघन हुआ है । रीतिकाव्य में यदि श्रृंगार की अपेक्षा कही नीति एव समाज के आधार पर काव्य सृजन हुआ है तो वहाँ नीति एव समाज एक मानक के रूप म आये हैं । ऐसी स्थिति में समाजशास्त्रीय पद्धतियाँ इनके विश्लेषण म सहायक नही हो पाती । सम्पूर्ण मध्ययुग म तुलसीदास एव ज्ञानाश्रयी धारा के कवि ही लोक धर्मिता से सम्बद्ध रह हैं । गोस्वामी तुलसीदास के मानस में लोक जीवन के विविध पक्षो का सहज चित्रण हुआ है । सस्कृति समाज वित्तीय व्यवस्था राजनीतिक स्थिति का मानस में जितना उत्कृष्ट विवेचन हुआ है उतना सम्पूर्ण मध्य युग म दुर्लभ है ।

इसीलिए रामचरित मानस के समाजशास्त्रीय अध्ययन का प्रयत्न हुआ है। इसी प्रकार सन्त काव्य से सम्बद्ध शाद्व सम्प्रदाय के सामाजिक अध्ययन द्वारा सन्त साहित्य की सामाजिकता का विवेचन भी किया गया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य म समाजशास्त्रीय अध्ययन का केन्द्र हिन्दी तथा साहित्य एव नाटय साहित्य का बनाया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त किसी आधुनिक कवि की कृतियो का समाज वज्ञानिक अध्ययन नही सम्भव हो सका है। आधुनिक युग के अनुसन्धित्सुओ ने सामाजिक जीवन से सम्बद्ध नाटको एव उपन्यासो को समाजशास्त्रीय आधार पर विश्लेषित किया है। इसका मुख्य कारण इन विधाओ की लोकाश्रित रचना प्रक्रिया है। वस्तुत उपन्यास म जीवन की समग्र व्याख्या होती है। कथा जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।[7] मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और रहस्यो का उद्घाटन करना ही उपन्यास का मूल तत्व है।[8] इसीलिए कथा साहित्य म सामाजिक अध्ययन की सम्भावनायें निहित रहती हैं। इसी प्रकार नाटय साहित्य दृश्य काव्य होने के कारण सामाजिक अभिव्यक्ति में विशेष सफल रहता है। नाटको के माध्यम से साहित्यकार समाज की विभिन्न स्थितियो को सामाजिक के समक्ष प्रस्तुत करने म समर्थ होता है। इसीलिए नाटको म भी समाजशास्त्र के अध्ययन की दिशायें कृतियो के रचना काल म ही विनिर्दिष्ट रहती हैं। इसीलिए हिन्दी अनुसन्धान के क्षेत्र मे उपन्यासो एव नाटको के समाजशास्त्रीय अध्ययन की परम्परा विकसित हुई तथा इस आधार पर अनेक शोध प्रबन्ध प्रकाश मे आये किन्तु यदि इन शोध ग्रन्थो की सूक्ष्म विवेचना की जाती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि समाज वैज्ञानिक पद्धतियो का पूर्ण आधार इन प्रबन्धो में नहीं लिया गया है।

हिन्दी के समाजशास्त्रीय शोध प्रबन्धो की समीक्षा के पूर्व समाज वज्ञानिक पद्धतियो का संक्षिप्त विश्लेषण आनुषंगिक प्रतीत होता है क्योंकि समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य म कृतियो के अनुशीलन की दृष्टि से इन पद्धतियो का विशिष्ट योगदान रहता है। समाज विज्ञान के क्षेत्र में समाजशास्त्र के अध्ययन की पद्धतियो का निर्माण भौतिक वज्ञानिक पद्धतियो के आधार पर किया गया है, क्योंकि भौतिक विज्ञान ही वज्ञानिक परीक्षण की दृष्टि से नवीनतम विधा है। भौतिक वज्ञानिको ने तथ्यो की पुष्टि हेतु प्रयोगात्मक परीक्षणों एव साक्ष्यकीय सिद्धान्तो तथा विचार संवाद को प्रमुखता दी है। इन्ही के आधार पर छ समाज वैज्ञानिक पद्धितियों का विकास हुआ है—गुणात्मक पद्धति, संख्यात्मक पद्धति, पुस्तकालय तथा कार्यस्थल अध्ययन पद्धति, प्रायोगिक तथा सर्वेक्षण पद्धति, विकासात्मक पद्धति और तुलनात्मक पद्धति। इन समाज वज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर ही समाज विज्ञान के विभिन्न विषयो का अनुसन्धान किया जाता है। इन पद्धतियों के विनियोग एव

रचना प्रक्रिया का विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति शास्त्र के निर्माण के प्रसग में किया जा चुका है। यहाँ हमारा मुख्य लक्ष्य हिन्दी शोध को प्रभावित करने वाली पद्धतियों का अनुशीलन तथा उनसे प्रभावित समाजशास्त्रीय शोध ग्रन्थों का पर्यवेक्षण करना है। वस्तुत उपर्युक्त छ पद्धतियाँ साहित्यानुसधान के क्षेत्र में प्रयुक्त नहीं हो सकता क्योंकि साहित्य एव समाज के मूल तत्व एक दूसरे को प्रभावित करने पर भी अलग रहते हैं।

हिन्दी साहित्य में उपर्युक्त छ पद्धतियों में से गुणात्मक, विकासात्मक सर्वेक्षण एव तुलनात्मक पद्धतियों का ही आशिक उपयोग हो सका है। इसीलिए हिन्दी के अधिकाश समाजशास्त्रीय शोध प्रबन्धों में वैज्ञानिकता का अभाव है क्योंकि विशुद्ध वैज्ञानिक धरातल से सम्बद्ध साख्यिकीय एव प्रायोगिक पद्धतियों का उपयोग साहित्यानुसन्धान के अन्तर्गत नहीं हुआ है जबकि विकासात्मक एव तुलनात्मक पद्धतियाँ समाजशास्त्रीय शोध प्रबन्धों में अधिक व्यवहृत हुई हैं जिनकी प्रतिबद्धता ऐतिहासिक पद्धतियों से है।

हिन्दी साहित्य में समाजशास्त्रीय शोध प्रबन्धों का विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन अनुसन्धित्सुओं ने समाजशास्त्रीय अध्ययन को वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं विश्लेषित किया है क्योंकि समाज वैज्ञानिक अध्ययन के लिए जिस मापक की आवश्यकता होती है उसकी अपेक्षा विवरणात्मक अध्ययन का ही इन शोधार्थियों ने महत्व दिया है। हिन्दी उपन्यासों के प्रथम समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत सामाजिक सास्कृतिक आर्थिक राजनीतिक अध्ययन एव उनकी युगीन और धार्मिक कृतियों में उनके प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। किन्तु समाज दर्शन के वैज्ञानिक अध्ययन की जो पद्धतियाँ समाजशास्त्रीय चिन्तकों ने अपनाई हैं उन्हें प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में नहीं विवेचित किया गया है।[9] इसी प्रकार 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि' शीर्षक शोध प्रबन्ध में समाजशास्त्रीय पद्धतियों का विकासात्मक अध्ययन हुआ है। इस प्रबन्ध में परिवार समाज, अर्थशास्त्र जैसे परम्परित तत्वों के अतिरिक्त समाजशास्त्र के नये आयाम द्वारा शोध प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाया गया है तथा मूल प्रवृत्तियों, सामाजिक नियन्त्रण अपराधशास्त्र सामाजिक विघटन की प्रक्रियाओं तथा राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों के आधार पर उपन्यासों का मूल्यांकन हुआ है। लेखक ने प्रारम्भ में ही सामाजिक एव समाजशास्त्रीय दृष्टि में अन्तर स्थापित करते हुए कहा है कि 'समाजशास्त्र की दृष्टि से इसका तात्पर्य सामाजिक अन्त क्रिया से है।'[10]

2 हिन्दी अनुसन्धान की मार्क्सवादी पद्धति

हिन्दी साहित्य में क्षेत्र में मार्क्सवादी चिन्तना का प्रारम्भ सन 1936 से ही स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसी समय भारत में प्रगतिशील लेखक सघ

की स्थापना हुई और लखनऊ में प्रेमचन्द के सभापतित्व में उसका प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ।[12] साहित्य के क्षेत्र में छायावाद की अतिशय कल्पना प्रियता के विरुद्ध प्रतिक्रिया का आगमन अनिवार्य ही था और उसी के परिणामस्वरूप एक नई साहित्यधारा ने जन्म लिया जो मार्क्सवादी साहित्य चिन्तना का प्रगतिवादी काव्यधारा के रूप में साहित्यिक प्रतिफलन है। मार्क्सवादी विचारधारा वास्तविक जीवन की घटनाओं और अनुभूतियों के साथ सम्पृक्त है।

अखिल भारतीय स्तर पर मार्क्सवादी चिन्तना पर आधृत प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सर्वप्रथम सन 1935 में हुई। इसकी स्थापना का श्रेय लन्दन स्थित शिक्षित भारतीय जिज्ञासुओं को था जिनमें डा० मुल्कराज आनन्द तथा श्री सज्जाद जहीर प्रमुख थे। प्रगतिवादी चिन्तना के प्रसारण का द्वितीय महत्वपूर्ण स्रोत सुप्रसिद्ध उपन्यासकार ई० एम० फास्टर भी रहे, जिनकी अध्यक्षता में पेरिस में प्रगतिशील लेखक संघ (प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन) नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की संस्थापना हुई, जिसके मूल में फासिज्म नाजीवाद तथा सांस्कृतिक गतिरोध को दूर कर समाज तथा साहित्य को प्रशस्त पथ की ओर ले जाने का उद्देश्य निहित था।[13]

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का वास्तविक सूत्रपात प्रेमचन्द के उस घोषणापत्र के साथ होता है जिसमें उन्होंने साहित्य के कल्पनापरक तथा अवास्तविक स्वरूप की भर्त्सना करते हुए कहा कि—'भारतीय समाज में बड़े बड़े परिवर्तन हो रहे हैं, पुराने विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं और एक नये समाज का जन्म हो रहा है। भारतीय साहित्यकारों का धर्म है कि वह भारतीय जीवन में पैदा होने वाली क्रान्ति को शब्द और रूप दें और राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर चलाने में सहायक हों। जो हमें कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।'[13] वास्तव में प्रगतिवाद मार्क्सवादी चिन्तन पद्धति का साहित्यिक प्रतिरूप है। मार्क्स की दृष्टि में काव्य का स्रष्टा कोई स्वप्न द्रष्टा मानव नहीं अपितु दिन प्रतिदिन जीवन के संघर्षों में संलग्न आर्थिक परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित और उनमें जूझता हुआ यथार्थदर्शी मानव है।[14] कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित प्रस्तुत पद्धति पूर्णरूपेण वैज्ञानिक पद्धति के रूप में स्वीकार की जाती है क्योंकि वैज्ञानिक परिदृष्टि के आधार पर प्रत्यक्ष वस्तु की प्रामाणिकता और सत्यता का परीक्षण इसमें भी किया जाता है। मार्क्स और एंजिल्स के अनुसार मानवीय चेतना स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष नहीं है अपितु वह सामाजिक जीवन के अनुरूप परिवर्तनशील है। कार्ल मार्क्स ने संसार में वस्तु तत्व को प्रमुखता देते हुये चेतना के सम्बन्ध में कहा कि चेतना मानव की सत्ता की प्रतिष्ठा नहीं करती, इसके विपरीत मानव की सामाजिक सत्ता

ही मानवीय चेतना का निर्माण करती है । अत यह चेतना स्वत समाज सापेक्ष है ।[15]

प्रारम्भ में मार्क्सवादी विचारधारा का उदय एक सक्रिय आन्दोलन के रूप में हुआ । आन्दोलन की तीव्रगामी एव प्रभावकारी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप सर्वप्रथम साहित्य के क्षेत्र मे कविता पर इसका प्रभाव पडा । प्रगतिवादी विचारधारा एव आन्दोलन की सक्रियता से प्रभावित होकर हिन्दी के छायावादी कवि भी इससे अछूते न रह सके । छायावादी कवि पन्त ने युगान्त युगवाणी और ग्राम्या काव्य सग्रहो के माध्यम से प्रगतिवाद की जनवादी चेतना को मुखरित किया । इसी प्रकार निराला ने अपने विद्रोही व्यक्तित्व के आधार पर कुकुरमुत्ता अणिमा बेला एव नये पत्ते जसे काव्य सग्रहो की सृष्टि की जो इस बात की परिचायिका है कि छायावाद की वायवीय कल्पनाओ मे प्रभावित कवि भी प्रगतिवाद की क्रातिकारी प्रेरणा से अपने को पृथक न कर सके । कविता के अतिरिक्त प्रगतिवादी कला चिन्तन का सम्यक विकास उपन्यास एव आलोचना के क्षेत्र में भी हुआ । आशय यह है कि मार्क्सवादी चिन्तना का पूर्णरूपेण प्रभाव हिन्दी साहित्य पर आद्यन्त पडा है ।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक चिन्तन पद्धति का विकास हुआ उसी प्रकार मार्क्सवादी अनुसन्धान पद्धति का वास्तविक सूत्रपात शोध सर्वेक्षण के आधार पर उत्तर काल के सक्रमण युग से ही स्वीकार किया जा सकता है । सन 1960 म इस दिशा म सर्वप्रथम अनुसन्धान कार्य हुआ उसमे डॉ० कमलिनी मेहता कृत नाटको म यथार्थवाद[16] शोध प्रबन्ध प्रथम प्रयास है ।

हिन्दी साहित्य म मार्क्सवादी विचारधारा स सम्बद्ध शोध प्रबन्धो का विमर्श काल आधुनिक हिन्दी साहित्य रहा है तथा किसी भी साहित्यकार ने भारतेन्दु पूर्व हिन्दी साहित्य को मार्क्सवादी साहित्य के परिप्रेक्ष्य म आकलित नही किया है । भारतेन्दु युग का विवेचन केवल आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद'[17] शीर्षक शोध प्रबन्ध में हुआ है । इस शोध प्रबन्ध के अनुशीलन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी शोधार्थियो ने प्रगतिवाद और यथार्थवाद की पृथक सत्ता को स्वीकार किया है ।

हिन्दी के मार्क्सवादी शोध प्रबन्धो के सर्वेक्षण स जो तथ्य प्रकाश में आये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यानुसन्धित्सुओ ने मार्क्सवादी चिन्तन को एक दार्शनिक तत्व के रूप में नही ग्रहण किया है । प्राय सभी शोधार्थी मार्क्सवाद को एक राजनीतिक एव आर्थिक विचारधारा के रूप म विवेचित करते रहे तथा शोध के समय मार्क्सवाद एव साहित्य को पृथक रूप म विवेचित करते रहे । इसका मुख्य कारण मार्क्सवादी अनुसन्धान के ठोस धरातल का अभाव है । मार्क्सवाद

को ग्रहण करने के पूर्व जिस प्रकार राजनीति एवं अर्थशास्त्र के अन्तर्गत एक निकष स्थापित किया गया है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी उसके मूल्यों की व्याख्या करने के लिए मानदण्डों का निर्धारण आवश्यक था । वस्तुतः मार्क्सवाद ऐसी विचारधारा है जिसने अतीत, वर्तमान एवं आगत को प्रभावित किया है। इसीलिए हमें मार्क्सवाद की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी पद्धतियों को प्रयोग में लाना होगा। कार्ल मार्क्स की द्वन्द्वात्मकता ने ऐतिहासिक विकासवाद को भी प्रभावित किया है इसलिए मार्क्सवाद यदि दार्शनिक दृष्टि से हीगल का पक्षधर है तो वैज्ञानिक दृष्टि से डार्विन का पूरक । इसीलिए मार्क्सवादी अनुसन्धान एक ओर ऐतिहासिक व्याख्या की अपेक्षा रखता है तो दूसरी ओर मानव सभ्यता के विकास की व्याख्या भी प्रस्तुत करता है । जब तक अनुसन्धित्सु अतीत और आगत का संयोजन नहीं कर सकता तब तक मार्क्सवादी शोधों में प्रगतिशील सिद्धान्तों का वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठा की दृष्टि से तब सफल विवेचन असम्भव है। शोधार्थियों की इसी रूढ़िग्रस्त परम्परित शोध दृष्टि ने मार्क्सवाद जैसी अत्याधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा को कुण्ठित बनाकर शोध प्रबन्धों में प्रस्तुत किया है ।

3 हिन्दी अनुसन्धान की मनोवैज्ञानिक पद्धति

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक अध्ययन की जिस परम्परा का विकास 1960 ई० के पश्चात हुआ उनमें वैज्ञानिक पद्धतियाँ भी विशेष प्रभावी रहीं । वैज्ञानिक दृष्टि से इस काल में प्रयुक्त विज्ञान की तीन शाखाओं का सविस्तार विवेचन इस काल के अनुसन्धित्सुओं ने किया । इस युग तक भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान एवं समाज विज्ञान की पृथक पद्धतियाँ निर्मित हो चुकी थीं और उनके आधार पर साहित्यानुशीलन की प्रवृत्ति का विकास भी हिन्दी साहित्य में हो चुका था ।

साहित्यानुसन्धान के अन्तर्गत उपर्युक्त तीनों वैज्ञानिक पद्धतियों में मनोवैज्ञानिक पद्धति अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई क्योंकि साहित्य व्यक्ति विशेष की मानसिक प्रक्रियाओं का प्रकाश स्वरूप होता है । अवचेतन में पड़ी हुई मानव की वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभूतियाँ ही सर्जना का स्रोत बनती हैं, इसलिए साहित्यानुसन्धान को वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को प्रश्रय मिला ।

हिन्दी साहित्य के अनुसन्धान का सर्वेक्षण करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भारतीय विश्व विद्यालयों में औपचारिक अनुसन्धान कार्य 1934 में प्रारम्भ हुआ था । इसके थोड़े समय बाद हिन्दी शोध की शैशवावस्था में मनोवैज्ञानिक शोध ग्रन्थों के लेखन का प्रयास हुआ, जो अद्यतन शोधों को भी प्रभावित कर रहा है । यद्यपि प्रारम्भ में काव्य शास्त्रीय परिदृश्य में मनोविज्ञान को

विश्लेषित किया गया था किन्तु कालान्तर मे काव्य एव उपन्यासो की कथावस्तु के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास भी हुआ। सन् 1934 ई० मे हिन्दी का मनोवैज्ञानिक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुआ।[18] प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रकाशन 1950 में हुआ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में काव्यशास्त्र के एक विशिष्ट सिद्धान्त का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है चूँकि समस्त रसावयवो का सम्बन्ध व्यक्ति की अन्त सत्ता से हुआ है इसलिए रस निष्पत्ति एव उसके आस्वादन में सहृदय एव रचनाकार के मानसिक प्रभाव अवश्य क्रियाशील होते रहे होगे। इसलिए काव्य में रस एव उसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हुआ है। दो खण्डो म विभक्त इस शोध प्रबन्ध के आठ अध्यायो मे पाच अध्याय काव्य शास्त्र स सम्बन्धित हैं। दो अध्यायो में मनोवैज्ञानिक तत्वो का विवेचन हुआ है और मात्र एक अध्याय में पारम्परिक प्रभावो का विश्लेषण हुआ है। मनोवैज्ञानिक तत्वो के विवेचन म भी लेखक ने स्थूल आधार ग्रहण किया है तथा उसने केवल मनोभावा का स्थायीभावो के अनुरूप विश्लेषण कर दिया है। समग्र रूप से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध रस की मानसिक सत्ता का द्योतक मात्र है तथा मनोवैज्ञानिक पद्धतियो के आधुनिक शोधपरक स्वरूप का अनुशीलन इस प्रबन्ध में नही हुआ है इसलिए इस शोध प्रबन्ध का रस एव उसके मानसिक प्रभावो तक सीमित रखा जा सकता है क्योकि मनोविज्ञान के माध्यम से जिस वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है वह प्रस्तुत कृति में सुलभ नही है।

मनोवैज्ञानिक पद्धतियो के आधार पर हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र म दूसरा मौलिक शोध प्रबन्ध राजस्थान विश्वविद्यालय की पी एच०डी० उपाधि हेतु 1955 ई० में प्रस्तुत हुआ।[19] प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी शोध के उन्मेष काल में लिखा गया। इस युग तक हिन्दी साहित्य में विविध वादो का विकास हो चुका था तथा साहित्यकार की रचना धर्मिता प्रयोगशीलता में समाहित हो चुकी थी। इसी को लक्ष्य करते हुए लेखक ने शोध प्रबन्ध में विवेचन के दो पक्षो को उदघाटित किया है। प्रथम वर्ग के अन्तगत उन रचनाकारो का उल्लेख हुआ है जिन्होने अपनी मानसिकता के आधार पर कल्पना के माध्यम से पात्रो का निर्माण किया है। इन लेखको ने मनोवैज्ञानिक तत्वो के आधार पर कथाए नही लिखा हैं, किन्तु कथाओ के आधार पर पात्रों की मानसिकता का चित्रण समीक्षको के लिए छोड दिया गया है जबकि दूसरे वर्ग के साहित्यकारो ने गहन मनोवैज्ञानिक चिन्तन के आधार पर चरित्रों का निर्माण किया है। प्रथम वर्ग के साहित्यकारो ने मनोविज्ञान के प्रकृत रूप को ग्रहण किया है जबकि द्वितीय वर्ग के साहित्यकार मनोविज्ञान से आक्रान्त हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में उपन्यास एव कहानी दोनों विवेचित हुए हैं। प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध प द्रह परिच्छेदों में विभाजित है । इनमें ततीय परिच्छेद म आधुनिक मनोविज्ञान क विभिन्न सम्प्रदाया एव सिद्धान्तो का विश्लेषण हुआ है तथा शेष बारह परिच्छेदों मे हि दी के प्रमुख कथाकारा के साहित्य का मनोवैज्ञानिक विवेचन हुआ है । इन कथाकारो ने मनोवैज्ञानिक आधार को किस रूप में ग्रहण किया है तथा उनका साहित्य मनोवैज्ञानिकता से कितना प्रभावित है यही लेखक का विवेच्य विषय है । लेखक ने इस तथ्य को स्वय स्पष्ट किया है यदि तुलसी सूर, प्रेमचन्द तथा प्रसाद क साहित्य की व्याख्या के लिए मावर्स के आर्थिक सिद्धान्तो की सेवाओ को नियोजित किया जा सकता है, तो फायड, एडलर, जु ग इत्यादि ने मानव क रहस्योद्घाटन के जो साधन बतलाये हैं उनसे कुछ आलोक के कण माँग कर हम सत्य के तिमिरावत कुछ अश को उदभासित क्यो न करें ।'[20] इसलिए शोधकर्ता न आधुनिक हि दी कथा साहित्य को मनोवैज्ञानिक धरातल पर समीक्षित किया है क्योंकि कथा साहित्य में चरित्र की प्रधानता होती है और मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए किसी चरित्र को ही आधार बनाया जाता है ।

प्रस्तुत शोध प्रब ध मे हि दी कथा साहित्य की प्रेमचन्दीय परम्परा एव उनकी परवर्ती रचनाओ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है । इन रचनाकारों में प्रेमच द के अतिरिक्त जनेन्द्र, अज्ञेय एव इलाच द जोशी का कथा साहित्य मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित है, इसलिए इन कथाओं में मनोविज्ञान के प्रभाव का विश्लेषण सहज हो गया है । इसी क्रम म लेखक ने मोहन राकेश के 'अधेरे बन्द कमरे' का भी विश्लेषण किया है, जिसमे मनोवैज्ञानिकता को आयातित किया गया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में कृतियों के बाहुल्य एव मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियो की विशृखलता के कारण यद्यपि लेखक को पूण सफलता नही मिली है तथापि इस शोध प्रब ध म मनोवैज्ञानिक सम्भावनाएँ सन्निहित हैं । वस्तुत हि दी साहित्य म मनोविज्ञान को एक पथक विषय के रूप मे रखा गया है । इसीलिए शोधकर्ता ने एक दूसरे के सहवर्ती भावो को न लेकर उन्हें भिन्न भिन्न दृष्टियो स विश्लेषित किया है । मनोवैज्ञानिक पद्धतियो के आधार पर इन चरित्रो की मानसिकता का विश्लेषण न होने के कारण इस शोध प्रबन्ध को मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियो की दष्टि से सफल नही माना जा सकता है ।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान 1960 ई० से ज्ञान विज्ञान के नवीन मानदण्डों के आधार पर विकसित हुआ, इस काल के शोध ग्रन्थों की प्रमुख विशेषता उनकी प्रवृत्ति मूलक विवेचना है । उत्तर कालीन शोध ग्र थो में जिन प्रमुख विचारधाराओं का उ मेष हुआ, उनमें मनोविज्ञान समाज विज्ञान एव मार्क्सवादी विचारधाराए प्रमुख हैं । इनमे भी सर्वाधिक वैज्ञानिक शाखा मनोविज्ञान की है । 1934 स 1960 ई० के मध्य जहाँ केवल दो मनोवैज्ञानिक शोध प्रस्तुत हुए, वहीं 1960 ई० के बाद

1976 ई० तक अड़तालीस शोध प्रबन्ध विभिन्न विश्वविद्यालयों में मनोवैज्ञानिक विवेचन के आधार पर लिखे गये। इस काल में आधुनिक काल के साहित्यकारों से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक शोध प्रबन्ध तो प्रस्तुत ही हुए मध्य कालीन हिन्दी साहित्य में सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक शोध का प्रणयन भी इस युग में हुआ। उत्तर काल में सूरदास से सम्बन्धित पाँच तुलसी साहित्य से सम्बन्धित तीन तथा एक शोध प्रबन्ध केशव से सम्बन्धित था। इसी प्रकार आधुनिक काव्य से सम्बन्धित तेरह शोध प्रबन्धों का लेखन इस काल में हुआ तथा सात शोध प्रबन्ध हिन्दी कथा साहित्य से सम्बन्धित हैं जिनमें तीन शोध प्रबन्धों में जैनेन्द्र साहित्य का मूल्यांकन हुआ है। इस काल के अनुसन्धायकों ने अलंकार जैसे वाह्य उत्पादन की मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं का विश्लेषण भी किया है जिनमें अलंकार एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन[21] तथा अलंकार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रमुख है।[22]

इस काल की मुख्य उपलब्धि मनोवैज्ञानिक अध्ययन की विविधता है। हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित अधिकांश अनुसन्धान ग्रन्थ मनोविज्ञान से सम्बद्ध रहे हैं किन्तु उनमें मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र विषय है तथा उसकी विविध शाखायें प्रशाखाएँ हो चुकी हैं जिनके आधार पर साहित्यानुशीलन के भी विभिन्न प्रारूप हो सकते हैं, किन्तु हिन्दी साहित्यानुसन्धायकों ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन को एक सामान्य क्षेत्र में परिसीमित कर दिया है जिससे मनोविज्ञान की वस्तुनिष्ठता निष्पादित नहीं हो पाती। उत्तर कालीन कतिपय अनुसन्धित्सुओं ने इस ओर दृष्टिपात किया और उन्होंने मनोवैज्ञानिक अध्ययन की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर अध्ययन किया।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए आधुनिक साहित्य अधिक उपयोगी एवं व्यावहारिक प्रतीत होता है, इसीलिए हिन्दी साहित्य में पचास मनोवैज्ञानिक शोध प्रबन्धों में सैंतीस शोध प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित हैं। इनमें डा० देवराज उपाध्याय ने आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जबकि डा० लालता प्रसाद सक्सेना ने हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्वों का अनुसन्धान किया है। इस विखण्डीय महाकाव्य शोध प्रबन्ध के प्रथम खण्ड में महाकाव्यों का काव्य शास्त्रीय विवेचन हुआ है तथा द्वितीय खण्ड में मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्तियों का सद्धान्तिक विवेचन हुआ है किन्तु इन प्रवृत्तियों की विवेचनात्मक पद्धति काव्यशास्त्रीय है तथा मनोवैज्ञानिक रचना प्रक्रिया की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध में किसी प्रकार की मौलिकता लक्षित नहीं होती। इसका मुख्य कारण शोधकर्ता का सीमित दृष्टिकोण है। शोधकर्ता ने मनोविज्ञान एवं काव्य को आधाराधेय के रूप में न ग्रहण करके दोनों को जीवन के अन्तःप्रदेश की व्याख्या माना है। इनमें महाकाव्य को जीवन के उदात्त स्वरूप की व्याख्या कहा

गया है। तथा मनोविज्ञान को जीवन के कुत्सित यथार्थ का व्याख्याता माना गया है।[23]

शास्त्रियानुसन्धान क क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक शोध पद्धतियों का हिन्दी उपन्यासों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी के तिलस्मी उपन्यासों में मान सिकता के लिए रचमात्र अवकाश नहीं था किन्तु प्रेमचन्द ने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए पात्रों के जटिल मानसिक सबधों, अन्तर्द्वन्द्वों मन शक्तियों मूल प्रवृत्तियों एव उनकी मानसिक प्रक्रियाओं का सूक्ष्मतम विश्लेषण किया है। प्रेमचन्द के अधिकांश पात्र सामाजिक परिवेश से जुड़े हैं और यहीं के हर्ष शोक राग द्वेष और पाप पुण्य के सहभागी हैं। इसलिए हिन्दी कथा साहित्य को सामाजिक मनोवैज्ञानिक धरातल पर समीक्षित करने का सफल प्रयत्न हुआ है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी, यशपाल जैनेन्द्र और अज्ञेय प्रमुख हैं। इन उपन्यासकारों ने मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर उपन्यासों का प्रणयन किया है इसीलिए प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सम्भावनाएँ बढ़ती गई और इस काल की 1970 ई० तक की कहानियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शोधकर्ताओं ने किया। अज्ञेय के उपरान्त हिन्दी साहित्य के प्रमुख कहानीकारों ने मनोविज्ञान को एक नये दृष्टिकोण से ग्रहण किया। इन रचनाकारों ने मनोवैज्ञानिक तत्वों का ही साहित्य पर आरोपित कर दिया और इस प्रकार इन कृतियों में मनोवैज्ञानिक तत्व मूल कथा को बाधित करते रहे। ऐसे रचनाकारों में उषा प्रियवदा रजनी पनिक्कर, राजकमल चौधरी, महेन्द्र चौहान, सूर्यकुमार जोशी, शैलेश मटियानी तथा मोहन राकेश उल्लेखनीय हैं। मनोवैज्ञानिक तत्वों की मुखरता के कारण अर्वाचीन कथा साहित्य के विवेचन का आधार भी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति को बनाया गया और मनोविज्ञान की विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्यिक अनुसन्धान सम्पन्न हुए। इस दृष्टि से इस युग में सामाजिक मनोविज्ञान, शिशु मनोविज्ञान और नारी मनोविज्ञान का विकास विशेष रूप से हुआ। इन प्रवृत्तियों में भी नारी मनोविज्ञान का विशेष विवेचन हुआ है। इन औपन्यासिक शोध प्रबन्धों की विवेचन पद्धति में भी तात्त्विक अन्तर मिलता है। नारी मनोविज्ञान की दृष्टि से यद्यपि अनेक शोध ग्रन्थ प्रस्तुत हो चुके हैं किन्तु उनमें अधुनातन उपन्यासों के आधार पर लिखा गया सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान ही विमर्श्य है।[24] इस शोध प्रबन्ध में लेखक ने नारी मनोविज्ञान को स्वतन्त्र मनोविज्ञान माना है। शारीरिक सरचना में अन्तर होने के कारण मनोवैज्ञानिकों ने पुरुष एव नारी के मनोभावों को अलग अलग ढग से विवेचित किया है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक पायबय करेन हार्नी ने किया। उसने शारीरिक भिन्नता को मनोवैज्ञानिक स्थितियों का द्योतक माना है।[25]

साहित्यानुसन्धान के प्रसंग में उत्तरवर्ती काल तक जो शोध ग्रन्थ प्रकाश में आये उनके अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी अनुसन्धायक वैज्ञानिक चिन्तन से तो प्रभावित थे किन्तु विज्ञान के दो प्रमुख तत्व–पदार्थ (मैटर) एवं शक्ति (इनर्जी) को वस्तुनिष्ठ बनाकर उसके अधिग्रहण में असमर्थ थे, इसीलिए आधुनिक भारतीय साहित्य चिन्तन एवं पाश्चात्य चिन्तन में वस्तुगत पृथक्ता परिलक्षित होती है। पाश्चात्य साहित्यकारों–पोप ड्राइडन ब्वालो और फ्लावेयर ने जिस प्रकृतिवादी वैज्ञानिक जीवन दृष्टि का विकास किया है उसका हिन्दी साहित्य में सर्वथा अभाव है। इसीलिए साहित्यानुसन्धित्सु को गम्भीर सुचिन्तित विचार सरणि के अभाव में शोध की अगाध ज्ञानराशि का अवगाहन दुष्कर प्रतीत होता है। वैज्ञानिक पद्धतियों के निर्धारण की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के समीक्षक मौन रहे हैं। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रणयन में जिस प्रकार समीक्षकों ने दत्त चित्त होकर सफलता प्राप्त की है, उससे साहित्य के स्वरूप गत विश्लेषण को सहजता मिली है। किन्तु साहित्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का कोई स्वतन्त्र प्रयास हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ है। मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों के विवेचन का प्रथम प्रयास शोध कार्य के अन्तर्गत हुआ है और इस दृष्टि से 'आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य' शोध ग्रन्थ का उल्लेख किया जा सकता है किन्तु इस शोध ग्रन्थ में लेखक फ्रायडीय प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका है इसलिए इस ग्रन्थ में निर्धारित शोध पद्धतियाँ मात्र मनोविश्लेषण से सम्बद्ध हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का एकांश मात्र है। इसके अतिरिक्त नारी मनोविज्ञान शिशु *मनोविज्ञान समाज मनोविज्ञान एवं गेस्टाल्टवाद भी मनोविश्लेषण की भांति अनु*सन्धान की पद्धतियाँ हैं। इन सभी पद्धतियों के सुव्यवस्थित विवेचन के आधार पर ही साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। डा० गंगाधर झा ने मनोविज्ञान की चार पद्धतियों का उल्लेख किया है–[30] मनोविश्लेषणवाद प्रयोजनवाद, व्यवहारवाद और आकृतिवाद। वस्तुतः इन्हें शोध पद्धतियों के रूप में नहीं ग्रहण किया जा सकता, क्योंकि ये मनोविज्ञान के विविध सम्प्रदाय हैं जिनके विश्लेषण के लिए पद्धतियों के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है।

साहित्यानुसन्धान में पूर्व निर्दिष्ट पद्धतियों के अभाव में ही अर्द्ध शतकीय शोधों के प्रस्तुति के उपरान्त भी एक सुविचारित दिशा नहीं मिल रही है इस क्रम में अध्ययन पद्धतियों का विवेचन करते समय चार मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का उल्लेख किया जा चुका है। यदि वैज्ञानिक विश्लेषण की भांति साहित्यानुसन्धित्सु भी इन्हीं तथ्यपरक पद्धतियों को ग्रहण करें तो मनोवैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र में नये आयाम प्रस्तुत हो सकते हैं।

4 हिन्दी अनुसन्धान में वैज्ञानिक वस्तु-निष्ठा की प्रवृत्ति का विकास

अनुसंधान के स्वरूप का विवेचन करते समय उसकी विधियों एवं प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जा चुका है। उन पद्धतियों में दार्शनिक एवं ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धतियाँ साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में प्रारम्भिक काल में विशेष महत्वपूर्ण रही हैं किन्तु कालान्तर में समाज वैज्ञानिक एवं प्राकृतिक वैज्ञानिक पद्धतियों के साथ इन पद्धतियों का महत्व कम होता गया तथा 1960 ई० के बाद अति बुद्धिवादी विचारकों ने इतिहास एवं दर्शन की अपेक्षा साहित्य में वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक पद्धति को प्रश्रय दिया। ऐसी स्थिति में अनुसंधान का आशय साहित्यिक न रहकर वैज्ञानिक हो गया।

वस्तुतः साहित्यानुसंधान को वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर विश्लेषित करने का श्रेय पाश्चात्य समीक्षकों को दिया जा सकता है। जब दार्शनिक एवं ऐतिहासिक अनुसन्धान पद्धतियों के द्वारा तथ्यों का सत्यापन सम्भव नहीं हो सका तो सार्वकालिक अकाट्य शक्ति की सिद्धि हेतु वैज्ञानिक शोध का आधार लिया गया। वैज्ञानिक अनुसंधायकों ने पर्यवेक्षण एवं मापन के द्वारा सत्यापन किया है जबकि साहित्यानुसंधित्सु सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन हेतु प्राक्कल्पनाओं और तर्कना का आश्रय लेता है जब व्यक्ति की तर्कना आगमनात्मक सिद्धान्तों की अपेक्षा निगमनात्मक सिद्धान्तों से सम्बद्ध हुई तो साहित्यानुसन्धान का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पक्ष विकसित हुआ। इसके विपरीत वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति के अन्तर्गत पुष्ट प्रमाणों के बल पर तार्किक दृष्टि को छोड़कर अनुसंधित्सु तथ्य सकलन की क्लिष्ट एवं विलम्बित पद्धति की ओर अग्रसर होता है।

वस्तुतः शोध स्वतः विज्ञान है जिसमें मानव के जागतिक सम्बन्धों का विश्लेषण एवं पर्यवेक्षण किया जाता है। रचनाकार लोकचेता, कल्पनाशील भावप्रवण व्यक्ति होता है, जिसकी अतृप्त वासनाओं एवं ज्ञान पिपासा का अभिव्यंजित स्वरूप कृति में उपलब्ध होता है। रचनाकार की इसी साधना को निरावृत करके सम्प्रारूप बनाने का दायित्व अनुसंधित्सु पर आता है। प्रत्येक अनुसंधित्सु प्रारम्भिक पद्धतियों के आधार पर कृतियों का अनुशीलन करता है किन्तु निरन्तर शोधन के फलस्वरूप व्यक्ति विशेष की धारणाएं कालान्तर में अपुष्ट एवं तथ्यहीन हो जाती हैं। विज्ञान सत्य के इसी परिवर्तनशील स्वरूप का व्याख्याता है, जिसमें प्रागनुभव नवीन सन्दर्भों में अपनी अवस्था खो देते हैं। इस वैज्ञानिक प्रक्रिया का उल्लेख भारतीय मनीषियों ने भी किया है। कालिदास परम्परा को प्रयोग से गौण मानते हैं।[27] इसके विपरीत साहित्यानुसंधायक तथ्यानुशीलन की इस सर्वेक्ष्य जटिल

पद्धति की अपेक्षा दार्शनिक पद्धति को ही महत्वपूर्ण मानता है। वैज्ञानिक पद्धति में निरीक्षण एवं परीक्षण के आधार पर सिद्धान्तों की स्थापना होती है। बेकन आदि चिन्तकों ने प्रत्यक्ष निरीक्षण को ही सत्य माना है। विज्ञान ईश्वर को जब तक स्वनिर्मित यन्त्रों द्वारा निरीक्षित नहीं कर लेता तब तक उसके विषय में कोई निश्चित धारणा नहीं बनाता जबकि दर्शन ईश्वरत्व का आरोपण करने के उपरान्त उसकी विशेषताओं का तर्कना द्वारा विश्लेषित करता है। वस्तुतः ये दोनों पद्धतियाँ साहित्य के क्षेत्र में समान उपयोगी हैं। दार्शनिक पद्धतियों का विश्लेषण करते समय इनके कार्य क्षेत्र एवं विषय व्याप्ति का उल्लेख किया जा चुका है। इसके विपरीत आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों की विश्लेषणात्मक स्थिति का विवेचन साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में सम्भव नहीं हो सका। इन पद्धतियों के साहित्यिक प्रभाव का आकलन करने से पूर्व वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता का विवेचन प्रासंगिक होगा। साहित्यिक सृजना के अन्तर्गत व्यक्ति (Subject) और वस्तु (Object) में अन्त सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है व्यक्ति स्रष्टा है और वस्तु सृष्टि। दार्शनिक *अनुसंधान पद्धतियों के अन्तर्गत जिस प्रकार नियामक ब्रह्म एवं उसकी सृष्टि के* सम्बन्धों का विवेचन होता है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी रचना के आधार पर रचनाकार के युग एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है किन्तु इस विवेचनात्मक पद्धति का प्रयोग तथ्यों के सूक्ष्म अनुशीलन द्वारा ही सम्भव हो सकेगा। प्रारम्भिक शोधों में तथ्य के तात्त्विक विश्लेषण की अपेक्षा उसकी भावाभिव्यंजना कलात्मकता इत्यादि का विश्लेषण होता था किन्तु आधुनिक शोधार्थियों ने इस स्थूल विश्लेषण की अपेक्षा सूक्ष्म और प्रामाणिक वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ अध्ययन पर बल दिया।

वस्तुनिष्ठता की सुस्पष्ट व्याख्या अमेरिकन दार्शनिक पियर्स ने की है। उसके अनुसार शोध विधि को ऐसा होना चाहिए कि सभी मनुष्य एक ही निष्कर्ष पर पहुँचें। यही वैज्ञानिक विधि है और इसके अन्तर्गत परीक्षित सभी वस्तुएँ वास्तविक होती हैं तथा उनके विषय में अन्य लोगों द्वारा दिये गये अभिमत निरर्थक होते हैं।[29]

वस्तुनिष्ठता के सन्दर्भ में वैज्ञानिक आविष्कारों ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया उसका प्रभाव अन्य पद्धतियों पर भी पड़ा। इसके पूर्व समाज विज्ञान के क्षेत्र में वैयक्तिक विचारों को प्राथमिकता प्रदान की जाती थी। समाजशास्त्र अर्थशास्त्र राजनीति विज्ञान एवं मानविकी के अन्य शास्त्रों में पारिभाषिक पार्थक्य का मूलाधार उनकी विषयिनिष्ठता (Subjectivity) को माना जा सकता है किन्तु वस्तुनिष्ठता के अन्तर्गत परीक्षण एवं परिमापन की जिस वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयोग हुआ, उसके द्वारा सत्यापित सिद्धान्तों ने व्यक्ति विशेष का सम्मति की

अपेक्षा नहीं की है। उदाहरण के लिए समाज विज्ञान से सम्बन्धित सर्वेक्षणों द्वारा जो आँकड़े निकले उनके आधार पर समाज में विभिन्न वर्गों की स्थिति का जब विश्लेषण हुआ तो इस सन्दर्भ में अनुमानों एवं प्रागनुभवों को कोई स्थान नहीं मिला। साहित्य के क्षेत्र में भी इसी वस्तु निष्ठता का प्रयोग साठोत्तरी शोधों में हुआ है। विहित तथ्यानुसन्धान के लिए साहित्यानुसन्धित्सुओं ने वैज्ञानिक क्रिया विधियों का आश्रय लिया। यद्यपि विज्ञान की भाँति विविध यन्त्रों का उपयोग तथा प्राविधिक ज्ञान का आश्रय साहित्य के क्षेत्र म नहीं लिया जा सकता था तथापि भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों, समाजशास्त्रीय मानदण्डों एवं ऐतिहासिक पुरा लेखों के आधार पर साहित्य का परीक्षण करके उसके मूल सत्य का अनुशीलन किया। इस प्रकार साहित्य को वस्तुनिष्ठ बनाने में आधुनिक विचार सरणि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इन नवीनतम विचारणाओं म मनोवैज्ञानिक मार्क्स वादी समाजवैज्ञानिक एवं प्राकृतिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनके आधार पर कल्पना एवं तर्क के आलोक में विवेचित साहित्य को वैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा वस्तुनिष्ठ सत्यापन पद्धति के आधार पर विश्लेषित किया गया।

5 हिन्दी अनुसन्धान में वैज्ञानिक क्रिया विधियों का उपयोग

अनुसन्धान के स्वरूप एवं उसकी प्रक्रियाओं का अध्ययन करते समय ज्ञान प्राप्ति की विभिन्न विधियों का उपयोग किया गया था। जिज्ञासु मानव सर्वप्रथम निकटतम साहचर्य के कारण प्राकृतिक शक्तियों को अन्वेषण का माध्यम बनाता रहा है। इसके लिए प्रबुद्ध प्राणी के रूप में मनुष्य ने पदार्थ का अध्ययन किया और पदार्थ की शक्ति को निरूपित करने के लिए कई मानकों की स्थापना की। इन मानकों को बनाने के पूर्व जिज्ञासुओं ने ज्ञान की प्रागनुभविक एवं प्रायोगिक पद्धतियों का विकास किया जिन्हें आगमन तथा निगमन के रूप में विवेचित किया गया। कालान्तर में इन्हीं क्रियाविधियों के आधार पर समस्त वैज्ञानिक अविष्कार सम्पन्न हुए और सृष्टि के समस्त मनुष्यों को जिज्ञासु माना गया। धीरे धीरे सामाजिक व्यवस्थाओं में दृढ़ता आने के कारण मानवीय ज्ञान की परिधि विकसित होती गयी और तार्किक या प्रागनुभविक अध्ययन की अपेक्षा वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया गया। यहाँ वैज्ञानिकता का आशय विषय के वस्तुनिष्ठ अध्ययन से है। इस वस्तुनिष्ठ प्रणाली के उदय के साथ मनुष्य की तर्क शक्ति प्रायोगिक सन्दर्भों से परिवर्तित होकर तथ्यपरक हो गई तथा भावनाओं संवेगों मूल्यों एवं अभिवृत्तियों के अध्ययन की जो पक्षपात पूर्ण व्यावहारिक प्रणाली विकसित हो रही थी, उसके स्थान पर तथ्यों के परीक्षण से सम्बन्धित ऐसी वस्तुनिष्ठा का विकास हुआ, जिसका सत्यापन सभी पक्षों द्वारा सम्भव था। इस प्रणाली को उपयोगी बनाने

के लिए प्राक्कल्पनाओं का आश्रय लिया गया। प्रारम्भ में इस वस्तुनिष्ठ क्रिया विधि का प्रयोग भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में हुआ किन्तु कालान्तर में इसकी शक्ति का विकास हुआ। इस वस्तुनिष्ठ वृत्ति का विकास समाज विज्ञान एवं तत्सम्बन्धित मार्क्सवादी एवं मनोवैज्ञानिक पद्धतियों में भी हुआ, जिसका विवेचन किया जा चुका है।

साहित्येतिहास की प्रवृत्तियों का विकास काल सापेक्ष्य होता है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास ग्रन्थों में तब शोध की वैज्ञानिक क्रियाविधियों का विकास नहीं हुआ था तो अनुमानाश्रित सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता था। कालान्तर में हिंदी साहित्यानुसन्धान की प्रवृत्तियों का विकास हुआ तथा ऐतिहासिक अध्ययन के अतिरिक्त साहित्य के दार्शनिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक शोध ग्रन्थ प्रकाश में आये। उस समय तक वैज्ञानिक तत्वों को समाज विज्ञान के क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाने लगा था। सामाजिक अध्ययन के साथ ही समाज विज्ञानों की पद्धतियाँ साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में व्यवहृत हुईं और इसी के साथ साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा का विकास हुआ। यद्यपि हिन्दी साहित्य में विशुद्ध वैज्ञानिक शोध ग्रन्थों का अभाव है किन्तु वैज्ञानिक शोध पद्धतियों से प्रभावित अनेक शोध ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं जिनका विवेचन करने के पूर्व वैज्ञानिक पद्धतियों का उल्लेख प्रासंगिक होगा।

वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में परिकल्पनात्मक, प्रयोगात्मक, विकासात्मक एवं सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग होता है, इनमें प्रयोगात्मक अनुसन्धान पद्धति सर्वाधिक उन्नत विधि है, जिसके अन्तर्गत किसी सूक्ष्म समस्या का सूक्ष्मतम व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है। ज्ञान के जिस क्षेत्र में प्रयोगात्मक अनुसन्धान पद्धति का प्रयोग हुआ है उसे ही विज्ञान माना गया है। उदाहरण के लिए– कटेल, वेबर, वाहलर जैसे विश्लेषकों ने प्रतिक्रियाओं, मनोभौतिकी तथा प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र में क्रमशः जो प्रयोग किये हैं उन्होंने मनोविश्लेषण शास्त्र को मनोविज्ञान का रूप दिया। साहित्य में वस्तु के व्यक्तित्व पक्ष एवं कृतिकार के परिवेश का अध्ययन होने के कारण प्रयोग के लिए अवकाश नहीं रह जाता इसलिए साहित्य का प्रायोगिक अध्ययन सम्भव नहीं था। साहित्यानुसन्धानों में केवल कृतियों का भाषा वैज्ञानिक विवेचन ही निष्पक्ष कार्य कारण सम्बन्धों के आधार पर किया जा सकता है जिसका विवेचन करना यहाँ अप्रासंगिक होगा। इसके अतिरिक्त आधुनिक शोध के सन्दर्भ में शैली वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रयोगात्मक वैज्ञानिक पद्धति से जुड़ा है। शैली विज्ञान एक ओर साहित्य के काव्यशास्त्रीय अध्ययन से जुड़ा है तो दूसरी ओर इसका मूल स्रोत भाषा वैज्ञानिक है। हिन्दी साहित्य में शैली वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा अत्याधुनिक है तथा इस पद्धति के आधार पर अभी तक दर्जनाधिक शोधों का लेखन नहीं हुआ है। इस प्रकार के शोध प्रबन्धों में

साहित्य में शैली तात्विक अध्ययन पर बल दिया जाता है जिसके अन्तर्गत कृति विशेष में प्रयुक्त शब्दों का व्याकरणिक अध्ययन किया जाता है। वस्तुतः शैली विज्ञान भाषा विज्ञान की एक शाखा है।[29] इसलिए शैली तात्विक अध्ययन को वैज्ञानिक पद्धतियों की देन मानते हुए भी यहाँ विवेचित करना युक्ति युक्त नहीं प्रतीत हो रहा है। वैज्ञानिक क्रियाविधियों के आधार पर साहित्यकीय अध्ययन की एक नयी प्रणाली का विकास हुआ है जिसके अन्तर्गत विभिन्न रचनाओं में आये हुए शब्दों की अर्थपरक, व्युत्पत्तिपरक एवं व्याकरणिक कोटियों का निर्धारण होता है। इस पद्धति के विकास का श्रेय लेनिन ग्राड विश्वविद्यालय को है।[30] इस पद्धति के आधार पर हिन्दी में अभी तक शोध लेखों का प्रकाशन ही हुआ है तथा किसी विशिष्ट शोध ग्रंथ का उल्लेख नहीं मिलता।

वैज्ञानिक क्रियाविधियों की साहित्यिक विकास की दृष्टि से होने वाली उपयुक्त व्याख्याएँ साहित्यानुशीलन से सम्बद्ध न होकर उस पर केवल आधृत है। इसके विपरीत कुछ शोध प्रबन्ध इस कोटि के हैं जिन पर वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। ऐसी पद्धतियों में विकासवादी पद्धति का उल्लेख किया जा सकता है। इस पद्धति के द्वारा साहित्याध्ययन की व्यक्तिपरक विवरणात्मक प्रणाली के स्थान पर वस्तुपरक तथ्यात्मक पद्धति का उदय हुआ, साहित्येतिहास पर इस पद्धति ने विशेष प्रभाव डाला है। हिन्दी साहित्य में अध्ययन के लिये विकासात्मक प्रणाली के उदय के पूर्व अनुसंधाता को सीमित अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आकलन करना पड़ता था तथा उसे केवल अभिलेखों एवं साक्षात्कार का आश्रय लेना पड़ता था। विकासात्मक पद्धति ने इस क्षेत्र में क्रांति ला दी और कालातीत विवेचनों को इस पद्धति द्वारा सहज बनाया गया। इसके पूर्व साहित्येतिहास अनुमानाश्रित रहा करता था जबकि विकासात्मक पद्धति के द्वारा भौतिक मापन के उपकरणों, मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों, एवं अभिलेखीय परीक्षणों ने ऐतिहासिक तथ्यों को सुसंगत, व्यवस्थित एवं प्रामाणिक बनाया। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों से सम्बद्ध विवादास्पद एवं संदिग्ध घटनाओं के द्वारा साहित्यिक शोध के क्षेत्र में जो वितण्डावाद उठ खड़ा हुआ था, उसके स्थान पर निष्पन्न वस्तुनिष्ठ शोध ग्रन्थों का लेखन हुआ तथा इन ग्रन्थों में विकास के स्तर एवं दिशाओं का निर्देश भी किया गया। वैज्ञानिक क्रियाविधियों का यह एक महत्वपूर्ण प्रभाव है।

साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में पाठानुशीलन सम्बन्धी शोध ग्रन्थों पर वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रभाव पड़ा। आदि काल तथा मध्य काल की ज्ञाताज्ञात अनेक रचनाओं की पाठ निर्धारण सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण हेतु वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के द्वारा निर्मित यन्त्रों के आधार पर कृतियों के लेख, अक्षर रचना, लेखपत्र इत्यादि का परीक्षण किया गया और उसके आधार पर प्राचीनतम प्रतियों का

अन्वेषण करके प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत करने में प्रायोगिक विधि का आश्रय लिया गया। गोस्वामी तुलसीदास,[31] कबीरदास[32] तथा देव[33] की रचनाओ के पाठ निर्धारण मे इसी प्रयोगात्मक प्रविधि ने प्रभाव डाला। इस प्रकार पाठालोचन के क्षेत्र में इन पद्धतियो का प्रयोगशालाओ के अभाव में पूर्ण उपयोग तो नहा हुआ, किन्तु इनकी प्रभावात्मक सत्ता गोपित रही है।

वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर अभी तक जिन शोध प्रबन्धो का विवेचन हुआ है, वे किसी एक वज्ञानिक पद्धति पर आधृत नही हैं बल्कि उन पर वज्ञानिक पद्धतियो का यत्किंचित प्रभाव पडा है। इसके अतिरिक्त कुछ एसे शोध ग्रन्थ भी प्रकाश में आये हैं, जिनमें भौतिक विज्ञानो के अध्ययन से सम्बन्धित शब्दावली का विश्लेषण हुआ है। ऐसे शोध प्रबन्धों में तकनीकी वज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दो के हिन्दी अनुवाद की समस्या'[34] और'प्रक्षेप एक सद्धान्तिक अध्ययन'[35] उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त वनस्पति विज्ञान की भाति हिन्दी में भी मध्य युगीन ओर आधुनिक हिन्दी कविता में पेड पौधे और पशु पक्षी'[36] तथा चिकित्साशास्त्र के आधार पर हिन्दी साहित्य पर आयुर्वेद का प्रभाव [37] जसे शोध ग्रन्थ प्रकाश मे आये हैं किन्तु इन शोध ग्रन्थो में भी वज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है क्योंकि इनमें इन तथ्यों की ऐतिहासिक व्याख्या ही की गयी है। इसी प्रकार भारतेन्दु का शब्दकोश उसका वज्ञानिक अध्ययन'[38] शीषक शोध प्रबन्ध भी वज्ञानिकता की अपेक्षा भाषाशास्त्रीय अध्ययन पर अधिक आधृत है।

हिन्दी साहित्य में विशद्ध वज्ञानिक तत्वो की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'साहित्य विज्ञान[39] है। इस शोध प्रबन्ध के प्रारम्भ में विभिन्न वज्ञानिक सिद्धान्तो का विवेचन किया गया है तथा उन्ही सिद्धान्तो के आधार पर साहित्य का विश्लेषण किया गया है किन्तु इस प्रबन्ध में भी लेखक ने विकासवादी पद्धति को ही महत्व दिया है। वस्तुत ये वज्ञानिक पद्धतियाँ साहित्यिक शोध के सन्दभ म अन्य पद्धतियो को प्रभावित करने के लिए ही प्रयुक्त हुई हैं तथा इनका स्वतन्त्र प्रयोग साहित्य म नही हो पाया है।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के वस्तुनिष्ठ स्वरूप का अनुशीलन करते समय वैज्ञानिक तत्वों के अभिनिवेशन की प्रक्रिया तथा उसके प्रभावो का दिग्दशन ही प्रस्तुत अध्याय में हुआ है। हिन्दी साहित्य के पयवेक्षण हेतु इतिहास एव दशन की चिराचरित प्रणाली के स्थान पर भौतिक एव सामाजिक विज्ञानो के क्षेत्र म प्रायोगिक सन्दर्भों से अनुप्राणित सांख्यिकीय विधि द्वारा सत्यापित पदाथ एव शक्ति के सूक्ष्मतम अध्ययन की विधि का विकास किया। बीसवी शती म वज्ञानिक वस्तुनिष्ठक वत्तियो ने ललित कलाओ को भी प्रभावित किया। इसी प्रकार आधुनिक कृतिकारों न साहित्य को सामाजिक यथाथ से जोडते हुये सामाजिक एव वज्ञानिक सन्दर्भों को कृति म स्थान दिया। इन समस्त विचारधाराओ ने साहित्य के वज्ञानिक परीक्षण

पर बल दिया तथा विभिन्न आधुनिक विज्ञानों के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक अध्ययन की परम्परा विकसित हुई।

हिन्दी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में इस वैज्ञानिक प्रवृत्ति का उदय साठोत्तरी शोधों में हुआ। साहित्यानुशीलन की इसी नयी प्रक्रिया के आधार पर इस काल को उत्कर्षकाल कहा गया है। इस काल में मनोवैज्ञानिक, समाज वैज्ञानिक, मार्क्सवादी एवं वैज्ञानिक क्रियाविधियों को हिन्दी अनुसन्धान हेतु व्यवहृत किया गया। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत साहित्य की मानसिकता एवं साहित्यकार के व्यक्तित्व के अध्ययन का प्रयास हुआ तथा समाज वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग से साहित्य के युगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रभावों तथा परम्पराओं का अनुशीलन किया गया। हिन्दी साहित्यानुसन्धान की इस नवीन विचारधारा के आगमन से साहित्य की लोक धर्मिता के वैज्ञानिक परीक्षण को प्रश्रय मिला। इसी प्रकार मार्क्सवादी अनुसन्धान पद्धति के आधार पर प्रस्तुत प्रबन्धों में साहित्य की प्रगतिशीलता का अध्ययन हुआ। मार्क्सवादी अनुसन्धान पद्धति ने सामाजिक एवं आर्थिक विचारधाराओं को नवीन मानदण्डों के निकष पर पुनरीक्षित करते हुए साहित्य में इन विचारधाराओं की विकासशील सम्भावनाओं का उद्घाटन किया। इसी प्रकार वैज्ञानिक क्रियाविधियों के विनियोग से साहित्येतिहास के निष्पक्ष संस्थापन की पद्धति प्रचलित हुई। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि साहित्य के क्षेत्र में प्रयुक्त इन वैज्ञानिक पद्धतियों ने हिन्दी शोध को व्यावहारिक एवं प्रभावपूर्ण बनाने में अप्रतिम योगदान किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ॰ चण्डी प्रसाद जोशी–सागर वि॰ वि॰ 1960 ई॰
2 डॉ॰ प्रेमचन्द विजयवर्गीय– आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन' पृ॰ 10
3 कुरुक्षेत्र वि॰ वि॰, 1969 ई॰
4 डॉ॰ गोपाल शर्मा–दिल्ली वि॰ वि॰, 1963 ई॰
5 डॉ॰ के॰ एल॰ मिनवार–राजस्थान वि॰ वि॰, 1967 ई॰
6 डॉ॰ महेशचन्द्र–मेरठ वि॰ वि॰, 1974 ई॰
7 प्रेमचन्द– साहित्य का उद्देश्य, पृ॰ 41
8 वही, पृ॰ 54
9 डॉ॰ चण्डी प्रसाद जोशी– हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, विषय प्रवेश
10 डॉ॰ स्वर्णलता– स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि पृ॰ 3

11 डॉ० उमेश चन्द्र मिश्र-'प्रगतिवादी काव्य', पृ० 23
12 डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी- प्रगतिवादी समीक्षा, पृ० 101
13 प्रेमचन्द- साहित्य का उद्देश्य पृ० 5
14 K. Marx and Engeles-The German Ideology Page 13
15 K Marx-Selected Works Vol 1, Page 56 57
16 डॉ० कमलिनी मेहता-काशी हिन्दू वि० वि०, 1960 ई०
17 डॉ० परशुराम शुक्ल 'विरही'-आगरा वि० वि० 1962 ई०
18 Dr Chhail Behari Gupta Rakesh – Psychological studies in Ras', Allahabad University D Phil
19 डॉ० देवराज उपाध्याय-आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान।
20 डॉ० देवराज उपाध्याय-आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० 2
21 डॉ० महेन्द्र कुमार अग्रवाल-मगध वि० वि०, 1975 ई०
22 डा० ससार चन्द्र-बिहार वि० वि० 1973 ई० डी० लिट
23 डॉ० ललिता प्रसाद सक्सेना- हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व प्रथम भाग पृ० 151
24 डा० शकर प्रसाद-पटना वि० वि० 1976 ई०
25 Anatomical structure of the female genitals is indeed of great significance in the meanal development of woman
-Karen Horney- Feminine Psychology Page 52
26 डा० गगाधर झा-आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य पृ० 37
27 पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्य नवमित्यवद्यम।
सन्त परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ पर प्रत्ययनेव बुद्धि॥
-कालिदास- मालविकाग्निमित्रम्', 1 2
28 The method must be such that the ultimate conclusion of every man shall be the same Such is the method of Science Its fundamental hypothesis is this there are real things whose characters are entirely independent of our opinions about them
-F N Kerlinger- Foundations of Behavioural Research P-7
29 डा० भोलानाथ तिवारी- भाषा विज्ञान पृ० 462
30 वही पृ० 457
31 डा० माता प्रसाद गुप्त-'तुलसीदास जीवन और कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन' इलाहाबाद वि० वि० 1940, डी० लिट

32 डॉ० पारसनाथ तिवारी–'कबीर की कृतियों के पाठ और समस्याओं पर आलोचनात्मक अध्ययन' इलाहाबाद वि० वि० 1957

33 डॉ० लक्ष्मीधर मालवीय–'देव के लक्षण ग्रन्थों का पाठ तथा पाठ सम्बन्धी समस्यायें' इलाहाबाद वि० वि० 1961 तथा
डॉ० पुष्पारानी जायसवाल–'देव की कृतियों में पाठ और पाठ समस्यायें' इलाहाबाद वि० वि० 1970 ई०

34 डॉ० एन० आर० राजूरकर–जबलपुर वि० वि० 1966 ई०

35 डॉ० सुधाकर शुक्ल–लखनऊ वि० वि०, 1966 ई०

36 डॉ० विद्या भूषण गगल–नागपुर वि० वि०, 1960 ई०

37 डॉ० माधवधर–जम्मू वि० वि०, 1972 ई०

38 डॉ० सत्यवती अग्रवाल–काशी हिन्दू वि० वि० 1967 ई०

39 डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त–पंजाब वि० वि० 1965 ई० डी० लिट०

O

उपसंहार

हिंदी साहित्यानुसन्धान के अर्द्ध शताब्दी के इतिहास का अनुशीलन करने से जो तथ्य प्रकाश मे आये हैं उनके आधार पर यही स्पष्ट होता है कि आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणो के उपलब्ध होने पर भी अनुसंधित्सुओ ने परम्परा का परित्याग नही किया है। इसी प्राचीन पद्धति को संस्कारित करने के लिए विज्ञान को साहित्यानुसंधान के क्षेत्र मे प्रविष्ट कराने का प्रयत्न प्रस्तुत प्रबन्ध में हुआ है। प्राय देखा जाता है कि जब किसी सर्वथा नवीन विचारधारा का आगम होता है तो उससे संस्कार बद्ध रूढिवादी साहित्यकार पराङ्मुख होकर उसे विगर्हणीय बनाने का प्रयत्न करता है। भारतीय चिन्तको ने भी विज्ञान को भौतिक सुखो का प्रदाता और विनाशकारी आयुधो का निर्माता मात्र माना है। ऐसी स्थिति मे उसके साहित्यिक अनुप्रवेश की कल्पना भी पूर्वाग्रही साहित्यकारो के लिये असम्भव है। इसीलिए शोधावधि मे यह निश्चय किया गया कि उपयुक्त बद्धमूल धारणा को समाप्त करने के लिए अनुसन्धान के सैद्धांतिक आधार को स्पष्ट कर दिया जाय और इसके उपरान्त शोध ग्रन्थों के सर्वेक्षण द्वारा साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र मे व्याप्त त्रुटियो का निराकरण करते हुए उसे वैज्ञानिक बनाया जाय। इसीलिए प्रस्तुत प्रबन्ध को सात सम्भागो में विभक्त किया गया है जिसके अन्तर्गत सिद्धान्त स्थापन सर्वेक्षण, समीक्षण एवं समाहार के द्वारा परम्परा और आधुनिकता को समायोजित करने का प्रयास हुआ।

वस्तुत हिंदी साहित्य के क्षेत्र में द्रुतगति से विकास होने पर भी अनुसन्धान की महत्ता परवर्ती ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रो की अपेक्षा न्यूनातिन्यून मानी जाती है। इसका मुख्य कारण वैज्ञानिकता के अभाव में पुनरावर्तन की प्रवृत्ति है। अत्याधुनिक समाज वैज्ञानिक अध्ययन हेतु वैज्ञानिकता को समाविष्ट कर देने के कारण मानविकी अध्ययन की ये पद्धतियाँ अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण होती जा रही है जबकि मानव जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने वाला साहित्य शोधात्मक दृष्टि से उपेक्षणीय बना हुआ है। इसका मुख्य कारण साहित्यिक शोध के वैज्ञानिक आधार का अभाव है।

आदिम युग से ही ऋषियों ने अनुसन्धान के द्वारा पर्याप्त प्रगति की थी उनका अनुसंधान विभिन्न पद्धतियों से प्रभावित था किन्तु वैज्ञानिकता के प्रति अनासक्ति के कारण अनुसंधान की आधुनिक धारणा का विकास पाश्चात्य प्रभाव के कारण हुआ। हिंदी साहित्यालोचकों ने इस क्षेत्र में जो प्रयत्न किया है वह एकांगी और अपूर्ण है। इसलिए अन्य ज्ञान विज्ञानो के क्षेत्र में प्रयुक्त पद्धतियों को

भी विवेचित करते हुए दार्शनिक, ऐतिहासिक, भौतिक वैज्ञानिक, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक एवं समाज वैज्ञानिक पद्धतियों का विश्लेषण अभीष्ट मानते हुए साहित्यानुसंधान पद्धतियों का निर्माण हुआ है। इनमें दार्शनिक और ऐतिहासिक पद्धतियाँ साहित्यिक शोध के क्षेत्र में अत्यन्त काल से ही प्रयुक्त हो रही हैं किन्तु उनमें वैज्ञानिक परिदृष्टि का पूर्णतया अभाव है। इसीलिए सर्वप्रथम इन पद्धतियों का वैज्ञानिक दृष्टि से विकास किया गया है। इसके अतिरिक्त इनके विभिन्न भेदोपभेदों का विस्तृत विश्लेषण उन्हीं क्षेत्रों में प्रयुक्त प्रयोगों के आधार पर करके साहित्यिक अनुसंधान के लिए उनकी महत्ता का आकलन हुआ है। चूँकि हिन्दी साहित्य में दर्शन, इतिहास, भौतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की अनुसंधान पद्धतियाँ ही विशेष रूप में प्रयुक्त होती रही हैं इनके व्यापक सन्दर्भों का अनुशीलन तद्विषयक ग्रन्थों के आधार पर हुआ है और अन्त में इनके तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक युग में दार्शनिक एवं ऐतिहासिक पद्धतियाँ अनुमानाश्रित होने के कारण बौद्धिक चिन्तन को क्षणिक परितोष भले ही दे दें किन्तु जब तक सांख्यिकीय एवं प्रायोगिक सन्दर्भों द्वारा इन्हें पूर्ण वैज्ञानिक नहीं बनाया जायेगा तब तक साहित्यानुसन्धान भौतिक विज्ञानों के अनुसंधान के समकक्ष नहीं पहुँच सकता।

अनुसंधान पद्धतियों की वैज्ञानिकता तभी सार्थक होगी जब साहित्यानुसंधान की प्रवृत्ति को वैज्ञानिक बनाया जाय क्योंकि अनुसन्धान व्यक्ति विशेष की प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। यदि निष्ठावान शोधार्थी अनुसंधान को अनुभूतिजन्य तन्मयता के आधार पर विश्लेषित करता है तो निश्चय है कि उसका अनुशीलन निष्पक्ष नहीं हो सकेगा। इसीलिए साहित्य और विज्ञान के स्वरूप एवं प्रयोजन को पृथक् पृथक् विश्लेषित करते हुए उनके संयोजन का प्रयत्न हुआ है। साहित्य मूलतः अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा अन्तर्जगत एवं बहिर्जगत को प्रत्यक्षीकृत किया जाता है। आचार्य भरत से लेकर पण्डितराज प्रभृति पण्डितों ने साहित्य के स्वरूप का उद्घाटन किया तथा यत्किंचित परिवर्तन के साथ पाश्चात्य विचारकों ने भी साहित्य को सौन्दर्य शास्त्रीय आधार पर विश्लेषित किया है तथा सामान्य रूप से कला को कला एवं जीवन से सम्बद्ध माना है। इसी प्रकार विज्ञान को भी परिभाषित करते हुए विद्वानों ने उसे जगत् की प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण, पुनरीक्षण एवं सत्यापन का साधन माना है, किन्तु दोनों तत्व यद्यपि सत्यान्वेषण से सम्बद्ध होने पर भी पृथक् पृथक् प्रतीत होते हैं। एक कोरा बौद्धिक है तो दूसरा भावात्मक। ऐसी स्थिति में क्या साहित्यानुसन्धान की वैज्ञानिक परिदृष्टि साहित्य के लिए उपयोगी होगी यह प्रश्न उठ खड़ा होता है जिसका निराकरण इस आधार पर हो सकता है कि विज्ञान एवं साहित्य दोनों जीवन के उत्कर्ष को ही

आन्तरिक लक्ष्य मानते हैं और इस दृष्टि से दोनों समरूप हैं।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में 1960 ई० के बाद इतिहास एवं दर्शन की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ अध्ययन को महत्व दिया गया। अभी तक वस्तुनिष्ठा वैज्ञानिक क्षेत्र तक परिसीमित थी तथा साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिनिष्ठ चिन्तनधारा को ही प्रवाहित किया जा रहा था, किन्तु कतिपय अतिबौद्धिक विचारकों ने सृजन एवं समीक्षा दोनों क्षेत्रों को वैज्ञानिक बनाने पर बल दिया और कल्पना एवं तर्क के आधार पर विवेचित साहित्य को वस्तुनिष्ठ सत्यापन पद्धति के आधार पर विश्लेषित किया। इसके पूर्व इन पद्धतियों का उपयोग समाज विज्ञानों के क्षेत्र में होने लगा था तथा यह समाज विज्ञान भी वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के कारण अधिक उपयोगी और ग्राह्य होता जा रहा था। साहित्य में इस पद्धति के आगमन के साथ ही साहित्य के मनोवैज्ञानिक मार्क्सवादी एवं समाज वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा का विकास हुआ चूँकि साहित्य का सम्बन्ध अन्तर्मन से होता है तथा अवचेतन में स्थित भाव सम्पदा ही साहित्य सर्जना में सहायक होती है इसलिए रचनाकार की मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन हेतु मनोवैज्ञानिक शोध प्रबन्धों का प्रणयन हुआ किन्तु अनुसन्धित्सुओं ने निश्चित सिद्धान्तों के अभाव में जिस पद्धति का अनुगमन किया वह मनोविज्ञान की अपेक्षा साहित्य के ही निकट रही। इसीलिए इन शोध प्रबन्धों में भी मनोवैज्ञानिक पद्धतियाँ प्रयुक्त नहीं हो सकीं। मार्क्सवादी चिन्तन प्रणाली का विकास यद्यपि 1936 ई० से ही हो गया था किन्तु अनुसन्धान के क्षेत्र में इसे 1960 ई० से व्यवहृत किया गया तथा अभी तक इस क्षेत्र में अनेक विद्वानों ने कार्य किया। यह पद्धति मूलतः अर्थशास्त्र से जुड़ी है किन्तु इसका अध्ययन स्वतन्त्र रूप से ही किया गया है। इसके अन्तर्गत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक विकासवाद एक साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। हिन्दी अनुसन्धायकों ने इसे केवल राजनीतिक एवं आर्थिक विचारधारा के रूप में ग्रहण किया है जिससे वस्तुनिष्ठा का सम्यक उपयोग नहीं हो सका है। वैज्ञानिक अध्ययन से सम्बद्ध जिस विचारधारा ने हिन्दी को विशेष रूप से प्रभावित किया है। उसे समाज वैज्ञानिक कहा जाता है। समाज वैज्ञानिक पद्धतियों का विश्लेषण करते समय सर्वप्रथम उनकी समाजशास्त्रीय मान्यताओं की स्थापना हुई इसके उपरान्त हिन्दी के समाज वैज्ञानिक अनुसन्धान का इतिहास और उसकी साहित्यिक प्रवृत्ति का विश्लेषण हुआ है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि अभी तक अनुसन्धित्सुओं ने समाज विज्ञान को एक विज्ञान के रूप में न लेकर केवल इतिहास के रूप में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार वैज्ञानिक क्रियाविधियों का भी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में नैष्ठिक एवं सन्तुलित अध्ययन नहीं किया जा रहा है तथा केवल बाह्य दृष्टि से इन तथ्यों को महत्व दिया जा रहा है।

वज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियों के उदभव विकास एव स्वरूप का विश्लेषण करते समय साहित्यानुसधान की प्रचलित पद्धतियो को भी समीक्षित किया गया है। इन आगत अनागत पद्धतियो क विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी अनुसधान अभी तक उपाधि प्रशायक तत्व के रूप मे जितना सहज है वैज्ञानिक पद्धतिया के विनियोग की दृष्टि स उतना ही जटिल भी है। इस वज्ञानिक प्रविधि क प्रयोग हेतु साम्प्रतिक शोधार्थियो न अनेक प्रयोग किये हैं। मनोविज्ञान एव समाज विज्ञान की भाँति साहित्य विज्ञान जसे शोध प्रब ध भी प्रस्तुत हुए हैं, किन्तु इन पद्धतिया के वैज्ञानिक विश्लेषण का प्रयत्न नही हो सका था। प्रस्तुत प्रबन्ध में इस दृष्टिकोण को ही केन्द्र में रखकर सिद्धान्तो के प्रायोगिक स दर्भों का विश्लेषण हुआ है। अब तक उपल ध समस्त पद्धतियो के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि यदि इन्हें आधुनिक ज्ञान विज्ञान के सन्दभ मे विश्लेषित किया जाय और शोध प्रबन्धों को वज्ञानिक क्रियाविधियो के आधार पर प्रस्तुत किया जाय तो हिन्दी साहित्यानुसन्धान सख्यात्मक विस्तृति की भाँति गुणात्मक विस्तार भी पा सकेगा।

O

आन्तरिक लक्ष्य मानते हैं और इस दृष्टि से दोनों समरूप हैं।

साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में 1960 ई० के बाद इतिहास एवं दर्शन की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ अध्ययन को महत्व दिया गया। अभी तक वस्तुनिष्ठा वज्ञानिक क्षेत्र तक परिसीमित थी तथा साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिनिष्ठ चिन्तनधारा को ही प्रवाहित किया जा रहा था किन्तु कतिपय अतिबौद्धिक विचारकों ने सृजन एवं समीक्षा दोनों क्षेत्रों को वज्ञानिक बनाने पर बल दिया और कल्पना एवं तर्क के आधार पर विवेचित साहित्य को वस्तुनिष्ठ सत्यापन पद्धति के आधार पर विश्लेषित किया। इसके पूर्व इन पद्धतियों का उपयोग समाज विज्ञानों के क्षेत्र में होने लगा था तथा यह समाज विज्ञान भी वज्ञानिक पर्यवेक्षण के कारण अधिक उपयोगी और ग्राह्य होता जा रहा था। साहित्य में इस पद्धति के आगमन के साथ ही साहित्य के मनोवैज्ञानिक मार्क्सवादी एवं समाज वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा का विकास हुआ, चूँकि साहित्य का सम्बन्ध अन्तर्मन से होता है तथा अवचेतन में स्थित भाव सम्पदा ही साहित्य सर्जना में सहायक होती है इसलिए रचनाकार की मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन हेतु मनोवैज्ञानिक शोध प्रबन्धों का प्रणयन हुआ किन्तु अनुसन्धित्सुओं ने निश्चित सिद्धान्तों के अभाव में जिस पद्धति का अनुगमन किया, वह मनोविज्ञान की अपेक्षा साहित्य के ही निकट रही। इसीलिए इन शोध प्रबन्धों में भी मनोवैज्ञानिक पद्धतियाँ प्रयुक्त नहीं हो सकीं। मार्क्सवादी चिन्तन प्रणाली का विकास यद्यपि 1936 ई० से ही हो गया था किन्तु अनुसन्धान के क्षेत्र में इसे 1960 ई० से व्यवहृत किया गया तथा अभी तक इस क्षेत्र में अनेक विद्वानों ने कार्य किया। यह पद्धति मूलत अर्थशास्त्र में जुड़ी है किन्तु इसका अध्ययन स्वतन्त्र रूप से ही किया गया है। इसके अन्तर्गत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक विकासवाद एक साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। हिन्दी अनुसन्धायकों ने इसे केवल राजनीतिक एवं आर्थिक विचारधारा के रूप में ग्रहण किया है जिससे वस्तुनिष्ठा का सम्यक् उपयोग नहीं हो सका है। वज्ञानिक अध्ययन से सम्बद्ध जिस विचारधारा ने हिन्दी को विशेष रूप से प्रभावित किया है। उसे समाज वज्ञानिक कहा जाता है। समाज वज्ञानिक पद्धतियों का विश्लेषण करते समय सर्वप्रथम उनकी समाजशास्त्रीय मान्यताओं की स्थापना हुई इसके उपरान्त हिन्दी के समाज वज्ञानिक अनुसन्धान का इतिहास और उसकी साहित्यिक प्रवृत्ति का विश्लेषण हुआ है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि अभी तक अनुसन्धित्सुओं ने समाज विज्ञान को एक विज्ञान के रूप में न लेकर केवल इतिहास के रूप में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार वज्ञानिक क्रियाविधियों का भी साहित्यानुसन्धान के क्षेत्र में वस्तुनिष्ठ एवं सन्तुलित अध्ययन नहीं किया जा रहा है तथा केवल बाह्य दृष्टि से इन तथ्यों को महत्व दिया जा रहा है।

परिशिष्ट

ग्रन्थानुसूची

क–सस्कृत

1 अग्नि पुराण	
2 अष्टाध्यायी	
3 काव्य प्रकाश	आचाय मम्मट
4 काव्यमीमासा	राजशेखर
5 काव्यानुशासन	हेमचन्द्र
6 काव्यालकार	भामह
7 काव्यालकार सूत्र वृत्ति	आचाय वामन
8 काव्यालकार	रुद्रट
9 नीतिशतक	भत हरि
10 मालविकाग्नि मित्रम्	कालिदास
11 रघुवश महाकाव्यम	कालिदास
12 रसगगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ
13 लोचन व्याख्या	अभिनवगुप्त
14 वक्रोक्ति जीवितम	कुन्तक
15 वाचस्पत्यम	
16 व्यक्ति विवेक	महिम भट्ट
17 शब्द कल्पद्रुम	
18 सस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे
19 साहित्य दपण	आचाय विश्वनाथ

ख–हिन्दी

1 अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल
2 अद्वैत वेदान्त	डॉ० राममूर्ति शर्मा
3 अध्ययन और आस्वाद	गुलाबराय
4 अनुसधान का स्वरूप	(सम्पादिका) डा० सावित्री
5 अनुसधान विवेचन	डॉ० उदयभानु सिंह

6 अनुसन्धान की प्रक्रिया	(सम्पा०) डा० सावित्री सिन्हा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
7 अनुसन्धान का व्यावहारिक स्वरूप	डॉ० उवशी सूरती
8 अनुसन्धान परिचय	पारसनाथ राय तथा चाँद भटनागर
9 अपभ्रंश और हिन्दी के काव्य रूपों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० नयुनी सिंह
10 अलीगढ़ के साहित्यकारों की हिन्दी सेवा	डा० गोपाल बाबू शर्मा
11 अवध के प्रमुख कवि	डॉ० ब्रजकिशोर मिश्र
12 अशोक के फूल	आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
13 असामान्य मनोविज्ञान	हसराज भाटिया
14 अज्ञेय और इलियट के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० जगतपाल सिंह
15 आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	डा० देवराज उपाध्याय
16 आधुनिक मनोविज्ञान और सूर काव्य	डॉ० कमला आत्रेय
17 आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य	डा० गगाधर झा
18 आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास	डॉ० वेंकट शर्मा
19 आधुनिक हिन्दी कविता का सामाजिक दर्शन	डॉ० प्रेमचन्द विजयवर्गीय
20 आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव	डॉ० उपेन्द्र
21 आधुनिक साहित्य	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
22 आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद	डॉ० विश्वनाथ गौड़
23 आधुनिक हिन्दी और तमिल में मानवतावाद	डॉ० सरगु कृष्णामूर्ति
24 आधुनिक हिन्दी कविता पर गांधीवाद का प्रभाव	डॉ० आर० चन्द्रा
25 आधुनिक हिन्दी कविता में राजनीतिक चेतना	डॉ० यास्मीन ऐशाह अजीज

26 आधुनिक हिंदी कविता में क्रान्ति की विचारधारा	डॉ० उर्मिला जैन
27 इतिहास और आलोचना	डॉ० नामवर सिंह
28 इतिहास दर्शन	डॉ० बुद्ध प्रकाश
29 उत्तर छायावादी काव्य में प्रतीक और बिम्ब विधान तथा उनका ततत्वशास्त्रीय समाजशास्त्रीय सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन	डॉ० गंगाप्रसाद उनियाल
30 एस्थेटिक इमैनुअल	कान्ट (अनु०) रामकेवल सिंह
31 ए कम्परेटिव स्टडी आन दि इम्पार्टेण्ट कृष्ण भक्त पोयटस आन हिंदी एण्ड मलयालम लिटरेचर	डॉ० भास्कर नायर
32 एक घूंट	जय शंकर प्रसाद
33 ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस	डॉ० गुरदीप सिंह खुल्लर
34 कम्ब रामायण और रामचरितमानस	डॉ० रामेश्वर दयालु
35 केशव ग्रन्थावली	आ० केशवदास (सम्पादक लाला भगवानदीन दीन)
36 कबीर ग्रन्थावली	(स०) डॉ० पारसनाथ तिवारी
37 काव्य मीमांसा (एक तुलनात्मक विश्लेषण)	डॉ० विक्रमादित्य राय
38 कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन	डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना
39 काव्य में रस	डा० आनंद प्रकाश दीक्षित
40 काव्य कला तथा अन्य निबंध	जयशंकर प्रसाद
41 काव्य के रूप	गुलाबराय
42 काव्य निर्णय	भिखारीदास (वे० प्रे० संस्करण)
43 कालिदास और उनकी कविता	आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी
44 काव्य समीक्षा	डा० विक्रमादित्य राय
45 काव्य में अभिव्यंजनावाद	डा० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
46 चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास चित्रण	डॉ० विद्याभूषण भारद्वाज

47 चिन्तामणि भाग 1	आ० रामचन्द्र शुक्ल
48 छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि	डॉ० सुषमा पाल
49 छायावादी काव्य म सौ दय दशन	डॉ० सुरेशचन्द्र त्यागी
50 छायावादी कवियों पर अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव	डॉ० फूलबिहारी शर्मा
51 जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त	डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु'
52 जनाचाय रविषेण कृत पदमपुराण और तुलसी कृत रामचरित मानस	डॉ० रमाका त शुक्ल
53 तक शास्त्र	गुलाबराय
54 तुलसीदास जीवन और कृतियो का आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ० माता प्रसाद गुप्त
55 तुलसी के का य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
56 तुलसी की काव्य प्रतिभा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	डॉ० शैलकुमारी
57 तुलसी दशन	डॉ० बलदेव उपाध्याय
58 दि माडन वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान	ग्रियसन (अनु० डॉ० किशोरीलाल गुप्त)
59 दीपशिखा	महादेवी वर्मा
60 देव और बिहारी	प० कृष्णबिहारी मिश्र
61 देव ग्रन्थावली	डॉ० लक्ष्मीधर मालवीय
62 द्वैत वेदान्त का तात्विक अनुशीलन	डॉ० कृष्णकान्त चतुर्वेदी
63 ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त	डॉ० भोलाशंकर व्यास
64 ध्वनि सिद्धान्त का काव्य शास्त्रीय सौन्दर्य शास्त्रीय और समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ० कृष्ण कुमार शर्मा
65 पाश्चात्य समालोचना दशन	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
66 पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा	डॉ० सावित्री सिन्हा
67 प्रगीतिका	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
68 प्रसाद काव्य मे भावव्यंजना मनोवैज्ञानिक विवेचन	डॉ० श्यामप्रकाश अग्रवाल
69 प्रगतिवादी काव्य	डॉ० उमेश चन्द्र मिश्र

70 प्रगतिवादी समीक्षा	डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी
71 प्रसाद साहित्य म नियतिवाद	डॉ० पद्माकर शर्मा
72 प्रसाद की दार्शनिक चेतना	डा० चक्रवर्ती
73 प्रिंसिपल्स आफ ह्यूमैन नालेज	जार्ज बर्कले (अनुवादक भगवान बख्श सिंह)
74 प्रेमचन्द साहित्य मे व्यक्ति और समाज	डॉ० रक्षापुरी
75 प्रेमचन्द के जीवन दर्शन के विधायक तत्व	डॉ० कृष्ण चन्द्र पाण्डेय
76 बीसवी शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ० सात्यत राय गुप्त
77 बिहारी की सतसई	पद्म सिंह शर्मा
78 भक्ति काल मे रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ और सेनापति	डा० शोभानाथ सिंह
79 भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र का संक्षिप्त विवेचन	डॉ० सत्यदेव चौधरी एव डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त
80 भारतीय दर्शन	डॉ० उमेश मिश्र
81 भाषा विज्ञान	डॉ० भोलानाथ तिवारी
82 महाकवि सूरदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ० शारदा प्रसाद शर्मा
83 मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन खण्ड)	सम्पादक डॉ० नगेन्द्र
84 मार्क्सवाद और साहित्य	महेश चन्द्र राय
85 मार्क्सियन सोसियोलाजी	निकोलाई बुखारिन (अनु० शम्भु रत्न त्रिपाठी)
86 मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन	

91 रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र	डा० निर्मला जैन
92 रस की दार्शनिक और नैतिक व्याख्या	डॉ० तारकनाथ वाली
93 रस रहस्य	आ० कुलपति मिश्र
94 रस पीयूष निधि	आ० सोमनाथ
95 रसज्ञ रंजन	आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी
96 राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
97 रामचरित मानस	गो० तुलसीदास (गीता प्रेस संस्करण)
98 रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता	डा० रमेश कुमार शर्मा
99 रीवाँ दरबार के हिन्दी कवि	डॉ० विमला पाठक
100 लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक	प्रो० शत्रुघ्न प्रसाद
101 वाङ्मय विमर्श	प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
102 विन्ध्याचल का आधुनिक हिन्दी काव्य एक अनुशीलन	डॉ० नागेन्द्र सिंह
103 शब्द रसायन	आ० देव (हि० स० म० स०)
104 शोध प्रविधि	डॉ० विनयमोहन शर्मा
105 सन्त वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव	डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
106 साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ० देवराज उपाध्याय
107 सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान	डॉ० शंकर प्रसाद
108 साहित्य के तत्व	डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
109 साहित्यिक आउट लुक	बर्ट्रेण्ड रसल (अनु० गंगारतन पाण्डेय)
110 साहित्य रूप	डॉ० रामअवध द्विवेदी
111 साहित्यिक अनुसन्धान के प्रतिमान	(सम्पादक) डॉ० देवराज उपाध्याय तथा रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'
112 साहित्यालोचन	डॉ० श्यामसुन्दरदास
113 साहित्य विज्ञान	डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
114 साहित्य पर आयुर्वेद का प्रभाव	डॉ० साध्यधर
115 साहित्य का इतिहास दर्शन	नलिन विलोचन शर्मा

116 साहित्य का उद्देश्य — प्रेमचन्द
117 सिद्धान्त और अध्ययन — डॉ० गुलाबराय
118 सेवादास निरंजनी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व एक अनुशीलन — डॉ० एस० एच० मोरे
119 स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन — डॉ० जगदीश गुप्त
120 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि — डॉ० स्वर्णलता
121 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन — डॉ० सुमित्रा त्यागी
122 हिन्दी अनुसन्धान-विवरणिका — (सम्पादक) डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त
123 हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास — डॉ० भगवत् स्वरूप मिश्र
124 हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तत्त्व (भाग 1, 2) — डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना
125 हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास — डॉ० भगीरथ मिश्र
126 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना — डॉ० जनेश्वर प्रसाद वर्मा
127 हिन्दी के स्वीकृत प्रबन्ध — कृष्णाचार्य
128 हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध — डॉ० उदयभानु सिंह
129 हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास — डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
130 हिन्दी की मार्क्सवादी कविता — डॉ० सम्पत ठाकुर
131 हिन्दी के प्रगतिशील कवि — डॉ० रणजीत
132 हिन्दी उपन्यास : सामाजिक सन्दर्भ — डॉ० बालकृष्ण गुप्त
133 हिन्दी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति — डॉ० म० के० गाडगील
134 हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति — डॉ० राजपाल शर्मा
135 हिन्दी नाटक : समाजशास्त्रीय अध्ययन — डॉ० सीताराम झा
136 हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन — डॉ० चण्डी प्रसाद जोशी

137 हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि — डा० गोविन्द त्रिगुणायत
138 हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन — डॉ० प्रतापसिंह चौहान
139 हिन्दी तथा पंजाबी उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ० योगेन्द्र बक्शी
140 हिन्दी एवं मलयालम के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ० एन० आई० नारायणन
141 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास — डा० रामनारायण सिंह 'मधुर'
142 हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव — डा० भारत भूषण अग्रवाल
143 हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन — डॉ० रूपचन्द्र पारीक
144 हिन्दी मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ० लक्ष्मीनारायण भारद्वाज
145 हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ — डॉ० शशिभूषण सिंहल
146 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग — डॉ० गोविन्द जी
147 हिन्दी एवं कन्नड साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति
148 हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास — डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग
149 हिन्दी नाटक का विकास — डॉ० सुन्दर लाल शर्मा
150 हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव — डॉ० श्रीपति शर्मा
151 हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद — डॉ० कमला गुप्ता
152 हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव — डॉ० शंकरलाल जायसवाल
153 हिन्दी प्रदेश के हिन्दू पुरुषों के नामों का अध्ययन — डा० विद्याभूषण 'विभु'
154 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 — (सम्पादक) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
155 हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ० रामचन्द्र शुक्ल
156 हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ० नगेन्द्र

157	हिन्दी नवरत्न	मिश्र बन्धु
158	हिन्दी साहित्य में विविधवाद	डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
159	हिन्दी काव्य में रहस्यवाद	डॉ० रामनारायण पाण्डेय
160	हिन्दी साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव	डॉ० सरनाम सिंह शर्मा
161	हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव	डॉ० विश्वनाथ
162	हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्यों पर पुराणों का प्रभाव	डॉ० शशि अग्रवाल
163	हिन्दी के निर्गुण कवियों पर नाथ पंथ का प्रभाव	डॉ० कोमल सिंह सोलंकी
164	हिन्दी और गुजराती कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० जगदीश गुप्त
165	हिन्दी साहित्य का विकास	डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
166	हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (16वीं शती) का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० रत्न कुमारी
167	हिन्दी तथा पंजाबी के निर्गुण काव्य तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० हरवंशलाल शर्मा
168	हिन्दी तथा तमिल के भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा० एन० चन्द्रकान्ता मुदालियर
169	हिन्दी और कश्मीरी सूफीतर सन्त काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० कृष्णा शर्मा
170	हिन्दी महाकाव्यों में जन्तु और वनस्पतियाँ	डॉ० विजयलक्ष्मी
171	हिन्दी कविता में समाजवादी विचारधारा का विकास	डॉ० ऋषिदेवराय
172	हिन्दी साहित्य को कूर्मांचल की देन	डॉ० भगत सिंह नेगी
173	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि	डा० आदर्श सक्सेना
174	हिन्दी साहित्य	डॉ० भोलानाथ

ग–अंग्रेजी

1. A Dictionary of Psychology–James Drever
2. Aesthetic–Benedetto Croce
3. A History of Aesthetic–Bosanquet
4. A History of Europe Vol I–H A L Fischer
5. A History of Modern Criticism–Renewellek
6. A Mannual of Metaphysics–Dr J N Sinha
7. Anti Duhring–F Engels
8. A Research Mannual Cecil B Williams & Allon H Stevenson
9. Contemporary Schools of Psychology–Wood Worth
10. Contemporary Theories and Systems in Psychology–Wolman
11. Cultural Sociology–J L Gillin & J P Gillin
12. Dictionary of Sociology–Edited by Henry Pratt Fair Child
13. Elements of Metaphysics–Taylar
14. Elementary Statistical Methods–H M Walker & J Lev
15. Encyclopedia of Social Sciences–B Ginjburg
16. Essay on criticism–matthew Arnold
17. Essentials of the Scientific Method–A Wolf
18. Experimental Designs in Sociological Research–F S Chapin
19. Experimental Sociology–Ernest Green Wood
20. Feminine Psychology–Koren Horney
21. Foundations of Behavioural Research–F N Kerlinger
22. Guide to Research Writing–Griffith Thompson Pugh
23. Introduction to Philosophy–Patrick
24. Introduction to Research–Tyrus Hill Way
25. Introduction to the Study of Poetry–Hudson
26. Lectures on Art–Ruskin
27. Lectures on Conditioned Reflexes–I P Pavlow
28. Lectures on the English Poets–William Hazlitt
29. Life of Milton–Dr Johnson
30. Lyrical Ballads–William Words Worth
31. Meaning in History–H P Rickman
32. Methods of Experimental Enquiry–Jhon Stuart Mill

33 Methods of Research-C V Good and D E Scates
34 On Art of Poetry-Horace
35 Oriental Aesthetic-Thomas Munro
36 Problems of Leninism-J Stalin
37 Reproduced from use of History-Hume
38 Republic-Plato
39 Research Methods in Social Relations Part I-Jahoda and others
40 Selected Poetry and Prose of Coleridge-D A Stauffer
41 Selected Works-Karl Marx
42 Seven Psychologies-Heid Breder
43 Sociology of Rural life-T L Smith
44 Systematic Sociology-Prof Howard Beker
45 *The Art of Scientific Investigation-William I B Beveridge*
46 The Elements of Research-F L Whitney
47 The Experimental Psychology-Boring
48 The German Ideology-Karl Marx
49 The Grammer of Science-Carl Pearson
50 The Last Phase-Pyarelal
51 The Making of Literature-R A Scott James
52 The Oxford English Dictionary
53 The Philosophy of Ravindra Nath Tagore-Dr S Radhakrishnan
54 The Psychology of C G Yung-Dr Yakoby
55 The Science of History-J B Bury
56 The Tractate of Education-Milton
57 The use of History-York Powell
58 The Vedic Age-K M Munshi
59 Understanding Educational Research-D B Vandalen
60 What is History-Edward Hallet Carr

घ–हस्तलिखित शोध ग्रन्थ एवं रचनायें

1 हिन्दी के छायावादी कवियों के साहित्य चिन्तन और समीक्षा काम का अनुशीलन — डॉ० उमेश चन्द्र मिश्र, सागर वि०वि०, 1967 ई०।

2 काव्य सरोज — श्रीपति

3 कवि कुल कल्पतरु — चिन्तामणि

इ–पत्र–पत्रिकाएँ

1 आलोचना (त्रैमासिक) वर्ष-18, नवांक 10 जुलाई, सितम्बर, 1969 ई०

2 नवनीत (मासिक) वर्ष 28 अंक 5, मई 1979 ई०

3 भाषा (त्रैमासिक) वर्ष 3 अंक 2 दिसम्बर, 1963 ई०

4 हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) भाग 35, अंक 3, जुलाई सितम्बर 1974 ई०

5 हिन्दी अनुशीलन (शोध विशेषांक) वर्ष 15, अंक 3 4, जुलाई सितम्बर अक्टूबर दिसम्बर 1962

6 हिन्दी अनुशीलन (शोध विशेषांक) वर्ष 26 संयुक्तांक 29 32, 1976 ई०

O

2 काव्य सरोज — श्रीपति
3 कवि कुल कल्पतरु — चिन्तामणि

ड-पत्र-पत्रिकाएँ

1 आलोचना (त्रमासिक) वर्ष-18, नवांक 10 जुलाई, सितम्बर 1969 ई०
2 नवनीत (मासिक) वर्ष 28, अंक 5, मई 1979 ई०
3 भाषा (त्रमासिक) वर्ष 3 अंक 2 दिसम्बर, 1963 ई०
4 हिन्दुस्तानी (त्रमासिक) भाग 35, अंक 3, जुलाई सितम्बर 1974 ई०
5 हिन्दी अनुशीलन (शोध विशेषांक) वर्ष 15 अंक 3 4, जुलाई सितम्बर अक्टूबर दिसम्बर 1962
6 हिन्दी अनुशीलन (शोध विशेषांक) वर्ष 26 संयुक्तांक 29 32 1976 ई०

O